दशम् अंक

दुग्ध-गंगा

संयुक्तांक, 2019-2020

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान

(मानद् विश्वविद्यालय)

करनाल-132 001 (हरियाणा)

दुग्ध गंगा, दशम् अंक (संयुक्तांक, छमाही 1 व 2, अप्रैल, 2019 से मार्च, 2020)

भाकृअनुप
ICAR

ndri

राष्ट्रीय डेरी मेला–२०२०

आर.एन.आई. : एच.ए.आर/एच-4834/2009

भाकृअनुप
ICAR

दुग्ध-गंगा

दशम् अंक

(संयुक्तांक, छमाही 1 व 2, अप्रैल, 2019 से मार्च, 2020)

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान
(मानद् विश्वविद्यालय)
करनाल (हरियाणा) पिन-132001

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान
(मानद् विश्वविद्यालय) करनाल-132 001 (हरियाणा)

''दुग्ध गंगा''

दशम् अंक (अप्रैल, 2019 से मार्च, 2020)

संरक्षक एवं प्रकाशक

डा. एम.एस. चौहान, निदेशक एवं कुलपति

परामर्श मण्डली

डॉ. धीर सिंह, कार्यवाहक संयुक्त निदेशक (अनुसंधान)
श्री डी.डी.वर्मा, नियंत्रक, वित्तीय सलाहकार

मुख्य संपादक

श्री राकेश कुमार कुशवाहा, सहायक निदेशक(राजभाषा)

तकनीकी संपादक

डा. महेन्द्र सिंह, अध्यक्ष एवं प्रधान वैज्ञानिक

डा. राकेश कुमार, प्रधान वैज्ञानिक

डा. अर्चना वर्मा, प्रधान वैज्ञानिक

डा. एच.आर. मीना, प्रधान वैज्ञानिक

डा. चित्र नायक, वरिष्ठ वैज्ञानिक

डा. निशांत कुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक

डा. नीलम उपाध्याय, वैज्ञानिक

संपादक : श्रीमती कंचन चौधरी, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

छायाचित्र संपादन

डा. नितिन त्यागी, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रभारी, संचार केन्द्र

श्री परमजीत, वरिष्ठ तकनीकी सहायक

संपर्क सूत्र :
श्री राकेश कुमार कुशवाहा, सहायक निदेशक (राजभाषा),
राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा, पिन-132001.
फोन : 0184-2259045, फैक्स : 0184-2250042
ईमेल : rakeshkumar19782014@gmail.com/ tolic.karnal.ndri@gmail.com
Website : www.ndri.res.in

इस अंक में प्रकाशित आलेखों एवं रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

प्रकाशक :
एरोन मीडिया, यू.जी.4, सेक्टर 17, सुपर मॉल, करनाल, पिन-132001. ईमेल : aaronmedia1@gmail.com

डा. एम.एस. चौहान

निदेशक एवं कुलपति
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान
(मानद् विश्वविद्यालय)
करनाल, हरियाणा, पिन–132 001
दूरभाष : 0184–2252800,
फैक्स : 0184–2250042
ईमेल : director.ndri@icar.gov.in,
dir.ndri@gmail.com

प्राक्कथन

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा हमारे देश में कृषि व डेरी पशुपालन के विकास के बिना देश का समग्र विकास संभव नहीं है। भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है तथा कृषकों व डेरी पशुपालकों को आत्मनिर्भर बनाने, उनकी आय को दोगुना करने व उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने की दिशा में निःसंदेह भारतीय डेरी व पशुधन सेक्टर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वर्तमान परिदृश्य में यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि वैश्विक महामारी कोविड–19 के कारण संपूर्ण विश्व एवं हमारे देश के हर क्षेत्र में विकास की गति प्रभावित हुई है, किन्तु हमें आशान्वित रहना चाहिए कि हमारा देश शीघ्रातिशीघ्र इस विभीषिका से मुक्त होकर विकास की दिशा में नए आयाम सृजित करेगा। इस संकट की घड़ी में अपने प्राणों की परवाह किए बिना निःस्वार्थ भाव से सेवा कार्य में लगे डॉक्टरों, स्वास्थ्यकर्मियों एवं कानून–व्यवस्था को नियंत्रित करने में संलग्न पुलिसकर्मियों को हम सलाम करते हैं। इसी प्रकार हमारे देश के कृषकवीर एवं डेरी पशुपालक जिन्होंने लॉकडाउन व अन्य हालातों में अनाज, सब्जियों व डेरी उत्पादों इत्यादि की उपलब्धता बनाए रखी, उन्हें भी हम नमन करते हैं।

ज्ञान–विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रत्येक क्षेत्र में देश के वैज्ञानिक निरंतर नए शोध कर रहे हैं तथा इसका सकारात्मक प्रभाव कृषि व डेरी पशुपालन के क्षेत्र में भी सामने है। इसी क्रम में राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल अपने वैज्ञानिकों व स्टाफ के सक्रिय प्रयासों से सस्ती लागत पर उत्तम कोटि के दूध एवं दुग्ध उत्पादों की उपलब्धता सुनिश्चित करने, उत्पादकों को जीविकोपार्जन सुरक्षा तथा डेरी सेक्टर को उपयुक्त प्रौद्योगिकियां अपनाकर तथा मानव संसाधन विकास द्वारा डेरी सेक्टर को लाभ प्रदान करने के अपने ध्येय के साथ राष्ट्र के डेरी स्वप्नों को पूर्ण करने की दिशा में सतत् कार्यरत है। शोध के द्वारा उत्कृष्ट परिणाम प्राप्त करने की कोई सीमा नहीं होती है एवं शोध में अर्जित परिणाम उन्मुखी उपलब्धियों को किसानों, विद्यार्थियों व पाठकों को उनकी भाषा में सरलता व सुगमतापूर्वक पहुंचाने से ही शोध की सार्थकता सिद्ध होती है। इसी क्रम में हमारे संस्थान के वैज्ञानिकों एवं अन्य स्टाफ के द्वारा अपने शोध व अनुभव के आधार पर तैयार किए गए समसामयिक व बहुपयोगी लोकप्रिय आलेखों को संस्थान की गृह पत्रिका ''दुग्ध गंगा'' में समय–समय पर प्रकाशित किया जाता है। संस्थान द्वारा प्रकाशित ''दुग्ध गंगा'' पत्रिका डेरी सेक्टर की नवीनतम तकनीकों व जानकारी को कृषकों व डेरी पशुपालकों को पहुंचाने का एक सशक्त माध्यम भी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका डेरी किसानों–पाठकों व वैज्ञानिकों के बीच एक मजबूत सेतु का कार्य करेगी तथा अधिकाधिक कृषक, पशुपालक, विद्यार्थी एवं पाठकवर्ग इसका अत्यंत लाभ उठायेंगे। इस पत्रिका में लोकप्रिय वैज्ञानिक व तकनीकी आलेखों के साथ–साथ राजभाषा खंड में संस्थान की राजभाषा गतिविधियों व हिन्दी रचनाओं को भी विशेष रूप से शामिल किया गया है, ताकि पाठक संस्थान की राजभाषा नीति, नियमों एवं व्यवस्थाओं के प्रति प्रतिबद्धता से भी परिचित हो सकें।

मैं इस पत्रिका में अपने उत्कृष्ट लोकप्रिय आलेख प्रदान करने वाले सभी लेखकों एवं संपादक मंडल को बधाई देता हूँ कि उन्होंने इस महत्वपूर्ण अंक को समय पर प्रकाशित करने में सहयोग प्रदान किया है।

–डा. एम.एस. चौहान

राकेश कुमार कुशवाहा

सहायक निदेशक (राजभाषा),
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान
(मानद् विश्वविद्यालय)
करनाल, हरियाणा, पिन–132 001 एवं
सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, करनाल
दूरभाष : 0184–2259045
ईमेल : rakeshkumar19782014@gmail.com

मुख्य संपादक की कलम से

सभी प्रबुद्ध पाठकों से ''दुग्ध गंगा'' के दसवें अंक के साथ संवाद करते हुए अत्यंत खुशी हो रही है। पत्रिका के माध्यम से हमारा यह सतत् प्रयास रहा है कि पाठकगण को संस्थान से जुड़े समसामयिक विषयों पर रोचक व उपयोगी लोकप्रिय लेख प्रस्तुत किए जाएं। हम उन सभी वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों, लेखकों व विद्यार्थियों का धन्यवाद करना चाहते हैं, जिन्होंने अपने आलेखों व रचनाओं से इस अंक को सफल बनाने में अपना बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया है। संस्थान के माननीय निदेशक डा. एम.एस.चौहान के मार्गदर्शन एवं संपादक मंडल के पदाधिकारियों के सहयोग के बिना इस पत्रिका का समय पर प्रकाशन संभव नहीं था। उन्हें इसके लिए विशेष आभार प्रकट करते हैं।

निदेशक महोदय के संस्थान में कार्यभार ग्रहण करने के उपरांत से संस्थान के सभी प्रभागों एवं अनुभागों व विशेषकर प्रशासनिक अनुभागों में हिन्दी पत्राचार को नई दिशा व ऊंचाई प्राप्त हुई है। इस पत्रिका के सभी आलेख पाठकों, विशेषकर कृषकों व विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे, ऐसी आशा है। राजभाषा खंड के अंतर्गत संस्थान की विभिन्न राजभाषा गतिविधियों के उल्लेख के साथ–साथ उत्कृष्ट रचनाओं को शामिल करने का प्रयास किया गया है। सभी लोकप्रिय आलेखों के साथ–साथ इन पर भी सुझावों का इन्तजार रहेगा। यह किवदन्ती है कि हर कार्य के स्तर में सुधार की सदैव गुंजाइश रहती है। अतः हमें आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि ''दुग्ध गंगा'' के इस अंक में प्रकाशित लेखों के बारे में पाठक अपनी प्रतिक्रियाएं अवश्य देंगे।

जय हिन्द।

–मुख्य संपादक

आभार

महेन्द्र सिंह
अध्यक्ष, संपादक मण्डल

तकनीकी संपादन समिति के अध्यक्ष डा. महेन्द्र सिंह 31 जुलाई 2020 को परिषद में लगभग 36 वर्ष की सेवा पूर्ण करने के उपरान्त सेवानिवृत्त हो रहे हैं। इन्होंने राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में वर्ष 1984 में वैज्ञानिक के रूप में सेवा प्रारंभ की। इन्हें वर्ष 1997 में वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रभारी पशुशाला व 2005 में प्रधान वैज्ञानिक के पद पर पदोन्नत किया गया। वर्ष 2016 में इन्होंने संस्थान के पशु शरीर क्रिया अनुभाग के प्रभागाध्यक्ष का कार्यभार संभाला। परिषद में सेवा के दौरान आपने विभिन्न समितियों में कई महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों को संभाला। आपने विगत कई वर्षों में संस्थान की गृह पत्रिका ''दुग्ध गंगा'' व ''डेरी मेला स्मारिका'' के संपादक मंडल में अध्यक्ष के पद को भी बखूबी संभाला है।

संस्थान के निदेशक डा.एम.एस.चौहान एवं तकनीकी संपादक समिति के सभी सदस्यगण सेवानिवृत्ति उपरांत आपके स्वस्थ, सुखमयी एवं खुशहान जीवन की कामना करते हैं।

विषय–सूची

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान करनाल की अर्द्ध वार्षिक गृह पत्रिका ''दुग्ध गंगा''
(संयुक्तांक, छमाही 1 व 2, अप्रैल, 2019 से मार्च, 2020)

क्र.सं.	आलेख एवं लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	**टिकाऊ डेयरी खेती के लिए जैव उर्वरकों के माध्यम से चारे की फसल का प्रबन्धन** आसिफ महम्मद, अनुपम चटर्जी, चम्पक भकत, राहुल कुमार मीणा एवं टी.के. दत्ता	1–3
2.	**अधिक उपज के लिए मिट्टी की जाँच एवं पोषक तत्वों का संतुलित प्रबंधन जरुरी** उत्तम कुमार, राकेश कुमार, हरदेव राम, मुनीष लहरवान, अनिल कुमार डागर एवं रवि रावत	4–7
3.	**फसल अवशेष प्रबंधन** योगेश कुमार, सुरिन्द्र कुमार, मोहर सिंह, ममता भारद्वाज एवं अरुण कुमार टी. वी.	8–10
4.	**गैर–गौजातीय प्रजातियों के दूध की संरचना और पोषक मूल्य** हिना शर्मा, गौरव कुमार देशवाल एवं आशीष कुमार सिंह	11–14
5.	**भारी धातुओं के कारण पर्यावरण संदूषण एवं मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव** सोनिया सांगवान एवं रमन सेठ	15–19
6.	**चारे के लिए बहुवर्षीय अंजन घास उगायें** रमेश चन्द्रा एवं प्रमोद मडके	20–22
7.	**दुधारू पशुओं में अजोला पोषण के लाभकारी प्रभाव** फूल सिंह हिन्डोरिया, राकेश कुमार, राजेश कुमार मीना, दीपक चन्द मीना एवं शुभ्रदीप भट्टाचार्य	23–26
8.	**प्रोबायोटिक्स : हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभकारी जीवाणु** रश्मि एच.एम., चन्द्रशेखर बी., सौरभ कादियान एवं सुनीता ग्रोवर	27–33
9.	**मट्ठा प्रोटीन पेय और उनके लाभ** रेनु कश्यप एवं शिल्पा विज	34–37
10.	**दुधारू पशुओं में आने वाले आम उपापचय विकार एवम् देखभाल** शामभ्वी, चन्द्र दत्त, प्रिंस चौहान, कुलदीप डूडी एवं जितेन्द्र कुमार	38–42
11.	**पशु स्वास्थ्य में विटामिन–ए एवं खनिजों का महत्त्व** अश्विनी कुमार रॉय एवं महेंद्र सिंह	43–45
12.	**बदलते हुए मौसम में डेयरी पशु प्रबंधन** विश्वरंजन उपाध्याय, राजू कुमार देवरी, कथन रावल एवं प्रियंका पटोलिया	46–48
13.	**रिजका की वैज्ञानिक खेती** अक्षय गलोत्रा, प्रमोद कुमार तिवारी, मगन सिंह एवं राजेश कुमार मीणा	49–51
14.	**कृषि–कोष : भारतीय राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली की एक संस्थागत डिजिटल रिपॉजिटरी** नरेंद्र सिंह रोहिला, बी. पी. सिंह, लक्ष्मण, दीन दयाल, वीनू, सुबिना एवं एस. एम. देब	52–53
15.	**भैंसों की मुख्य नस्लें** सतीश कुमार राठी, अर्चना वर्मा, विकास वोहरा, सब्यसाची मुखर्जी, अनुपमा मुखर्जी, रानी एलैक्स, गोपाल गोवने, ईश्वर दयाल गुप्ता एवं सितांगसु मोहन देब	54–56
16.	**पशुओं को जड़ीबूटीय मिश्रण खिलाएँ और अधिक लाभ कमायें** अनुप कुमार सिंह, रमेश चंद्रा, एस. एस. लठवाल, पवन सिंह, दीपांदीता बर्मन एवं निनाद भट्ट	57–60
17.	**पंचगव्य–पारंपरिक विज्ञान का संग्रह** प्रियंका सिंह राव, विवेक शर्मा, फरिन सय्यद, सोमा माजी, रिचा सिंह एवं दिवस प्रधान	61–63
18.	**मेघदूत ऐपः मौसम पूर्वानुमान व कृषि मौसम सलाह के लिए** योगेश कुमार, सुरिन्द्र कुमार एवं ममता भारद्वाज	64
19.	**हल्दी की उन्नत खेती एवं बीज की संरक्षण विधि** विजेंद्र कुमार मीना, राजेश कुमार मीना, राकेश कुमार, फूलसिंह हिन्डोरिया, संतोष ओंट एवं मनीष कुशवाहा	65–68

20.	**अरहर के अधिक उत्पादन हेतुः इसकी रोपाई विधि का प्रक्षेत्र स्तर पर प्रदर्शन** फूलसिंह हिन्डोरिया, राजेश कुमार मीना, राकेश कुमार, विजेंद्र कुमार मीना, संजीव कुमार, प्रसन्ना एस. पायति एवं सुशांत दत्ता	69–71
21.	**पी.जी.पी.आर. (PGPR) राइजोबैक्टीरियाः पौधों के विकास हेतु एक वरदान** सौरभ कुमार, मगन सिंह, संजीव कुमार एवं विजेन्द्र कुमार मीना	72–73
22.	**सरसों के प्रमुख रोग, लक्षण एवं उनकी रोकथाम** मुनीष लहरवान, राकेश कुमार, मगन सिंह, राजेश कुमार मीना एवं हरदेव राम	74–77
23.	**छोटे पैमाने पर डेरी प्रसंस्करण इकाई हेतु कुछ आवश्यक डेरी प्रसंस्करण उपकरण** अंकित दीप एवं पी. बर्नवाल	78–81
24.	**बकरी का दूधः एक स्वास्थ्य वर्धक पेय** सोनिया सांगवान, रमन सेठ एवं वांगदरे सचिन सुभाष	82–84
25.	**खरीफ में उगाए जाने वाले दलहनी चारे** सूर्यकांता कश्यप, संदीप कुमार, राकेश कुमार, बिश्वरंजिता बिश्वाल, हरदेव राम एवं उत्तम कुमार	85–87
26.	**ढैंचा–हरी खाद का उत्तम विकल्प** बिश्वरंजिता बिश्वाल, सूर्यकांता कश्यप, राकेश कुमार, राजेश कुमार मीणा, हरदेव राम एवं उत्तम कुमार	88–89
27.	**गर्मी के तनाव से आण्विक स्तर पर परिवर्तन के कारण मवेशियों के स्वास्थ्य और दूध उत्पादन में कमी** दीपक चौरसिया, अंजली अग्रवाल एवं गौतम कौल	90–93
28.	**मोलिब्डेनमः एक महत्त्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्व** बलजीत, संजीव कुमार, सौरभ कुमार एवं मगन सिंह	94–97
29.	**देसी डेयरी नस्लों की पुनरुद्धूति–साहिवाल के प्रसंग में** गुंजन भण्डारी एवं बी. एस. चंदेल	98–101
30.	**खाद्य पदार्थों में कृत्रिम के बदले प्राकृतिक रंग वर्णक के उपयोग की आवश्यकता** नीलम उपाध्याय एवं प्रिया यावले	102–105
31.	**देश में बढ़ता दुग्ध उत्पादन व कूलिंग प्रोसेसिंग तकनीक में ऊर्जा दक्षता** चित्रनायक, शुभम ठाकरे, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, जितेन्द्र डबास एवं सुनील कुमार	106–118
32.	**जैविक खेती अपनाएं, पर्यावरण को शुद्ध बनाएं** राकेश कुमार, मुनीष लहरवान, मोहर सिंह एवं अरुण कुमार	119–121
33.	**मक्का की फसल के रोग और उनकी रोकथाम** मुनीष लहरवान, राकेश कुमार, मोहर सिंह एवं अंकुश	122–125
34.	**कृषि, खाद्य एवं डेयरी उद्योग के भविष्य में सौर ऊर्जा का महत्व** नीलम उपाध्याय एवं निलेश कुमार पाठक	126–130
35.	**भारत में जैविक डेयरी फार्मिंग** निशांत कुमार	131–135

राजभाषा खंड

भारत सरकार राजभाषा विभाग, नई दिल्ली द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम 2020–21 में निर्धारित न्यूनतम लक्ष्य	136
राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में राजभाषा उल्लास माह–2019 का आयोजन	137
भाकृअनुप के कार्यालयों व पदनाम के हिंदी अर्थ	147
विश्व पटल पर फैली महामारीः कोरोना (चित्रनायक सिन्हा)	149
असफलता सफलता से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है (उत्तम कुमार)	150
मेरी दो कविताएं (मृदुला उपाध्याय)	151
मेरी डायरी से (राकेश कुमार कुशवाहा)	152
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की ''गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी पत्रिका पुरस्कार योजना''	153
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की ''राजर्षि टंडन राजभाषा पुरस्कार योजना'' पुरस्कार	154

01 टिकाऊ डेयरी खेती के लिए जैव उर्वरकों के माध्यम से चारे की फसल का प्रबन्धन

आसिफ महम्मद, अनुपम चटर्जी, चम्पक भकत, राहुल कुमार मीणा एवं टी.के. दत्ता
पूर्वी क्षेत्रीय स्टेशन, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, कल्याणी, पश्चिम बंगाल

रासायनिक उर्वरकों के लगातार उपयोग मिट्टी की गुणवत्ता को कम कर रहे हैं और जल निकायों को दूषित कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप चारा फसलों की कम उत्पादकता और चारे की गुणवत्ता कम होती जा रही है। रासायनिक उर्वरक का अंधाधुंध उपयोग न केवल मिट्टी की गुणवत्ता को खराब कर रहा है, बल्कि पारिस्थितिक संतुलन पर भी प्रभाव डाल रहा है। इसके परिणामस्वरूप, जो किसान डेयरी पशुओं को पाल रहे हैं, वे अपने पशुओं की कम उत्पादकता की समस्याओं का सामना कर रहे हैं। जैव उर्वरक उन समस्याओं के लिए प्रभावी उत्तर हो सकते हैं। जैव उर्वरक का प्रभावी उपयोग रासायनिक उर्वरक पर निर्भरता को कम कर सकता है, दूसरी ओर मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं । जैव–उर्वरक के उपयोग से चारे की फसलों की खेती की लागत कम हो सकती है और लंबे समय में प्रति यूनिट भूमि में पैदावार भी बढ़ाई जा सकती है। इस गुणवत्ता वाले चारे की फसल से डेयरी पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सकती है जिससे डेयरी किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

जैव उर्वरक क्या हैं?

जैव उर्वरक वे पदार्थ हैं जिनमें जीवित सूक्ष्मजीव होते हैं, जो पौधे को पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाकर मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने में सक्षम होते हैं। दूसरे शब्दों में, जैव उर्वरक मिट्टी में वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सक्षम जीवित सूक्ष्मजीवों से प्राकृतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से पोषक तत्वों को जोड़ते हैं और पोटाश, फॉस्फेट आदि जैसे पोषक तत्वों को पौधों को उपलब्ध कराते हैं, जो अनुपलब्ध रूप में मिट्टी में रहते हैं।

चारा फसल उत्पादन में विभिन्न प्रकार के जैव उर्वरकों का उपयोग

जैव उर्वरक पाउडर या तरल रूप में उपलब्ध हैं और इनमें विभिन्न प्रकार के बैक्टीरिया, कवक, शैवाल या विभिन्न सूक्ष्मजीवों का संयोजन है। इनका उपयोग मिट्टी की सघनता, जड़ जमाव या बीजोपचार के माध्यम से किया जा सकता है। ये जैव–उर्वरक मिट्टी में वायुमंडलीय नाइट्रोजन को जोड़ने में मदद करते हैं और पौधों की वृद्धि के लिए फास्फोरस, पोटाशियम, जस्ता आदि उपलब्ध कराने में मदद करता है। चारे के उत्पादन के लिए सबसे आम प्रकार के जैव उर्वरकों का इस्तेमाल निम्नलिखित पैराग्राफ में दिया गया हैः

राइजोबियमः राइजोबियम एक प्रकार का बैक्टीरिया है जो दलहनी चारे की फसलों जैसे लोबिया, बरसीम, ल्यूसर्न आदि के साथ सहजीवन में रहता है। ये जीवाणु मिट्टी में वायुमंडल से प्रति हेक्टेयर 50–100 किलोग्राम नाइट्रोजन को स्थिरीकरण कर सकते हैं। मिट्टी में इन जीवाणुओं के लिए कृत्रिम बीज टीका का उपयोग किया जाता है।

एजोस्पिरिलमः इस प्रकार के बैक्टीरिया 20–40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकरण कर सकते हैं। यह जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के साथ–साथ पादप वृद्धिकारक हॉर्मोंस का स्राव करते हैं। एजोस्पिरिलम चारे की फसलों जिसमें C4 प्रकार के प्रकाश संश्लेषण होता है, सहजीवी संबंध भी बनाता है। चारे की फसल जैसे ज्वार, बाजरा, मक्का आदि में इस तरह की जैव उर्वरकों का उपयोग किया जा सकता है। यह अंकुरण से लेकर पौधे की वृद्धि तक में लाभकारी होते हैं।

एजोटोबैक्टरः इस प्रकार के जीवाणु चारे की खेती के लिए वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकरण करते

हैं। जैव–उर्वरक के रूप में एजोटोबैक्टर के उपयोग से चारे की फसल की ऊंचाई बढ़ सकती है और साथ ही पत्तियों की संख्या भी बढ़ सकती है। इस प्रकार के जीवाणु का उपयोग मक्का, ज्वार आदि चारे की फसलों के लिए किया जा सकता है।

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणुः यह इस प्रकार के जीवाणु का समूह है जैसे बेसिलस मेगाटेरियम वा फॉस्फेटिकम, बैसिलस सबटिलिस, पैंटो, एग्लोमेरैंस, स्यूडोमोनास पुतिडा इत्यादि जो कि मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फेट में परिवर्तिन कर उर्वरक की कार्य क्षमता को बढ़ाता है और पौधे द्वारा फॉस्फेट की उपलब्धता बढ़ाने में मदद करते हैं। यह पौधे को उगाने के लिए 1 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर फॉस्फेट तक उपलब्ध करा सकता है। ये सूक्ष्मजीव मृदा में पहले से मौजूद फॉस्फेट को मुक्त करके रासायनिक उर्वरकों के उपयोग की आवश्यकता को कम कर सकते हैं। इन जैव उर्वरकों का उपयोग सभी प्रकार की चारा फसलों में किया जा सकता है।

पोटाश जुटाने वाले जीवाणुः ये जीवाणु पौधे की वृद्धि के लिए मृदा में उपलब्ध पोटाश का उपयोग करते है। इन सूक्ष्मजीवों को मृदा में मिलाकर या बीज के साथ मिलाकर उपयोग किया जाता है। सभी प्रकार की चारा फसलों की खेती के लिए इन जैव उर्वरकों का उपयोग किया जा सकता है।

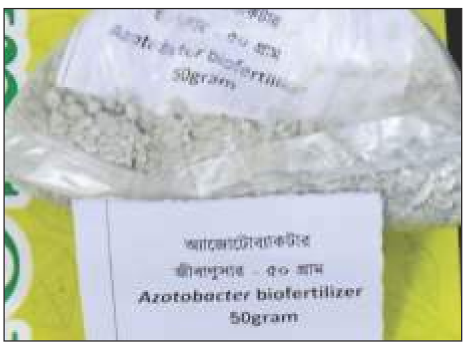

एजोटोबैक्टर
(Azotobacter chroococcum)
CFU Count= 5 X 10^7/ gm)

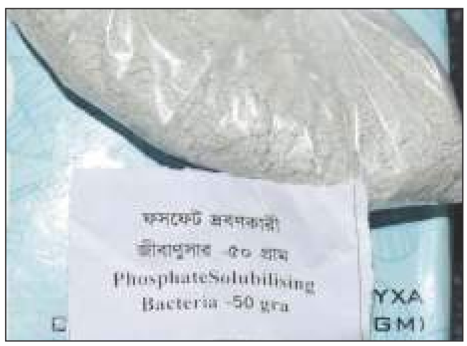

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु
(Bacillus polymyxa)
CFU Count= 5 X 10^7/ gm)

राइजोबियम जैव उर्वरक का उपयोग करने वाला किसान
(Rhizobium trifolii in Berseem)

चारा फसल उत्पादन में जैव उर्वरकों के उपयोग से लाभ

1. इससे चारे का उत्पादन 20–30% तक बढ़ सकता है।
2. इससे रासायनिक उर्वरकों की लागत कम होती है क्योंकि यह 25% नाइट्रोजन और पोटाश उर्वरकों की जगह ले सकता है।
3. कुछ जैव–उर्वरक पौधों के विकास को बढ़ावा देने वाले पदार्थों को छोड़ते हैं, जो चारा फसलों की विकास दर को बढ़ा सकते हैं।
4. जैविक रूप से फंसे हुए पोटाश और फॉस्फेट को मुक्त करके जैव उर्वरक के रूप में मृदा की प्राकृतिक उर्वरता को बहाल करते हैं।
5. कुछ मामलों में जैव उर्वरक पौधों की बीमारियों से लड़ने की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करते है।
6. जैव–उर्वरकों का अनुप्रयोग पर्यावरण के लिए अनुकूल है क्योंकि मृदा में कोई रासायनिक अवशेष शेष नहीं रहता है।

चारा फसलों की खेती के लिए जैव उर्वरकों के उपयोग के महत्वपूर्ण बिंदु

1. रासायनिक उर्वरकों और जैव उर्वरकों को एक ही समय में उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।
2. जैव उर्वरकों को उच्च तापमान में संग्रहित नहीं किया जाना चाहिए। उन्हें छाया के साथ, सूखी जगह पर संग्रहित किया जाना चाहिए।
3. जैव उर्वरकों वाले पैकेटों में प्रभावी सूक्ष्मजीवों की संख्या एक वर्ष के पश्चात कम हो जाती है, किसानों को खरीद से पहले जैव उर्वरकों की समाप्ति तिथियों की जांच करनी चाहिए।
4. जैव उर्वरकों के प्रभावी परिणाम के लिए, मृदा में कार्बनिक पदार्थों की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए, इस प्रकार जैव खाद को मृदा में एक वर्ष में एक से दो बार उपयोग किया जाना चाहिए ।
5. मृदा समस्या के लिए सुधारात्मक उपाय जैसे कि जिप्सम, चूना आदि के उपयोग पहले किया जाना चाहिए, उसके बाद जैव उर्वरकों का उपयोग किया जाना चाहिए।
6. राइजोबियम आधारित जैव उर्वरकों के लिए, चारे की फसल के उपयुक्त विशिष्ट राइजोबियम प्रजातियों को लगाया जाना चाहिए, जैसे बरसीम चारे की फसल के लिए राइजोबियम ट्राइफोली, लूसर्न चारा फसल के लिए राइजोबियम मेलिलोटी आदि का उपयोग करना चाहिए।
7. जैव उर्वरकों के साथ बीज उपचार के लिए पर्याप्त मात्रा में गुड़ जैसे घोल का उपयोग किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

डेयरी किसान जैव उर्वरकों के अनुप्रयोग द्वारा आर्थिक रूप से लाभकारी तरीके में चारे की फसलों की खेती कर सकते हैं। इन जैव उर्वरकों से न केवल चारे की फसलों की पैदावार बढ़ाई जा सकती है, बल्कि इससे मृदा स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है। ये सूक्ष्मजीव 25 प्रतिशत तक रासायनिक उर्वरकों की जगह ले सकते हैं, जिससे डेयरी उद्यम में लाभ मार्जिन बढ़ जाता है। जैव उर्वरक न केवल डेयरी किसानों को आर्थिक लाभ देते हैं, बल्कि मिट्टी की उर्वरता को भी बढ़ा सकते हैं, जो लंबे समय में रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता को कम कर सकते हैं।

अधिक उपज के लिए मिट्टी की जाँच एवं पोषक तत्वों का संतुलित प्रबंधन जरुरी

02

उत्तम कुमार, राकेश कुमार, हरदेव राम, मुनीष लहरवान, अनिल कुमार डागर एवं रवि रावत
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

फसलों व पौधों की उचित बढ़वार के लिये सामान्य रूप से 16 पोषक तत्वों की जरूरत होती है, जिसमें से 03 पोषक तत्व कार्बन, हाईड्रोजन तथा आक्सीजन पौधे वातावरण तथा पानी से ले लेते हैं। शेष 13 पोषक तत्व जैसे नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर एवं सूक्ष्म तत्व–आयरन, कॉपर, जिंक, मैंगनीज,बोरॉन, क्लोरीन एवं मालीब्डेनम पौधों को भूमि से प्राप्त होता है।

इसमें से किसी भी एक तत्व की कमी या अधिकता होने पर फसल की वृद्धि एवं उत्पादकता प्रभावित होती है। एक तत्व की कमी या अधिकता दूसरे तत्व के अवशोषण पर भी प्रभाव डालती है। इसी तरह भूमि की अम्लीयता, क्षारीयता तथा घूलनशील लवणों की मात्रा भी फसलों व पौधों के विकास को प्रभावित करती है। अम्लीय भूमि में फॉस्फोरस, बोरॉन, मालीब्डेनम की उपलब्धता कम हो जाती है, जबकि आयरन, मैंगनीज, एल्युमिनियम की उपलब्धता विषैले स्तर तक पहुँच जाती है।

आज के समय में सघन कृषि प्रणाली अपनाने तथा संतुलित पोषक तत्वो का उचित प्रबंधन न करने के कारण भूमि की उत्पादकता में निरंतर कमी होती जा रही है। खेती को टिकाऊ एवं लाभदायक बनाने के लिये मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण एवं सुधार आवश्यक है। एक ही प्रकार के फसल का उत्पादन लगातार करने एवं फसल चक्र में दलहनी फसल को शामिल न करने से भूमि की उर्वरता घट रही है।

जैविक खादों का उपयोग न करने से भी मिट्टी की संरचना, जलधारण क्षमता तथा स्वास्थ्य में उल्टा असर पड़ा है। असंतुलित मात्रा में उर्वरकों के उपयोग से भूमि और जल प्रदूषित हो रहा है। उर्वरक खपत एवं कास्त लागत बढ़ने के बावजूद उत्पादकता में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो रही है। अतः, खेतों की मिट्टी का परीक्षण करके संतुलित एवं समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन वर्तमान समय में बहुत जरुरी है।

भूमि की जाँच

कृषि क्षेत्र में मिट्टी परीक्षण से अभिप्राय है कि मिट्टी में पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता का पता लगाकर उर्वरक मात्रा की सिफारिशों को निर्धारित करने के लिए भूमि की जाँच की जाती है। सघन खेती में एक फसल चक्र के पूरा होने पर प्रतिवर्ष अन्यथा दो वर्ष में एक बार मिट्टी परीक्षण अवश्य कराना चाहिये। फसल की बुआई/रोपाई के पहले सूखे खेत से मिट्टी नमूना एकत्र करना चाहिये।

भूमि की जाँच के लिए आवश्यक सामग्री

फावड़ा, खुरपी, कोर सैंपलर, नमूने बैग, प्लास्टिक की ट्रे या बाल्टी आदि।

मिट्टी का नमूना लेने का सही तरीका

खेत से मिट्टी का नमूना इस तरह से इकट्ठा किया जाना चाहिए कि एकत्र किए गए नमूने खेत का सही मायने में प्रतिनिधित्व करते हों। प्रयोगशाला विश्लेषण से प्राप्त परिणामों की उपयोगिता मिट्टी के नमूने की शुद्धता पर निर्भर करती है। खेत से बड़ी संख्या में नमूनों का संग्रहण करना चाहिए, ताकि उप–नमूने द्वारा वांछित आकार का नमूना प्राप्त किया जा सके। सामान्य तौर पर नमूना संग्रहण प्रत्येक दो हेक्टेयर क्षेत्र के लिए एक नमूने की दर से किया जाता है।

अवलोकन और किसानों के अनुभव के आधार पर खेत को विभिन्न समरूप इकाइयों में विभाजित कर नमूना संग्रहण के लिए खेत में जिग–जैग पैटर्न में कई स्थानों का चयन किया जाता है।

स्थान चुनने के पश्चात ऊपरी सतह से कचरा पत्थर आदि साफ कर खुरपी से **"वी"** आकार का लगभग 6 इंच गहरा गड्ढा करें। इसकी एक सतह से आधा ईंच मिट्टी की परत खुरच कर एकत्र करें। प्रत्येक नमूने इकाई से कम से कम 10 से 15 नमूने लीजिए और एक बाल्टी या ट्रे में रखें। सभी जगहों से प्राप्त मिट्टी को आपस मे मिलाकर छाया में सुखाएं फिर ढ़ेलों को फोड़कर बारिक करके अच्छी तरह से मिला लें।

मिट्टी की मात्रा आधा किलो से अधिक हो तो इसे साफ कपड़े पर गोलाकार ढ़ेर बना लें। उसके चार बराबर भाग कर आमने सामने के भाग को लेकर फिर मिलाएं, बाद में चार बराबर भाग कर के थैली में भरें। नमूने के साथ सूचना पत्र में जानकारी (किसान का नाम, पता, खसरा नंबर, खेत की पहचान, नमूना दिनांक, जमीन की स्थिति, मिट्टी का प्रकार, लगाई जाने वाली फसल का नाम, गत वर्ष ली गई फसल का नाम एवं उपयोग की गई खाद/उर्वरक की मात्रा आदि) भरकर थैली में रखें। इक्कट्ठे किए गए नमूनों को कृषि अधिकारी के माध्यम से निकटतम मृदा जाँच प्रयोगशाला भेजें एवं प्राप्त परिणाम के अनुसार ही बताई गई मात्रा में उर्वरक उपयोग करें।

मृदा नमूना लेने के दौरान निम्न सावधानी बरतनी चाहिए

मृदा के नमूने लेने के लिए जंग लगे औजारों, उर्वरकों के बोरे आदि का उपयोग न करें।

मिट्टी का नमूना पड़ती अवधि के दौरान एकत्र करना चाहिए।

जिग–जैग पैटर्न में कई स्थानों पर नमूना लेना एकरूपता सुनिश्चित करता है।

जल जमाव वाले स्थल, पेड़ों, खाद के ढेर, मुख्य मेंड और सिंचाई नाली के पास से नमूने इक्कट्ठे नहीं करने चाहिए।

ऐसे खेत जो स्वरूप, स्थिति, उत्पादन और पूर्व प्रबंधन में समान हैं, को एक एकल नमूना इकाई में वर्गीकृत किया जाना चाहिए। भिन्न–भिन्न रंग, ढ़लान, जल निकासी, चूना–जिप्सम उपयोग, उर्वरक उपयोग, फसल प्रणाली आदि वाले खेत में अलग–अलग नमूनों को इकट्ठा करें।

कम गहरी जड़ वाली फसलों के लिए 15 से॰मी॰ गहराई तक नमूने एकत्र करें। जबकि, अधिक गहरी जड़ वाली फसलों के लिए 30 से॰मी॰ गहराई तक नमूने एकत्र करने चाहिए।

भूमि परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग

पी.एच.– यह मिट्टी की अम्लीयता या क्षारीयता को दर्शाता है। इसका मान 0 से 14 तक होता है। साधारणतः 6 से 7.5 पी.एच. सामान्य श्रेणी में आता है तथा सभी फसलों के उत्पादन के लिये उपयुक्त है, इससे अधिक होने पर क्षारीय और कम होने पर भूमि अम्लीय कहलाती है। क्षारीय में जिप्सम एवं अम्लीय भूमि में चूना भू–सुधारक का उपयोग करना चाहिए।

विद्युत चालकता– मिट्टी में उपलब्ध लवण के आधार पर भूमि की विद्युत चालकता निर्धारित की जाती है। एक डेसी साइमन प्रति वर्ग से.मी. से कम विद्युत चालकता वाली भूमि सभी फसलों के उत्पादन हेतु उपयुक्त है। इससे अधिक विद्युत चालकता होने पर गोबर/कम्पोस्ट खाद का उपयोग किया जाना चाहिए।

आर्गेनिक कार्बन– भूमि में उपलब्ध आर्गेनिक कार्बन 50 प्रतिशत से कम होने की स्थिति में गोबर/कम्पोस्ट खाद, हरीखाद का उपयोग किया जाना चाहिए।

नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश– यह तीनों तत्व मुख्य पोषक तत्व की श्रेणी में आते हैं, इनका फसलों द्वारा अधिक मात्रा में भूमि से अवशोषण किया जाता है। मिट्टी परीक्षण में उर्वरता स्तर निम्न होने की स्थिति में सिफारिश मात्रा में 50% बढ़ाकर, मध्यम उर्वरता स्तर में सिफारिश मात्रा का तथा उच्च स्तर होने पर सिफारिश मात्रा में 50% कमी कर उपयोग करना चाहिए।

सल्फर– यह द्वितीयक पोषक तत्व की श्रेणी में आता है। तिलहनी एवं दलहनी फसलों में तेल एवं प्रोटीन के निर्माण में सल्फर तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसकी पूर्ति हेतु जिप्सम/पायराईट/सिंगल सुपरफास्फेट का उपयोग करना चाहिए।

जिंक, आयरन, कॉपर, बोरॉन, मैंगनीज, मालीब्डेनम– यह छः तत्व सूक्ष्म पोषक तत्व की श्रेणी में आते है, इनमें से एक भी तत्व की कमी या अधिकता होने पर पौधों द्वारा तत्वों का अवशोषण प्रभावित होने से फसल की बढ़वार एवं उत्पादकता में कमी आती है। अतः, सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा क्रांतिक स्तर से कम होने पर सम्बंधित तत्व की पूर्ति किया जाना आवश्यक है। अनाज वाली फसलों में जिंक तत्व की कमी हेतु जिंक सल्फेट का उपयोग किया जाना चाहिए।

जैविक उर्वरको की उपयोग मात्रा एवं पौधों को उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा

क्र.स	जैविक उर्वरक उर्वरक का नाम	फसल	पोषक तत्व (कि.ग्रा./हे.)	बीजोपचार (कि.ग्रा./हे.)	भूमि उपचार (कि.ग्रा./एकड़)
1	एजोटोबेकटर	गेहूं, तिल, सरसों, गन्ना, सब्जी	15–20 नत्रजन	5–10	–
2	राइजोबियम	दलहनी	30–80 नत्रजन	5–10	–
3	एजोस्प्रिलियम	धान	25–30 नत्रजन	5–10	4
4	पी.एस.बी. कल्चर	सभी फसलें	20–30 फॉस्फोरस	5–10	4
5	के.एम.बी. कल्चर	सभी फसलें	20–30 पोटॉश	5–10	4
6	नील हरित काई	धान	25–30 नत्रजन	5–10	4
7	वैम (माइकोराइजा)	सभी फसलें	30–50 फॉस्फोरस	–	–

विभिन्न उर्वरको में पोषक तत्वो की मात्रा

उर्वरक का नाम	उपलब्ध पोषक तत्व एवं उनकी मात्रा (प्रतिशत)			
	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटॉश	सल्फर
यूरिया	46	–	–	–
डी.ए.पी.	18	46	–	–
म्यूरेट ऑफ पोटाश	–	–	60	–
अमोनियम सल्फेट	20.6	–	–	24
सिंगल सुपर फॉस्फेट	–	16	–	12
इफको एन.पी.के. 12	32	16	–	–
ट्रिपल सुपर फॉस्फेट	–	48	–	–

विभिन्न जैविक खादों में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा

खाद का नाम	नत्रजन (कि.ग्रा./क्विं)	फॉस्फोरस (कि.ग्रा./क्विं)	पोटाश (कि.ग्रा./क्विं)
गोबर खाद	0.5	0.2	0.5
कम्पोस्ट	0.8	0.5	0.6
हरी खाद	2.5	0.5	1.5
वर्मी कम्पोस्ट	1.2	0.5	1.5
नाडेप कम्पोस्ट	1.0	0.6	1.5
नीम की खली	5.0	1.0	1.5

कोरोना संक्रमण : बचाव में ही बचाव है

सार्थक कुशवाहा

इलाज से बचाव अच्छा

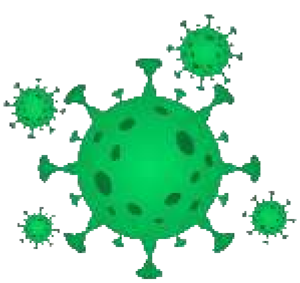

कोरोना वायरस का मुख्य लक्षण तेज बुखार व सांस में तकलीफ होना है। संक्रमण के फलस्वरूप बुखार, जुकाम, सांस लेने में तकलीफ, नाक बहना और गले में खराश जैसी समस्या उत्पन्न होती हैं। यह वायरस एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है, इसलिए इसे लेकर बहुत सावधानी बरती जा रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक कोरोना वायरस से संक्रमित होने पर 88 फीसदी को बुखार, 68 फीसदी को खांसी और कफ, 38 फीसदी को थकान, 18 फीसदी को सांस लेने में तकलीफ, 14 फीसदी को शरीर और सिर में दर्द, 11 फीसदी को ठंड लगना और 4 फीसदी में डायरिया के लक्षण दिखते हैं। रनिंग नोज यानी नाक बहना कोरोना वायरस का लक्षण नहीं माना जा रहा है।

स्वास्थ्य मंत्रालय ने समय समय पर कोरोना वायरस से बचने के लिए दिशानिर्देश जारी किए हैं। इनके मुताबिक, हाथों को साबुन से धोना चाहिए। अल्कोहल आधारित हैंड रब का इस्तेमाल भी किया जा सकता है। खांसते और छीकते समय नाक और मुंह रूमाल या टिश्यू पेपर से ढककर रखें। जिन व्यक्तियों में कोल्ड और फ्लू के लक्षण हों उनसे दूरी बनाकर रखें। इस संक्रमण से बचाव के लिए संक्रमित लोगों से दूर रहना चाहिए। भीड़ में जाने पर हाथ–मुंह धोना चाहिए, बुखार और खांसी होने पर घरेलू और सामान्य उपचार करने के बजाय तुरंत डॉक्टर से सलाह लेनी चाहिए। बार–बार हाथ को अच्छे तरीके से धोने के बाद ही मुंह व नाक को छूने का प्रयास करें। घर में सफाई का ध्यान रखने और दूसरों से दूरी बनाकर रहने से हम इससे अपना बचाव कर सकते हैं। साथ ही इससे दूसरे लोग भी संक्रमित होने से बच जाते हैं। अगर आपको लगता है कि आपमें कोरोना वायरस के लक्षण हैं तो खुद को घर में कैद कर लें। किसी से भी नहीं मिलें। एक कमरे में ही रहें और अलग बाथरूम का उपयोग करें। मुंह पर मास्क लगाएं व सोशल डिस्टेंसिंग जरूर रखें। अपने मोबाइल पर आरोग्य सेतु एप जरूर इंस्टाल रखें व ब्लूटूथ हमेशा ऑन रखें। इससे आपको आपके आसपास संक्रमित व्यक्ति के होने की सूचना मिलती रहेगी।

कोरोना से बचाव के लिए घरेलू आयुर्वेदिक उपचार अपनाए जाने चाहिए। आयुर्वेद में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने की बात होती है। इसके लिए तुलसी, अदरख, गुड़, सोंठ, गोल मिर्च आदि का चाय के रूप में सेवन करें। इनके सेवन से पाचन शक्ति भी मजबूत होगी। सरसों तेल में कपूर मिलाकर कुछ बूंदे नाक में डालें, जिससे श्वास लेने में कठिनाई नहीं होगी और प्रतिरोधक क्षमता भी बनी रहेगी। संक्रमण से बचने के लिए अदरख व मुलेठी का सेवन अधिक करें। अदरख को आयुर्वेद में विषनाशक कहा जाता है। चीनी की जगह गुड़ का सेवन करें। ज्यादा भीड़ वाले इलाकों में जाने से परहेज करें। साथ ही हल्दी डालकर दूध का सेवन रात में सोने से पहले करें।

फसल अवशेष प्रबंधन

योगेश कुमार, सुरिन्द्र कुमार, मोहर सिंह, ममता भारद्वाज एवं अरुण कुमार टी. वी.
कृषि विज्ञान केन्द्र, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

03

किसानों के समक्ष फसलों के अवशेष खेत में जलाने की समस्या बीते कई वर्षों से देखी जा रही है। देश में कई क्षेत्र ऐसे है जहाँ अगली फसलों की बुवाई तथा खेत तैयार करने के लिए किसान फसलों के अवशेषों को जला देते हैं। यह उन क्षेत्रों में देखा गया है जहाँ धान और गेहूँ की फसल की कटाई कम्बाइन हार्वेस्टर से की जाती है जैसे पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश, जिससे कि बची हुई फसलों के अवशेष जलाए जाने के कारण न केवल पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, साथ ही साथ मिटटी में उपलब्ध कई पोषक तत्त्व नष्ट होने के कारण मिट्टी को काफी नुकसान पहुँच रहा है। यदि किसान भाई इन फसल अवशेषों को खेत में मिलाएंगे तो न केवल मिट्टी अधिक उपजाऊ होगी, बल्कि खाद पर होने वाले खर्च पर करीब दो हजार रुपये प्रति हेक्टेयर की बचत होगी। फसल अवशेष खेत में ही रहें व इन्हें जलाया न जाए, इसी योजना के प्रोत्साहन के लिए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा किसानों को फसल अवशेष प्रबंधन मशीनरी खरीदने हेतु 50 प्रतिशत का अनुदान दिया जा रहा है एवं फसल अवशेष प्रबंधन मशीनरी के कस्टम हाईरिंग केंद्र स्थापित करने हेतु 80% तक का अनुदान दिया जा रहा है।

खेत में अवशेष जलाने से हानियाँ

जब खेत में अवशेष जलाया जाता है तो उससे मिटटी का तापमान बढ़ जाता है और कई लाभकारी सूक्ष्म जीव, लाभदायक कीट जैसे केंचुए आदि जल कर नष्ट हो जाते हैं।

फसल अवशेष जलाने पर वातावरण में कई हानिकारक गैस जैसे कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है, इससे वातावरण प्रदूषित होता है।

मृदा में कई जरूरी पोषक तत्त्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश व सल्फर जैसे बेहद जरूरी पोषक तत्त्व जल कर नष्ट हो जाते है।

फसल अवशेष जलाने का दुष्प्रभाव मानव के स्वास्थ्य पर भी देखा गया है जैसे कि

- फसल अवशेष जलाने पर धुएं के कारण स्मोग जैसी स्थिति पैदा हो जाती है जिससे सड़क पर वाहनों के टकराने की दुर्घटनाएँ बढ़ जाती हैं।
- ग्रीन हाउस गैसों के अधिक मात्रा में उत्सर्जन से वैश्विक तपन बढ़ रही है।
- सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड के कारण आँखों में जलन हो जाती है।
- फसल अवशेष के साथ–साथ खेत के किनारों के पेड़ों को भी आग से नुकसान पहुँचता है।
- चर्म रोग की शिकायत बढ़ना।

खेतों में फसल प्रबंधन से लाभ

किसी भी दृष्टिकोण से फसल अवशेषों को जलाना उचित नहीं है, बल्कि फसल प्रबंधन के बहुत सारे लाभ हैं, जैसे

1. मृदा के भौतिक गुणों में सुधार

फसल अवशेषों को मिलाने से मृदा की परत में कार्बोनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मृदा की सतह की कठोरता कम होती है तथा जलधारण क्षमता एवं मृदा में वायु–संचरण में वृद्धि होती है।

2. मिट्टी की उर्वराशक्ति में सुधार

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से मृदा के रसायनिक गुण जैसे उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पीएच में सुधार होता है।

3. कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता में वृद्धि

कार्बनिक पदार्थ ही एकमात्र ऐसा स्त्रोत है जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों को उपलब्ध हो पाते हैं तथा कम्बाइन द्वारा कटाई किए गए प्रक्षेत्र उत्पादित अनाज की तुलना में ज्यादा अवशेष होते हैं। यह सड़कर मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करते हैं।

4. पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि

अवशेषों में लगभग सभी आवश्यक पोषक तत्वों के साथ 0.45 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा पाई जाती है, जो कि एक प्रमुख पोषक तत्त्व है।

5. उत्पादकता में वृद्धि

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर आने वाली फसलों की उत्पादकता में भी काफी मात्रा में वृद्धि होती है। अतः, मृदा स्वास्थ्य पर्यावरण एवं फसल उत्पादकता को देखते हुए फसल अवशेषों को जलाने की बजाए भूमि में मिला देने से काफी लाभ होता है।

कृषि मशीनों द्वारा फसल अवशेष प्रबंधन

पुरानी कृषि पद्धति के अनुसार धान की कटाई के बाद किसान फसल के अवशेष जलाकर खेतों की बार–बार जुताई करके गेहूँ की बिजाई करते हैं, जिस पर काफी खर्च आता है। इसे कम करने के लिए जागरूक किसान जीरो ड्रील व हैप्पी सीडर के इस्तेमाल से धान की कटाई के बाद बिना जुताई, बुवाई कर सकते हैं। इससे किसानों का गेहूँ की बिजाई पर खर्च कम आएगा।

हैप्पी सीडर से बुवाई करने के लाभ

- पर्यावरण प्रदूषण जो कि काफी बड़ी समस्या बन कर हमारे जीवन को प्रभावित कर रहा है, हैप्पी सीडर मशीन इस समस्या से कुछ हद तक निजात दिलाने में सक्षम है।

मृदा में पोषक तत्वों का ह्रास (मिलियन टन)

मृदा में अनुमानित पोषक तत्त्व संतुलन	वर्ष	वर्ष
	2000	2020
(i) रासायनिक उर्वरकों का उपयोग	18 मिलियन टन	29 मिलियन टन
(ii) फसल द्वारा पोषक तत्व अवशेष	28 मिलियन टन	37 मिलियन टन
(iii) शेष	10 मिलियन टन	8 मिलियन टन
(iv) कार्बोनिक पदार्थों से पोषक तत्वों की अनुमानित उपलब्धता	5 मिलियन टन	7 मिलियन टन
		स्त्रोतः टंडन, 2004

- सजीवांश पदार्थ को बढ़ाने एवं मिट्टी के भौतिक और रासायनिक अवस्था में सुधार के लिए फसलों के अवशेष मिट्टी में मिलना अत्यंत लाभदायक है।
- दानों के पूर्ण विकास के लिए मृदा का तापमान दिसम्बर–जनवरी में गर्म और मार्च–अप्रैल में ठंडा होना चाहिए, फसल अवशेष ऐसा करने में सहायक साबित होते हैं।

जीरो टीलेज सीड ड्रिल द्वारा बुवाई के लाभ

- खरपतवारों के प्रकोप को कम करने के लिए इस तकनीक से बुवाई करना लाभदायक है क्योकि जुताई न करने से खरपतवारों के बीज मृदा की गहराई में पड़े रहते है और उनका अंकुरण नहीं हो पाता है।
- पानी की बचत में भी यह तकनीक अहम् भूमिका निभाती है, जैसे धान की आखिरी सिंचाई की नमी में भी गेहूँ की बुवाई की जा सकती है जिससे पानी की बचत होगी।
- प्रदूषण को कम करने में भी अहम् है क्योकि इस मशीन से गेहूँ की बुवाई करने पर धान के अवशेषों में आग नहीं लगानी पड़ती है।

चोपर या मल्चर मशीन के लाभ

फसल अवशेषों को काटकर उसके टुकड़े करना तथा अवशेषों को समान रूप से फैलाना इस मशीन द्वारा किया जाता है। भूमि की सतह पर फसल अवशेषों की सतह बनने से खरपतवारों का प्रकोप कम किया जा सकता है और मृदा की जलधारण क्षमता व पोषक तत्वों में वृद्धि की जा सकती है।

रिवर्सिब्ल मोल्ड बोर्ड प्लो के लाभ

इस मशीन का उपयोग करके अवशेषों को मृदा में 15 से 30 से.मी. गहराई में मिलाया जाता है। मृदा की जलधारण क्षमता को बढ़ाने के लिए यह उपयोगी है।

निष्कर्ष

जिस प्रकार हमें एक शुद्ध वातावरण प्राप्त हुआ है, हमारी जिम्मेदारी है कि आने वाली पीढ़ी का जीवन भी स्वस्थ हो इसके लिए हमें कुछ जरूरी कदम उठाने की आवश्यकता है, जैसे कि फसल अवशेषों को जलाकर नष्ट ना करना। इससे न केवल पर्यावरण प्रदूषण से बचा जा सकता है, बल्कि मृदा की उपजाऊ शक्ति तथा फसल उत्पादन को भी बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार हम अपनी मृदा के जीवांश पदार्थ व उर्वरा शक्ति में वृद्धि करके जमीन को खेती योग्य सुरक्षित रख सकेंगे और उसकी उपजाऊ शक्ति को बरकरार रख सकेंगे।

संदर्भ

टंडन, एच.एल.एस (2004). Fertilizers in Indian Agriculture: from 20th – 21st Century. FDCO, New Delhi, 239 pp.

04 गैर-गौजातीय प्रजातियों के दूध की संरचना और पोषक मूल्य

हिना शर्मा, गौरव कुमार देशवाल एवं आशीष कुमार सिंह
डेयरी प्रौद्योगिकी प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

दूध, एक स्तन ग्रंथि स्राव, व्यापक रूप से तरल खाद्य पदार्थ है जो मैक्रो और सूक्ष्म पोषक तत्वों द्वारा अर्जित अपने स्वास्थ्य के फायदेमंद होता है। इसमें वसा, प्रोटीन, लैक्टोज, खनिज, एंजाइम, कोशिकाएं, हार्मोन, इम्युनोग्लोबुलिन और विटामिन होते हैं। प्रोटीन को अघुलनशील प्रोटीन (केसिंस) और घुलनशील प्रोटीन (व्हे प्रोटीन) में वर्गीकृत किया जाता है। पिछले तीन दशकों में, विश्व दूध उत्पादन में 59 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है, 1988 में 530 मिलियन टन से बढ़कर 2018 में 843 मिलियन टन हो गई। भारत दुनिया का सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश है, जिसमें 22 प्रतिशत वैश्विक उत्पादन है, इसके बाद संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, पाकिस्तान और ब्राजील के देश है 1970 के दशक के बाद से, दूध उत्पादन में सबसे अधिक विस्तार दक्षिण एशिया में हुआ है, जो कि विकासशील दुनिया में दूध उत्पादन वृद्धि का मुख्य चालक है। दुनिया भर में लगभग 150 मिलियन परिवार दूध उत्पादन में लगे हुए हैं। अधिकांश विकासशील देशों में, दूध का उत्पादन छोटे शेयरधारकों द्वारा किया जाता है, और दूध उत्पादन घरेलू आजीविका, खाद्य सुरक्षा और पोषण में योगदान देता है। दूध छोटे पैमाने पर उत्पादकों के लिए अपेक्षाकृत जल्दी रिटर्न प्रदान करता है और नकदी आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। हाल ही में, गैर–गोजातीय दूध उत्पादन में भी जबरदस्त वृद्धि हुई है और बड़े पैमाने पर तरल दूध और अन्य मूल्यवर्धित उत्पादों के रूप में गोजातीय दूध के लिए एक संभावित विकल्प के रूप में शोषण किया गया है। गैर–गोजातीय दूध जैसे भेड़, बकरी, ऊंट और गधे को उनके अतिरिक्त पोषण और स्वास्थ्य लाभ के लिए खोजा गया है।

बकरी का दूध

बकरी उत्पादन विकासशील देशों की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जलवायु और कठोर जलवायु परिस्थितियों और अलग–अलग आहार आहारों के लिए बकरियों की अनुकूलन क्षमता अधिक होती है, जिसके तहत यह जानवर विकसित हुए और अंत में निरंतर बने रहे। बकरी का दूध ग्रामीण लोगों के लिए बुनियादी पोषण और निर्वाह का एक उत्कृष्ट स्रोत है जो लगभग 70% भारतीय आबादी का गठन करते हैं। बकरी के दूध में 3.5–4% वसा ग्लोब्यूल्स होता है, जिसका आकार 3–3.5% के बीच होता है। बकरी का दूध प्रोटीन संरचना (α_s1 कैसिइन की कम मात्रा) में भिन्न होता है लेकिन इसमें लैक्टोज (4.8%) और प्रोटीन (3.6%) की मात्रा समान होती है। इन गुणों के आधार पर, बकरी का दूध किसानों और उपभोक्ताओं को गोजातीय दूध की तुलना में एक ऊपरी छोर प्रदान करता है, जिसके परिणामस्वरूप डेयरी उत्पादों, नरम जेल उत्पादों, में उच्च जल धारण क्षमता और कम चिपचिपापन की चिकनी बनावट होती है। यह शिशुओं और लैक्टोज असहिष्णुता/गाय के दूध प्रोटीन एलर्जी से पीड़ित व्यक्तियों के लिए भी उपयुक्त पाया जाता है। बकरी के दूध के उत्पादों जैसे कि दही, पनीर, पनीर, बकरी के दूध का पाउडर, आइसक्रीम आदि के विकास के लिए कई रिपोर्टें प्रलेखित की गई हैं। ये ऐसे उत्पाद हैं जो उपभोक्ताओं द्वारा पसंद किए जा रहे हैं और खाद्य उद्योगों के बीच लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं।

भेड़ का दूध

भेड़ का दूध, गाय और बकरी के दूध के बाद तीसरा सबसे व्यापक रूप से उपभोग करने वाला दूध है। यह गायों और बकरी के दूध की तुलना में कुल ठोस पदार्थों की उच्च मात्रा और अधिक मात्रा में पोषक तत्व (जैसे प्रोटीन, वसा, विटामिन और खनिज) रखता है। इसलिए, उत्पाद की गुणवत्ता, उच्च उपज और पोषण

के कारण भेड़ डेयरी उत्पादों ने बाजार में बिक्री योग्यता प्राप्त की है। भेड़ के दूध का उपयोग मुख्य रूप से सुसंस्कृत डेयरी उत्पादों के उत्पादन के लिए किया जाता है, जैसे कि, चीज़, दही, और व्हे चीज, क्योंकि इसमें उच्च मात्रा में प्रोटीन, वसा और कैल्शियम होता है। कच्चे भेड़ के दूध को फ्रीज़ करना आम बात है तथा डेयरी उत्पादों में प्रसंस्करण के लिए दूध की पर्याप्त मात्रा को जमा करने का तरीका भी है। 27°C पर जमे भेड़ का दूध 12 महीनों तक प्रोटीन की स्थिरता को बनाए रखता है। हालांकि, भेड़ के दूध की उच्च गुणवत्ता बनाए रखने के लिए, इसे 20°C से नीचे के तापमान पर तेजी से जमा और संग्रहीत किया जाना चाहिए। इसमें गाय के दूध की तुलना में उच्च सांद्रता (लगभग 6–7%) और छोटे आकार के वसा ग्लोब्यूल्स (~3.0 माइक्रोन) का एक समान फैलाव होता है। यह विशेषता चरण पृथक्करण के बिना भेड़ के दूध को फ्रीज करना भी संभव बनाती है। इसके अलावा, भेड़ के दूध और बकरी के दूध में एग्लूटीनिन की कमी भी, गाय के दूध की तुलना में, इनको अधिक सुपाच्य बनाती है। इसमें प्रोटीन का उच्च स्तर (बकरी और गाय के दूध से दुगना प्रोटीन), लिपिड, खनिज और मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक विटामिन और 5932 kJ/kg के बराबर कैलोरी मान होता है। भेड़ के दूध में उच्च प्रोलिन सामग्री भी इसे अधिक पौष्टिक बनाती है और हीमोग्लोबिन के उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। दूध प्रोटीन के एंजाइमैटिक हाइड्रोलिसिस अंशों को जारी कर सकते हैं जो एंटी बायोटिक, एंटीमाइक्रोबियल, ओपिओइड, एंटीऑक्सिडेंट, इम्युनोमोडायलेटरी या मिनरल–बाइंडिंग जैसे विशिष्ट जैविक गतिविधियों को करने में सक्षम हैं। ऐसे प्रोटीन के टुकड़े, जिन्हें बायोएक्टिव पेप्टाइड्स के रूप में जाना जाता है, का निर्माण गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल पाचन और/या खाद्य प्रसंस्करण के दौरान अग्रगामी निष्क्रिय प्रोटीन से होता है।

ऊंटनी का दूध

ऊंटनी का दूध अपनी अनूठी और स्वास्थ्य लाभकारी रचना के कारण धीरे–धीरे भारत भर में लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। इसमें मीठा और तीखा स्वाद होता है, लेकिन कभी–कभी इसकी उच्च क्लोराइड सामग्री के कारण यह नमकीन भी हो सकता है। प्रोटीन सामग्री और एनपीएन अंश गाय के दूध से अधिक होते हैं और ऊंटनी के दूध में औसत केसिइन और व्हे प्रोटीन की मात्रा क्रमशः 2.3 से 2.9% और 0.7% से 1.0% तक होती है। वसा सामग्री की तुलना में नमी और प्रोटीन अधिक देखे गए हैं। ऊँट के दूध में विभिन्न खनिज, Na, K, Ca, P Mg Fe, Zn, Cu और विटामिन (A, E, C और B1) प्रचुर मात्रा में मौजूद होते हैं। ऊंटनी के दूध में विटामिन सी की उच्च सांद्रता (2–3 गुना), गाय के दूध की तुलना में, इसका पीएच निम्न स्तर पर बनाए रखता है। कम पीएच दूध के स्थिरीकरण में मदद करता है और क्रीम परत के गठन के बिना अपेक्षाकृत लंबे समय तक भंडारण क्षमता को बनाए रखता है। ऊंटनी के दूध में उच्च विटामिन सी भी इसे एक शक्तिशाली एंटी–ऑक्सीडेंट बनाता है। पाश्चराइज्ड ऊंटनी के दूध की शेल्फ लाइफ 4 डिग्री सेल्सियस पर लगभग 10 दिन होती है। ताजा दूध भी जमे हुए स्थिति में एक वर्ष के लिए संग्रहीत किया जा सकता है। ऊंट के दूध के मूल्य परिवर्धन इसे दैनिक जीवन में अधिक महत्वपूर्ण बनाने के लिए एक विकल्प हो सकता है। परिवहन के लिए लंबी अवधि के लिए उत्पादों को तैयार और संग्रहीत भी किया जा सकता है। ऊंटनी के दूध का उपयोग खीर बनाने के लिए भी किया जाता है और यह राजस्थान के रायका समुदाय के बीच बहुत प्रसिद्ध है। ऊंट दुग्ध उत्पाद ऊंट मालिकों के सामाजिक जीवन को बेहतर बनाने के आसान आर्थिक तरीकों में से एक हो सकते हैं। ये उत्पाद लोगों में लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं और भविष्य में इन उत्पादों की अत्यधिक मांग होगी।

याक का दूध

इसकी विशिष्ट संरचना के कारण याक का दूध विशेष रुचि रखता है। इसे शिशुओं और बुजुर्गों के लिए भोजन बनाने के लिए और विशेष जरूरतों वाले आबादी के कुछ क्षेत्रों के लिए उच्च गुणवत्ता वाला कच्चा माल माना जाता है। यह स्वाभाविक रूप से केंद्रित दूध माना जाता है क्योंकि इसमें उच्च वसा, प्रोटीन और

लैक्टोज सामग्री होती है। याक के दूध और गाय के दूध में वसा, प्रोटीन, लैक्टोज और राख की मात्रा समान होती है, लेकिन याक के दूध की प्रमुख खनिज सामग्री गाय के दूध की तुलना में बहुत अधिक होती है। गाय के दूध की तुलना में याक के दूध में विटामिन डी और बी 6 अधिक होते हैं। उत्तर–पूर्वी भारत में, अधिकांश ताजे याक के दूध को घरेलू स्तर पर विभिन्न प्रकार के स्वदेशी उत्पादों में संसाधित किया जाता है, जो काफी समय तक संग्रहित होने में सक्षम होते हैं। यह आमतौर पर मक्खन, क्रीम, दही और चुरपी जैसे उत्पादों में संसाधित होता है। चुरपी अरुणाचल प्रदेश का किण्वित दूध उत्पाद है, जो बांस के नीचे घरेलू स्तर पर तैयार किया जाता है। याक के दूध और उसके उत्पादों में पोषण संबंधी और जैविक रूप से सक्रिय सामग्री की उच्च समृद्धि के तहत गंभीर परिस्थितियों में, एक समृद्ध और एक उत्कृष्ट उदाहरण है कि उत्तर पूर्वी भारत के खानाबदोश और जनजाति एक स्वस्थ और पौष्टिक जीवन को कैसे विकसित और अनुकूलित कर सकते हैं।

गधी का दूध

गधी का दूध भी किसानों और शोधकर्ताओं के लिए एक विकल्प के रूप में बढ़ती दर के साथ लोकप्रियता हासिल कर रहा है। गाय के दूध की तुलना में गधी के दूध में शुष्क पदार्थ (9.5%) कम होता है, जबकि गधी के दूध में प्रोटीन की मात्रा मानव दूध (1.42%) से बहुत अधिक होती है। बकरी के दूध की तरह, गधी का दूध भी शिशुओं के भोजन और लैक्टोज असहिष्णुता से पीड़ित लोगों में अपना स्थान पाता है। यह भी बताया गया है कि गाय के दूध की तुलना में गधी के दूध में व्हे और केसिइन प्रोटीन की इनविट्रो डाइजेस्टिविटी अधिक होती है। गधी के दूध में लैक्टोज सामग्री (7%) गाय के दूध की तुलना में बहुत अधिक है, जो इसे अत्यधिक स्वादिष्ट बनाता है। हालांकि, राख की मात्रा गाय के दूध के लगभग आधी है और इसलिए, खनिजों के वृक्क भार को कम करने में अपने योगदान को बढ़ाता है। वसा की मात्रा (0.7–2%) अन्य दूध की तुलना में कम होती है और वसा गोलाकार आकार 1.8–2μ के बीच होता है। आज तक, गधे के दूध को किण्वित दूध उत्पाद के रूप में खोजा गया है। हालांकि, अन्य दुग्ध उत्पादों में इसके उपयोग के संबंध में इसकी अप्रयुक्त क्षमता का पता लगाया जाना बाकी है।

मिथुन का दूध

मिथुन मुख्य रूप से भारत के पूर्वोत्तर हिल्स क्षेत्र के चार अलग–अलग राज्यों में पाया जाता हैः अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर और मिजोरम। यह अन्य मिल्क से बेहतर है और मानव उपभोग के लिए उपयुक्त है, हालांकि, पशु बहुत कम मात्रा में दूध (1.0 और 1.5 किलोग्राम दूध/दिन/पशु) का उत्पादन करता है। मिथुन, गाय के दूध की तुलना में, दुगनी कैलोरी का दूध पैदा करता है। इसके दूध का रंग सफेद से मलाईदार सफेद के बीच भिन्न होता है और एक सुगंधित स्वाद के साथ मीठा होता है। कोलोस्ट्रम कुल ठोस और प्रोटीन में बहुत समृद्ध है लेकिन वसा और लैक्टोज सामग्री में कम है। पनीर, लस्सी, दही, घी, बर्फी,

तालिका 1ः गैर–गोजातीय प्रजातियों के दूध की संरचना

	गाय का दूध	बकरी का दूध	भेड़ का दूध	ऊँटनी का दूध	मिथुन का दूध	गधी का दूध	ह्यूमन दूध
वसा(%)	3.5–3.7	3.8–4.0	7.6–7.9	2.9-5.4	10–10.2	1.5–1.8	4–4.5
प्रोटीन(%)	3.2–3.5	3.4–3.7	6.2–6.6	3.0-3.9	6.5–6.7	1.4–1.7	1.2–1.4
SNF(%)	9.0–9.5	8.9–9.4	11.5–12	6.5–8	13–13.2	11.5–11.7	8.9–9.3
लेक्टोस(%)	4.7–5	4.1–4.5	4.7–4.9	3.3-5.8	4.1–4.5	6.8–7.2	6.9–7.4
भभूत(%)	0.7–0.9	0.8–1.0	0.6–0.9	0.7–1.0	0.9–1.1	0.3–0.4	0.3–0.5
केसिइन(%)	4.2–4.6	2.4–2.8	2.6–2.8	2.5–2.8	4.3–4.5	0.7–0.8	0.4–0.5

रसगुल्ला आदि जैसे उच्च गुणों वाले विभिन्न दुग्ध उत्पादों के उत्पादन के लिए मिथुन दूध उपयुक्त पाया जाता है। कुछ अन्य डेयरी उत्पादों जैसे पनीर और दूध से भरपूर प्रोटीन के उत्पादन के लिए तकनीकी हस्तक्षेप की और गुंजाइश है। इसकी एंटी–माइक्रोबियल गतिविधि मिथुन दूध को एक अतिरिक्त लाभ प्रदान करती है जो कई रोगजनक सूक्ष्मजीवों से निपटने में मदद करता है। इसके उत्पादों को मुख्य उत्पाद के रूप में बेचा जा सकता है, जो न केवल दुर्लभ दूध उत्पाद के रूप में प्रीमियम मूल्य प्राप्त करेगा, बल्कि मिथुन का पालन–पोषण करने गरीब की अर्थव्यवस्था को भी मजबूत करेगा।

निष्कर्ष

गैर–गोजातीय दूध और उसके उत्पादों के विकास में सबसे निर्णायक कारकों में से एक है उनकी अद्वितीय संरचना और पौष्टिक मूल्य के कारण मानव स्वास्थ्य पर उनके लाभकारी प्रभाव। मानव दूध के साथ समग्र समानता और कम एलर्जीनिटी के संदर्भ में लाभ और बेहतर पाचनशक्ति उन्हें शिशुओं के लिए एक बेहतर और उपयुक्त भोजन विकल्प बनाती है। ये बच्चों और बुजुर्ग लोगों के पोषण में स्वास्थ्य, रखरखाव, शारीरिक कार्यों के लिए लाभकारी प्रभाव डालते हैं। गैर–गोजातीय दूध उत्पादों की लोकप्रियता ने भी दुनिया भर में एक क्रमिक वृद्धि दिखाई है। हाल के शोध के निष्कर्षों से यह भी पता चलता है कि उपन्यास डेयरी उत्पादों और प्रोबायोटिक योगर्ट, चीज, आइसक्रीम और बायोएक्टिव पेप्टाइड्स जैसे अवयवों के उत्पादन के लिए इन दूधियों का उपयोग करने की क्षमता है।

''उठो जागो और तब तक मत रूको
जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाऐ''

–स्वामी विवेकानंद

05 भारी धातुओं के कारण पर्यावरण संदूषण एवं मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

सोनिया सांगवान एवं रमन सेठ
डेरी रसायन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारी धातुओं के कारण पर्यावरणीय प्रदूषण उद्योगों में उनके बढ़ते उपयोग के कारण विश्व में गंभीर चिंता का विषय है। गैर–बायोडिग्रेडेबल भारी धातुओं के कारण प्राणियों में गंभीर स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। मनुष्यों और जानवरों में भारी धातुओं की विषाक्ता सेहत के लिए हानिकारक हैं जो वातावरण में दीर्घकालिक संदूषण भरी धातुओं के उत्सर्जन के कारण होता है। विभिन्न औद्योगिक इकाइयों से भारी धातु वातावरण में उत्सर्जित होती हैं जो जल, मिट्टी, हवा को परोक्त या अपरोक्त रूप से प्रभावित करती हैं।

भारी धातुएं वे धातु तत्व है जिसमें अपेक्षाकृत उच्च घनत्व और अधिक विषाक्तता होती है जैसे शीशा (Pb),पारा (Hg), तांबा (Cu), कैडमियम (Cd), जस्ता (Zn), आर्सेनिक (As), क्रोमियम (Cr), लोह (Fe) और इनकी घनत्व 5 g/cm^3 से अधिक है। औद्योगिक गतिविधि में वृद्धि के कारण 19वीं सदी के अंत और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ से भारी धातुओं द्वारा प्रदूषण दुनिया भर में व्यापक रूप से बढ़ गया है, जो गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का कारण हैं। भारी धातुएं, भोजन, पानी, हवा के माध्यम से मनुष्यों के शरीर में पहुंच कर विभिन्न प्रकार की बीमारियों को उत्पन्न करता है। मानव शरीर में भारी धातुओं से तंत्रिका तंत्र विकार, गुर्दे की विफलता, आनुवंशिक उत्परिवर्तन, विभिन्न प्रकार के कैंसर, तंत्रिका संबंधी विकार, श्वसन विकार और हृदय रोग, कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली और बांझपन जैसे दुष्प्रभाव हो सकते हैं। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के विकार, एनीमिया, गुर्दे, यकृत, हृदय और रक्त वाहिकाओं को नुकसान, प्रतिरक्षा प्रणाली, जननांग प्रणाली, पाचन तंत्र कैंसर और विभिन्न कैंसर के विकास का कारण बनता है। लेड से इंसेफेलाइटिस और हेपेटाइटिस भी हो सकता है। कैडमियम यकृत और गुर्दे जैसे ऊतकों में जमा हो जाता है, जिससे एनीमिया और रक्तचाप में वृद्धि होती है। कैडमियम फेफड़ों और प्रोस्टेट में कैंसर कारक है जिससे शरीर में अनेक प्रकार की गाठें विकसित हो जाती है। कैडमियम से गुर्दे, हड्डियाँ, फेफड़े, यकृत, हृदय और वाहिका रोग होते हैं। निकिल भारी धातु रक्त, मस्तिष्क और हड्डी, स्थानीय संक्रमणों के विभिन्न प्रकार के कैंसर का कारण बनता है। कोशिकाओं की जैविक गतिविधि का विघटन, वृद्धि में देरी, हेमट्यूरिया में कमी और लोहे के अवशोषण में हस्तक्षेप निकिल विषाक्ता के कारण बीमारियों में योगदान देता है। निकिल लवण,रक्त प्रवाह में प्रवेश करने के बाद, सांस लेने में तकलीफ और दिल को प्रभावित करता है। निकिल (Ni) के संपर्क में आने से त्वचा में सूजन आ जाती है।

भारी धातुओं का खाद्य श्रृंखला में प्रवेश

खाद्य श्रृंखला में भारी धातुएं विभिन्न प्रकार और विधियों द्वारा प्रवेश करती हैं जैसे सीवेज, अपशिष्ट विनिर्माण गतिविधियों, धूल और भोजन में भारी धातुओं सामान्य तरीके हैं। प्रदूषित मिट्टी का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। अपरोक्छ रूप से जानवरों के चारा द्वारा भारी धातु डेरी उत्पादों में पहुँचता है, इसलिए, दूध और दूध उत्पादों में इन धातुओं की संभावित उपस्थिति को देखते हुए खाद्य उद्योग में उच्च खपत वाले समूह के रूप में दूध और इसके उत्पादों में भारी धातुओं की उपस्थिति पर ध्यान देना आवश्यक है।

दूध में भारी धातुओं का संदूषण

दूध और उसके उत्पाद में कई भारी धातु पाए जा रहे हैं जो प्रदूषण के कारण हैं। कुछ तत्व ऐसे हैं जो

निर्णायक गतिविधियों में शामिल हैं जैसे एंजाइमों में सहायक कारक। गैर–दूषित दूध में धातुओं की मात्रा उल्लेखनीय रूप से सामान्य होती हैं जो सेहत के लिए हानिकारक नहीं हैं लेकिन उत्पादन और पैकेजिंग प्रक्रिया के माध्यम से भारी धातुओं की मात्रा सामान्य से काफी भिन्न हो सकती है। इसके अलावा भारी धातुएं चारा के माध्यम से पशुओं और वातावरण में पहुँचती हैं, जैसे शीशा, कैडमियम, क्रोमीयम, निकिल और कोबाल्ट, विभिन्न स्तरों पर दूध में पहुंच सकते हैं और गंभीर समस्याएं पैदा कर सकते हैं। पौधों के जड़ों के माध्यम से अवशोषित हो कर भारी धातु चारे में प्रवेश हो जाते है। दूषित मिट्टी इन भारी धातुओं के साथ भू–जल और जल को प्रदूषित कर सकती है। इसलिए, पौधे के अंतर्ग्रहण के बाद पौधे दूषित हो जाते हैं और पौधे के माध्यम से मानव शरीर और जानवरों में प्रवेश करते हैं। हाल ही के एक अध्ययन से, यह पाया गया है कि प्रदूषण मिट्टी से पौधे तक फैलता है जिससे पानी और पौधे दोनों प्रदूषित होते हैं। नतीजतन, अनेक पालतू जानवरों और उनके परिधीय उत्पादों, जैसे कि कच्चा दूध में उनकी मात्रा बढ़ जाती है जो विषाक्तता का कारण बनती है। भारी धातुओं के विषाक्त प्रभाव विभिन्न कारकों पर निर्भर करते हैं जैसे पौधों की प्रक्रिया और उपयोग किए जाने वाले कच्चे माल की मात्रा डेयरी उत्पादों में भारी धातुओं की उपस्थिति गाय के प्राथमिक दूध के दूषित होने का कारण होती है, जो पर्यावरण के संपर्क में आने या गाय के प्रदूषण के संपर्क में आने से या भोजन और पानी की खपत के कारण हो सकती है। इसके अलावा, कच्चा दूध उत्पादन के दौरान दूषित हो सकता है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

कैडमियम, शीशा और पारा मनुष्यों के लिए बहुत खतरनाक है जो औद्योगिक उपयोग के संदर्भ में भोजन के लिए एक बड़ा खतरा माना जाता है। पशु चरागाहों का उपयोग चराई में करते हैं। यदि दूषित चारा पशु खाता हैं तो पशुओं में भारी तत्त्व की मात्रा बढ़ जाती हैं जो दुग्ध में पाया जाता हैं। दूध में खनिजों का स्थानांतरण बहुत परिवर्तनशील है। विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों के परिणामस्वरूप प्रदूषकों को हवा में स्थानांतरित किया जाता है जो मिट्टी, पानी, भोजन द्वारा, खाद्य श्रृंखला में शामिल होकर मानव और पशु स्वास्थ्य के लिए एक बड़ा खतरा पैदा करने का कारण बनता है।

शीशा और कैडमियम आमतौर पर वायु प्रदूषक होते हैं जो विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों से हवा में पाया जाता है, साथ ही मिट्टी, पानी, भोजन और पौधों द्वारा खाद्य श्रृंखला में पहुचंता है। दूध और डेयरी उत्पादों में शीशा और कैडमियम के अवशेष विशेष चिंता का विषय हैं क्योंकि वे बड़े पैमाने पर नए जन्मों और बच्चों द्वारा खाए जाते हैं। ऐसा भोजन सामान्य मनुष्यों में शीशा और कैडमियम का मुख्य स्त्रोत है।

शीशा और कैडमियम कार्सिनोजेनिक तत्व हैं जो ह्रदय प्रणाली, गुर्दे, तंत्रिका तंत्र, रक्त और कंकाल प्रणाली में कई बीमारियों को उत्पन्न करता हैं। विषाक्त धातु का स्तर दूध और डेयरी उत्पादों की सुरक्षा और गुणवत्ता का एक महत्वपूर्ण घटक है।

जानवरों के विभिन्न उत्सर्जित पदार्थ और दूध में प्रदूषित तत्व पाए जा रहे हैं। इसके अलावा, दूध में धातु अन्य खाद्य पदार्थों से हमारे खाद्य पदार्थों में आ सकता है: (क) प्रसंस्करण और खाना पकाने में उपयोग किये जाने वाले पानी से (ख) खाद्य प्रसंस्करण के लिए उपयोग किए जाने वाले कन्टेनर (ग) पैकेजिंग स्टोर।

दूध में भारी धातुओं के प्रवेश के तरीके चित्र–1 में दर्शाये गये हैं। वास्तव में गाय का शरीर एक प्रभावी जैविक फिल्टर के रूप में कार्य करता है और भोजन द्वारा लाए गए शीशे को दूध के बजाय अस्थि ऊतक में जमा करता है। फिर भी चारे और पानी में इसकी मात्रा अधिक हो तो दुग्ध में पाए जाने की संभावना अधिक होती है। कैडमियम दूषित हवा में साँस लेने से शरीर में पहुँचता हैं। दूध के मामले में पशुधन फीड इसका एक महत्वपूर्ण स्रोत है जिसका उपयोग अवशेषों के उपचार के लिए उर्वरक के रूप में किया जाता है। पशु–दूध में कैडमियम की सांद्रता पशु की उम्र में वृद्धि के साथ बढ़ने लगती है। हालांकि, कुछ अध्ययनों से पता चला

है कि गायों के दूध में कैडमियम सांद्रता उन स्थानों पर पाई जाती है जहाँ राजमार्गों के साथ औद्योगिक क्षेत्रों का चारा खिलाया जाता है या भारी धातुओं से दूषित चारा खिलाया जाता है। एक प्रभावी जैविक फिल्टर के रूप में गाय के शरीर में उचित कार्य के कारण, गाय के दूध में पारे की मात्रा सीमा स्तर के ऊपर शायद ही कभी पाई जाती है। इन कारणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दूध और उसके उत्पाद स्वास्थ्य वर्धक हैं और इन उत्पादों द्वारा मानव शरीर में पारा की मात्रा बहुत कम आती है।

दही में भारी धातुओं का संदूषण

दही एक किण्वित डेरी उत्पाद है जो लैक्टो बैसिलस बल्गारिकस (Lacto Bacillus Bulgaricus) और स्ट्रेप्टोकोकस थर्मोफिलस (Streptococcus Thermophillus) क्रियाशीलता के कारण बनते हैं। अन्य लैक्टिक एसिड प्रजातियां जैसे लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस और स्ट्रेप्टोकोकस लैक्टिस भी आमतौर पर दही में पाया जाता हैं। दही मानव आहार में खनिज के रूप में आवश्यक पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत है। यह शारीरिक प्रक्रियाओं को बनाए रखने के लिए कैल्शियम और मैग्नीशियम श्रोत में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। दही फोस्फोरस (कैल्शियम के अलावा, जो हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व है) का एक अच्छा खाद्य स्रोत है और पश्चिमी देशों में कुल फास्फोरस में इसका योगदान 30 से 45% के बीच बताया गया है, परन्तु भारी धातुओं से युक्त दुग्ध का दही बनाने मे उपयोग से दही में इन हानिकारक तत्त्वों की मात्रा पायी जाती हैं जो स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं हैं।

पाउडर दूध में भारी धातुओं का संदूषणः स्वास्थ्य पर प्रभाव

नवजात शिशुओं और छोटे बच्चों के लिए तैयार बेबी फार्मूला, तरल पदार्थ या पाउडर का उपयोग मानव दूध के विकल्प के रूप में किया जाता है। शिशु फार्मूला शिशु पोषण में एक विशेष भूमिका निभाता है क्योंकि वे बच्चों के लिए पोषक तत्वों का मुख्य स्त्रोत और बच्चों के जीवन के पहले महीनों के दौरान भोजन का एक अनूठा स्त्रोत हैं।

विषाक्त पदार्थों, विशेष रूप से धातुओं के लिए नवजात शिशुओं की विशेष संवेदनशीलता शरीर सौष्ठव के निर्माण, उनमें विषाक्त पदार्थों के उच्च आंतों के अवशोषण, मानसिक विकास और पहले वर्ष में उच्च ऊर्जा खपत के कारण होती है।

कई अध्ययनों में बताया गया है भारी धातुओं से युक्त दूध का दूध पाउडर बनाने के कारण इसमें भारी धातुओं की मात्रा अधिक पाई जाती हैं जो शिशु के लिए असुरक्षित है और वृक्क प्रणालियों के विकास में कमी का कारण हैं। विषाक्त तत्व पूरे पर्यावरण और लगभग सभी खाद्य पदार्थों में पाए जाते हैं जो बच्चों को अधिक प्रभावित करते हैं।

नवजात शिशुओं और बच्चों में विषैले तत्वों का सीधा संबंध स्वास्थ्य समस्या से है। बचपन में मैंगनीज के उच्च स्तर के कारण न्यूरोवस्कुलर सिंड्रोम हो सकता है जो डोपामाइन के व्यवहार, संतुलन और नियंत्रण को प्रभावित करता है। दुग्ध उत्पादों और अनाजों में शीशा का विशेष महत्व है क्योंकि वे शिशुओं और बच्चों के लिए अधिक हानिकारक हैं। कैडमियम का उपयोग आमतौर पर साँस लेने के हवा द्वारा तथा आहार के माध्यम से होता है। हाल के वर्षों में यह भी पाया गया कि चावल में कैडमियम दुनिया में सामान्य आबादी के आहार में कैडमियम का सबसे महत्वपूर्ण दैनिक सेवन है।

पनीर और मट्ठा में भारी धातुओं का संदूषण : स्वास्थ्य पर प्रभाव

भारी धातु पनीर उत्पादन की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं और संदूषण का कारण हैं जो विभिन्न तरीकों से खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करता हैं। पनीर में लेड का स्त्रोत पर्यावरण प्रदूषण के कारण होता हैं जो पशुधन में दूषित पानी के उपयोग से होता है। पनीर बनाने की प्रक्रिया में उपयोग किए जाने वाले उपकरण के कारण

भी पनीर में इन भारी तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है। दूसरी ओर कैसिन प्रोटीन और वसा के साथ शीशा संयोजन के रूप में पनीर में फ्लॉक्यूलेशन की प्रक्रिया के कारण दूध की तुलना में पनीर में इस धातु की मात्रा अधिक है। पनीर में भारी धातुओं की मात्रा प्रजातियों के बीच का अंतर, भौगोलिक क्षेत्र, उत्पादन की विधियों और उपकरणों के संदूषण प्रक्रिया पर निर्भर करता हैं।

दूध में भारी धातुओं की मात्रा को कैसे कम करें

औद्योगिक विकास के कारण धातुएँ अधिक मात्रा में औद्योगिक स्थानों से नहरों, नदियों और अन्य जल निकायों में, दूषित स्थलों के प्रत्यक्ष निर्वहन और अपवाह के माध्यम से पर्यावरण में पहुँच सकती हैं। इस दूषित पानी का उपयोग कृषि क्षेत्रों में सिंचाई के उद्देश्य के रूप में भी किया जाता है जहाँ पशुचारा उगाया जाता है। इससे अंततः दूध की आपूर्ति में भारी धातुओं का प्रवेश हो जाता है, जो कि डेयरी पशुओं द्वारा या दूध के परिवहन और प्रसंस्करण में उपयोग किए जाने वाले बर्तनों के माध्यम से दूषित दूध या पानी के माध्यम से होता है और कभी–कभी दूध में गंदे पानी के मिलावट से होता है, जलनिकायों के संदूषण को रोकने के लिए औद्योगिक अपशिष्ट जल से भारी धातुओं की मात्रा को कम करके पानी एवं मिट्टी में भारी धातुओं की विषाक्तता को निम्नलिखित तरीकों से रोका जा सकता हैः–

1. औद्योगिक प्रक्रियाओं के अपशिष्ट उत्पादों को हटाने के लिए, भारी धातुओं को कम करने के लिए अपशिष्ट उपचार संयंत्र लगाना चाहिए। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में ये कम लागत वाले उपचार संयंत्र अधिक व्यावहारिक विकल्प हो सकते हैं।
2. नैनो–निस्पंदन, रिवर्स ऑस्मोसिस और आयन एक्सचेंज जैसी अधिक उन्नत उपचार प्रौद्योगिकियों को भी प्रभावी पाया गया है हालाँकि, उच्च लागत के कारण कुछ विकासशील देशों में ये प्रौद्योगिकियाँ आर्थिक रूप से व्यावहारिक नहीं हो सकती हैं।
3. भारी धातुओं द्वारा दूध के संदूषण को कम करने के लिए दूध निर्माण प्रक्रिया में परिवर्तन।
4. भारी मात्रा में धातुओं के स्तर का मूल्यांकन करने के लिए पशु के पीने के लिए उपयोग किए जाने वाले पानी और दूध देने वाले पशु के चारे की नियमित निगरानी ।
5. दूध और दूध उत्पादों के हैंडलिंग, प्रसंस्करण और भंडारण के दौरान धातु के संदूषण से बचने के लिए विशेष कदम उठाए जाने चाहिए और इन चरणों के दौरान केवल खाद्य ग्रेड सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिए।
6. पशु चारे की खेती के लिए इस्तेमाल की जाने वाली भूमि को धातु प्रदूषण की संभावना से बचाने के लिए औद्योगिक और भारी यातायात क्षेत्रों से दूर चुना जाना चाहिए।

हमें क्या करना चाहिए ?

तेजी से शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण बच्चों और बुजुर्गों में इसका प्रभाव अधिक दिखता है जो दूध की उच्च खपत के कारण है। पर्यावरण प्रदूषण के परिणामस्वरूप दूध में भारी धातुओं का स्तर बढ़ सकता है। अतः, यह आवश्यक है कि किसानों को इस तरह के प्रदूषण को कम करने के लिए शिक्षित किया जाना चाहिए और कीटनाशकों की नियंत्रित मात्रा का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। दूषित पानी से सिंचित चारे का उपयोग पशुओ के लिए नहीं करना चाहिए।

निष्कर्ष

चारा एवं पानी में भारी धातुओं के संदूषण के साथ स्वास्थ्य समस्या गंभीर चिंता का विषय बन गया है। खाद्य संदूषण की अधिकांशता प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले विषाक्त पदार्थों और पर्यावरण प्रदूषकों के माध्यम से या प्रसंस्करण, पैकेजिंग, भंडारण और भोजन के परिवहन के दौरान होती है, परन्तु वर्तमान मानव

भोगवादी विचारधारा से प्रदूषित हैं और जाने अनजाने में वे सब कार्य कर रहा है जिससे प्रदूषण का स्तर तीव्र गति से विस्तृत हो कर हमारे पशुओं को बीमार कर रहा है। स्वस्थ पशु से ही स्वस्थ दुग्ध, घी, पनीर, आदि मिल सकता है। इसलिए आइए हम सब मिलकर अपने जीवन में अपने पर्यावरण के लिए भारी धातुओं से दूषित पानी को अपने खेतों में तथा अपने दैनिक कार्यों में उपयोग न लाने का संकल्प लें।

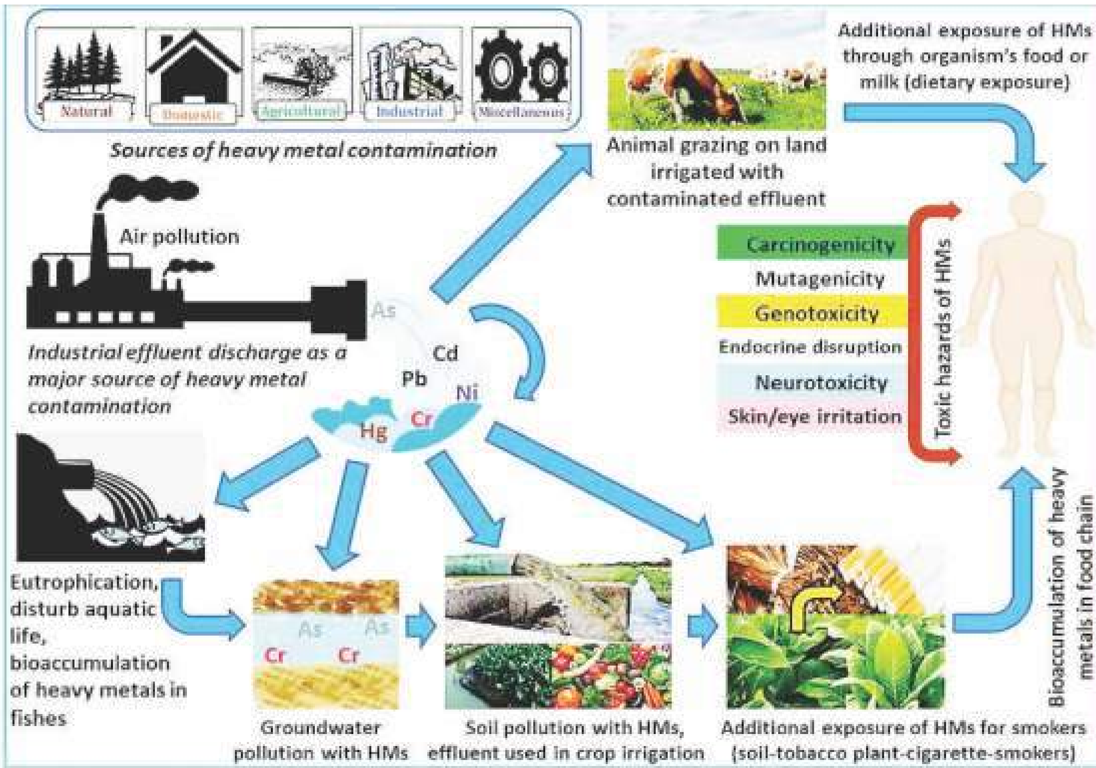

भारी धातु–प्रदूषण का पौधों, पशुओं और मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव (सक्सेना, 2019)

Refernces:-

- Bhatia, I. and Chaudhary, G. (1996). Lead poisoning of milk- the basic need for foundation of human civilization. Journal of animal health, 40: 24-26

  Carl, M. (1991). Heavy metals and other trace elements & Monograph on residues and contaminants in milk and milk products. Int. Dairy Federation, 9101: 112-119
- Duffus, J. (2002). Heavy metals-a meaningless term (IUPAC technical report). Pure and Applied Chemistry, 74(5) : 793-807
- Farid, S. (2004). Determination of trace elements in cow's milk in Saudi Arabia. Engineering Sciences, 15(2) 131-140
- Jarup, L. (2003). Hazards of heavy metal contamination. British Medical Bulletin, 68: 167-182
- Reilly, C. (1991). Metal contamination of food. Elsevier Science Publishers Limited, 1-20
- Saxena, G., Purchase, D., Mulla, S.I., Saratale, G.D. and Bharagava, R.N., (2020). Phytoremediation of heavy metal-contaminated sites: eco-environmental concerns, field studies,sustainability issues, and future prospects. Reviews of Environmental Contamination and Toxicology Volume 249, pp.71-131.
- WHO. (1992). Cadmium. Environmental Health Criteria

चारे के लिए बहुवर्षीय अंजन घास उगायें

06

रमेश चन्द्रा[1] एवं प्रमोद मडके[2]

[1]पशुधन उत्पादन प्रबंधन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

[2]विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुपालन), कृषि विज्ञान केन्द्र, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

पशुपालन में हरे चारे का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योकि हरे चारे के बिना पशुपालन सम्भव नही है। हरा चारा दूघ उत्पादन के लिए ही नही बल्कि शारीरिक विकास और शरीर को स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पशुओं को सभी आवश्यक पोषक तत्व हरे चारे से आसानी से प्राप्त हो जाते है। देश में हरे चारे के लिए 4 प्रतिशत से कम क्षेत्रफल उपलब्ध है और 2025 तक यह क्षेत्रफल घटकर 2 प्रतिशत रह जायेगा। पशुपालन में सबसे अधिक खर्च (60–70 प्रतिशत) राशन, हरे और सूखे चारे पर आता है। यदि पशुपालन में आहार की किमत को कम कर दिया जाय तो किसानों को अधिक लाभ हो सकता है। यदि किसान हरे चारे के रूप में बहुवर्शीय घास जैसे अंजन घास या दीनानाथ घास या गिन्नी घास या नेपियर घास की खेती करे तो हरे चारे की लागत में कमी आयेगी और अधिक मात्रा में चारा भी प्राप्त होगा। बहुवर्षिय घासों को तैयार करने में शुरू में ही खर्च होता है उसके बाद खर्चा न के बराबर होता है। बहुवर्षिय घास को एक बार लगाने से कम से कम 3 साल तक हरा चारा मिलता रहता है। अंजन घास बहुवर्षिय घासों में से एक घास है जो देश के विभिन्न भागों में इसकी खेती की जाती है। यदि दुधारू पशुओं को साल भर पोष्टिक हरा चारा मिलता रहे तो किसानों की आय में आसानी से वृद्धि हो सकती है।

अंजन एक बीज पत्रीय, बहुवर्षिय घास है, जिसकी जड़ों में राइजोम्स (गांठ) होते हैं। यह सूखारोधी विभिन्न प्रकार की भूमि व जलवायु में उगायी जाने वाली प्रमुख घास है। पशुओं के लिए इसका हरा चारा पौष्टिक, स्वादिष्ट और पाचनशील होता है। सर्दी ऋतु में वर्षा होने पर यह अन्य बहुवर्षिय घासों की तुलना में जल्दी फूटती है। छोटी अवस्था में इसकी पाचकता बहुत अधिक होती है व पकने पर भी पाचकता अच्छी बनी रहती है। जो अधिक पोष्टिक एवं विभिन्न परिस्थितियों के अनुकूल तथा कम वर्षा वाले शुष्क (उष्ण) एवं समशुष्क (अर्धशुष्क) जलवायु वाले क्षेत्रों के लिए बहुत अच्छी घास है। इसमें क्रूड प्रोटीन 6–10 प्रतिशत तक पाई जाती है। उदासीन अपमार्जन रेशा और अम्ल अपमार्जन रेशा क्रमशः 72.00 और 38.00 प्रतिशत पाये जाते हैं। अंजन घास फैलने वाली व सीधे बढने वाली दो तरह की होती है। इसकी ऊंचाई पकने पर 120 सेमी तक हो सकती है। इसके चारे में कोई हानिकारक तत्व नही पाए जाते व कीट और व्याधियां भी नगण्य लगती है। हे बनाने के लिए यह बहुत ही उपयुक्त घास है।

भूमि तथा खेत की तैयारी

अंजन घास को सभी तरह की भूमि पर सफलापूर्वक उगाया जा सकता है परन्तु रेतीली दोमट भूमि में इसकी बढवार अच्छी होती है। अच्छे जल निकास वाली हल्की भूमि सर्वोत्तम होती है। भूमि की तैयारी अन्य फसलों की तरह ही की जाती है। 2–3 जुताई करके पाटा कर देना चाहिए। खेत की तैयारी वर्षा ऋतु की पहली प्रभावी वर्षा होने से पहले करें। खेत से कम उपजाऊ झाडियां, बहुवर्षिय खरपतवार आदि निकाल दें। बाद में 50–75 सेमी लाईन से लाइन की दूरी तक कल्टीवेटर से सीधी कूंड बना देने चाहिए।

बीज की मात्रा एवं बुवाई

अंजन घास की बीजों को छिटककर या पंक्तियों में बोया जा सकता है। पंक्तियों में विभिन्न सस्य क्रियाओं

को करने में आसानी रहती है। चारागाह की उत्पादकता बढती है और चारागाह की आयु भी बढती है। शुष्क क्षेत्र में 75 सेमी पंक्ति से पंक्ति की दूरी उचित पाई गयी है। बीज दर 3–12 किग्रा बीज प्रति हैक्टर होती है। औसत 5–6 किग्रा बीज प्रति हैक्टर दर से उपयोग करते हैं। बुवाई के समय बीज व खेत की नम मिटटी (1:5 आयात से) मिलाकर मिश्रण बनायें। तैयार खेत में 75 सेमी दूरी पर कल्टीवेटर से उथले उमरे बनाये। तैयार मिश्रण को इन उमरो में बोते हैं। बुवाई के उपरान्त उमरों में झाडी, नीम या बबूल इत्यादि को टहनी बीज को ढकने के लिए लगाते हैं। बुवाई हमेशा उथली करें। अंजन घास का दाना छोटा होता है तथा बीजों पर मिट्टी ज्यादा आने पर अंकूरण प्रभावित होता है। बीजों को 16–18 घंटे पानी में गीला करके (हाइड्रेशन), छाया में सुखाकर तत्पश्चात 0.25 प्रतिशत थायराम का प्रयोग भी बीजो के अंकूरण के लिए लाभप्रद पाया गया है। बुवाई के तुरन्त बाद यदि वर्षा हो जाए तो चारागाह अच्छा स्थापित होता है।

नर्सरी तैयार करना

अंजन घास की नर्सरी तैयार करने के लिए वर्षा होने से कम से कम (मई माह के शुरू में) 45 दिन पहले बीज नर्सरी में बोना चाहिये। एक हेक्टेअर के लिए 6 मीटर लम्बी व 1 मीटर चौडी लगभग 8 से 10 क्यारियां की आवश्यकता होती है। क्यारियों को खरपतवार रहित करके 30 किग्रा0 सड़ी गोबर की खाद, 25 ग्राम यूरिया, 75 ग्राम सुपर फास्फेट प्रत्येक क्यारी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। बाद में प्रत्येक क्यारी में 40 ग्राम बीज को एक सेमी गहराई में 10 सेमी पंक्ति से पंक्ति की दूरी पर बोना चाहिय। क्यारियों के ऊपर जूट के बोरे डाल दें और उसके ऊपर 3–4 दिन तक हजारे से सिंचाई करते रहे। बीज उगने पर बोरों को हटा दें। दो सप्ताह के बाद 15 ग्राम यूरिया को प्रत्येक क्यारी की दर से छिडकाव कर देने से पौध जल्दी और स्वस्थ तैयार होती है। जहां गर्मी ज्यादा हो वहां नर्सरी के ऊपर छप्पर डालकर छाया कर देना चाहिए और समय–समय पर सिंचाई करते रहे। इसी तरह 4 से 6 सप्ताह बाद नर्सरी की पौध जब 15–20 सेमी ऊंचा हो जाये रोपाई योग्य हो जाता है। वर्षा होने पर तैयार पौध को खेत में स्थापित करें। पौध से पौध की दूरी 50–75 सेमी व पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75 सेमी रखे। एक जगह 2–3 पौध लगायें। पौध लगाते समय ऊपर का 3/4 हिस्सा काट दें पौध लगाने के तुरंत बाद चारो तरफ से अच्छे से दबा दें। इसके बाद पानी दें। तीन चार दिन तक प्रतिदिन पानी दें। एक हैक्टर में 25 से 30 हजार पौधे पर्याप्त रहते हैं।

उन्नत किस्में

किस्मों का चयन जलवायु, भूमि व चारे की मांग के अनुसार करना चाहिये। अंजन घास की इगफ्री 3108, इगफ्री 3133, काजरी सेलेक्सन नं0 357, काजरी 358, काजरी 75 (मारवार अंजन) जिनोटाइप काजरी 2221 एवं बुन्देल–3 आदि उन्नत किस्में हैं जिसमें से किसान आसानी से कोई एक किस्म का चयन कर सकते हैं।

खाद एवं उर्वरक

अंजन घास को चारागाह में लगाने के पहले 10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद जुताई के समय खेत में डाल कर अच्छी तरह मिलने से चारागाह की स्थापना अच्छी होती है। इससे हल्की मृदा में जल धारण क्षमता बढती है तथा बीजों का अंकुरण अच्छा होता है और चारा उत्पादन बढ़ जाता है साथ ही 30 कि॰ग्रा॰ नाईट्रोजन, 30 कि॰ग्रा॰ फास्फोरस भी प्रति हेक्टेयर की दर से डालना चाहिए। इसके अलावा 40 कि॰ग्रा॰ नाईट्रोजन और 20 कि॰ग्रा॰ फास्फोरस प्रति हैक्टयर प्रति वर्ष प्रयोग करने से पैदावार अच्छी मिलती है।

सिंचाई

अच्छी वर्शा ऋतु की फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। मार्च अप्रैल में लगायी गयी फसल में प्रत्येक 8–10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। मानसून के जल्दी व देर से आने पर भी अंजन घास अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार घास के साथ नमी और पोषक तत्वों के लिए प्रति स्पर्धा करते हैं इसलिए खरपतवार को समय समय पर निकालने से उसकी उत्पादकता और गुणवत्ता बढाने के लिए आवश्यक है। प्रथम वर्ष में कम से कम दो बार खरपतवारों को निकालना चाहिये, पहली निराई गुडाई प्रथम बार कल्ले बनते समय (बुवाई के 15–20 दिन बाद) व द्वितीय बार फूल आने पर (बुआई के 30–35 दिन बाद) कर देने से लाभकारी रहता है।

कटाई

चारे की कटाई 50 प्रतिशत फूल आने पर करनी चाहिये। अंजन घास के चारागाह में लगाने के प्रथम वर्ष कटाई नही कराई जाती क्योंकि चराई/कटाई से बूजे पशुओं के मूंह के द्वारा जमीन से बाहर निकलने का डर रहता है व बूजों के छोटे होने के कारण उन्हें पशुओं के खुरों से भी नुकसान हो सकता है। वर्षा के सामान्य होने पर व उचित वितरण की स्थिति में बढवार शुरू होने के 30 दिन बाद चारे की कटाई पर अधिक व उच्च गुणवत्ता का चारा मिलता है। कटाई जमीन से 10 सेमी छोडकर करनी चाहिये।

उपज

अच्छी वर्षा होने पर 2–3 कटाई की जा सकती है और इनसे औसत 9000 से 10000 किग्रा हरा तथा 3000 से 3500 किग्रा सूखा चारा प्रति हेक्टर मिलता है। दो बार कटिंग करने के बाद आगामी वर्षों में लगभग 16100 किग्रा हरा व 3890 किग्रा सूखा चारा प्रति हेक्टेयर मिलता है।

07 दुधारू पशुओं में अजोला पोषण के लाभकारी प्रभाव

फूल सिंह हिन्डोरिया, राकेश कुमार, राजेश कुमार मीना, दीपक चन्द मीना एवं शुभ्रदीप भट्टाचार्य
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत एक कृषि प्रधान देश है। पशुपालन प्राचीन समय से ही कृषि का एक अभिन्न घटक रहा है तथा भारतीय कृषकों की आय का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में आवश्यक पोषक तत्वों की मांग को पूरा करने में पशुधन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है तथा ग्रामीण परिवारों की आजीविका की सुरक्षा हेतु भी इसका अहम योगदान है। आज हमारे देश में बढ़ती आबादी की पोषण आवश्यकता को पूरा करने के लिए दूध की मांग लगातार बढ़ रही है। अत्याधिक दुग्ध उत्पादन के लिए पशुओ को पर्याप्त हरा चारा खिलाना अत्यावश्यक है। लेकिन, आज देश लगभग 36 प्रतिशत हरे चारे की कमी का सामना कर रहा है, जो एक बड़ी चुनौती बन गई है। इसका पशुओं के स्वास्थ्य तथा दुग्ध उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके चलते पशुओं में कुपोषाण की समस्या तेजी से बढ़ रही है, जिसके फलस्वरूप आज हमारे देश में प्रति पशु प्रति दिन दूध उत्पादन लगभग एक लीटर या इससे भी कम है। वर्तमान में चारा उत्पादन के लिए भूमि का सीमित क्षेत्र है, जो कुल कृषि क्षेत्र का केवल 4.5 प्रतिशत है। नगरों का विस्तार और बढ़ती आबादी की खाद्द्य सुरक्षा को पूरा करने के कारण चारा भूमि का विस्तार करना असंभव है। हरे चारे की कमी के कारण, आज आहार के लिए बाजार पर निर्भरता बड़ी है जिसके कारण दुग्ध उत्पादन की लागत में वृद्धि हुई है। अतः इस समस्या को हल करने के लिए अजोला फर्न को हरे चारे के रूप में उपयोग करना एक बहुत ही आसान, सस्ता एवं लाभकारी तकनीक साबित हुआ है।

अजोला क्या है?

अजोला जलीय सतह पर तैरने वाला तथा शीघ्र बढ़वार वाला एक चमत्कारी फर्न है। जो हरे चारे के रूप में एक बहुत ही महत्वपूर्ण वैकल्पिक स्त्रोत है। यह अजोलेसि परिवार का पौधा है। अजोला का उत्पादन करना एक बहुत ही सरल कार्य है, इसको पशु आहार के रूप में गाय, भैंस, बकरी, भेड़, सूअर, मछली और मुर्गी फार्म आदि में उपयोग में लाया जाता है। इसे तालाब, गड्ढों एवं सीमेंट कंक्रीट से बने टब में आसानी से उगाया जा सकता है। इसमें सहजीवी के रूप में एनाबिना अजोला पाया जाता है जो कि वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थरीकरण करता है। इसकी अजोला पिन्नाटा किस्म सभी मौसम के लिए अनुकूलित होती है। अनुकूल वातावरण में यह 3–4 दिन में अपने जैवपदार्थ का दुगना भार ग्रहण कर लेता है।

सारिणी न. 1 नेपियर बाजरा एवं बरसीम में औसत पोषक तत्वों का अजोला से तुलनात्मक अध्ययन

पोषक तत्व	अजोला	नेपियर बाजरा	बरसीम
शुष्क पदार्थ (%)	9–10	15–20	12–15
प्रोटीन (%)	25–35	9–10	17–18
वसा (%)	3–4	2–3	1–2
न्यूट्रल डिटर्जेंट फाइबर (%)	35–45	65–70	42–44
एसिड डिटर्जेंट फाइबर (%)	25–35	35–40	2830
राख (%)	15–16	10–11	12–14
नाइट्रोजन फ्री एक्सट्रेक्ट (%)	30–35	45–47	40–42

अजोला में पोषक तत्वों की उपलब्धता:–

इसमें उत्कृष्ट गुणवत्ता युक्त प्रोटीन की मात्रा नेपियर बाजरा हाइब्रिड और बरसीम की तुलना में 4–5 गुना अधिक पाई जाती है। यह प्रोटीन, आवश्यक एमिनो एसिड, विटामिन (विटामिन–A (300–600 पी.पी.एम.), विटामिन–B12 एवं बीटा कैरोटीन (206–619 पी.पी.एम.) और खनिज पदार्थ जैसे कैल्शियम (1.32%), फास्फोरस (0.86%), पोटेशियम, आयरन (1000–8600 पी.पी.एम.), कॉपर(3–210 पी.पी.एम.), मैग्नीज (12–2700 पी.पी.एम.), क्लोरोफिल एवं कैरोटीन का बहुत ही समृद्ध स्त्रोत है। अजोला प्रोटीन का सस्ता और पशु आहार का कुशल विकल्प है क्योंकि इसमें प्रोटीन अधिक और लिग्निन की मात्रा कम होने के कारण यह बहुत पाचक होता है। उपरोक्त गुणों के कारण अजोला को हरा सोना कहा जाता है। इसमें शुष्क भार के आधार पर 25–35% प्रोटीन, 3–4% ईथर एक्सट्रेक्ट, 10–12% खनिज पदार्थ, 7–10% अमीनो अम्ल, 15–16% राख एवं 30–35% नाइट्रोजन फ्री एक्सट्रेक्ट पाया जाता है।

उपयोग विधि:–

- गाय, भैंस, भेड़, बकरी एवं मुर्गी आदि के लिए अजोला एक कुशल हरा चारा है।
- दुधारू पशुओं को उनके दैनिक आहार के साथ 1–5 से 2 किग्रा. अजोला प्रतिदिन खिलाने से लगभग 15–20 प्रतिशत तक दुग्ध उत्पादन में वृद्धि दर्ज की गयी है। तथा दूध की गुणवत्ता भी बढ़ती है।
- अजोला को प्रति मुर्गी प्रति दिन 10–20 ग्राम खिलाने से उसके शारीरिक भार तथा अंडा उत्पादकता में लगभग 10–15 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज की गई है।
- भेड़ एवं बकरियों को 100–200 ग्राम प्रतिदिन अजोला खिलाने से शारीरिक वृद्धि के साथ–साथ दूध उत्पादन में भी वृद्धि दर्ज की गई है।

दुधारू पशुओं को अजोला खिलाने से होने वाले लाभ

- अजोला का हरा चारा सम्पूर्ण पोषक तत्वों से भरपूर होता है जो बहुत ही सस्ता, सुपाच्य एवं पौष्टिक पशु आहार है।
- इसे पशुओं को नियमित खिलाने से दूध की मात्रा एवं वसा में वृद्धि दर्ज की गई है ।
- इसे खिलाने से पशु (गाय एवं भैंस) स्वस्थ रहते है।
- इसे खिलाने से पशुओं में बांझपन की समस्या दूर हो जाती है।
- अजोला बछड़े व गाय के शारीरिक विकास का नियंत्रण करता है ।
- पशुओं के पेशाब में खून की समस्या फॉस्फोरस की कमी से होती है। अत:, अजोला खिलाने से यह कमी दूर हो जाती है।
- इसे खिलाने से पशुओं में कैल्शियम, फॉस्फोरस तथा आयरन की आवश्यकता की आपूर्ति होती है जिससे पशुओं का शारिरिक विकास अच्छा होता है।
- अजोला में आवश्यक अमीनो एसिड, प्रोटीन, विटामिन (विटामिन ए, विटामिन बी–12 तथा बीटा–कैरोटीन) एवं खनिज लवण जैसे फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, आयरन, कॉपर एवं मैगनेशियम पर्याप्त मात्रा में पाए जाते है।
- इसमें कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की मात्रा बहुत कम पायी जाती है। जो इसे अधिक सुपाच्य, पौष्टिक एवं असरकारक आदर्श पशु आहार बनाता है।

- इसे उगाने के लिए अन्य चारों की तुलना में कम खर्च करने की जरुरत पड़ती है। जिससे दूध उत्पादन लागत घटती है।

अजोला की उत्पादन तकनीक

स्थान का चयन

अजोला का उत्पादन बहुत ही आसान है। पशुपालक अपने आस–पास खाली पड़ी जमीन पर अजोला का उत्पादन कर सकते है। भूमि का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्थान छायादार तथा भूमि का स्तर ऊँचा होना चाहिए। जिससे वर्षा या किसी प्रकार का गन्दा पानी अजोला की क्यारियों में प्रवेश ना कर सके। अजोला की क्यारियाँ जल स्त्रोत जैसे नल, कुएँ के आस–पास होना चाहिए, जिससे क्यारियों में पानी सरलता से दिया जा सके।

क्यारियाँ बनाने की विधि

सबसे पहले किसी भी छायादार स्थान पर 2 मीटर लंबा, 2 मीटर चौड़ा तथा 30 सेमी. गहरी क्यारियाँ बनाते है। पानी के रिसाव को रोकने के लिए इन क्यारियों (गड्ढे) को प्लास्टिक शीट से ढक देना चाहिए, इसके लिए अगर संभव हो तो पराबैंगनी किरण रोधी प्लास्टिक शीट का प्रयोग करना चाहिए। सीमेंट की टंकी में भी अजोला उगाया जा सकता है। तथा इसमें पॉलीथिन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अब क्यारियों में 10–15 किग्रा. मिट्टी तथा 2 किग्रा. गोबर डाल दे। 30 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट को 10 लीटर पानी में मिलाकर क्यारियों में डाल देना चाहिए । पानी का स्तर 10–12 सेमी. तक रखना चाहिए।

क्यारी में अजोला स्थानांतरण

आधा से एक किलोग्राम अजोला कल्चर क्यारियों के पानी में एक समान फैला देना चाहिए। अजोला बीज फैलाने के तुरंत बाद अजोला के पौधो को सीधा करने के लिए ताजा पानी कल्चर के ऊपर छिड़कना चाहिए। इसके एक हफ्ते बाद, अजोला पूरी क्यारी में फैल जाता है और मोटी चादर जैसी बन जाता है।

प्रत्येक सप्ताह 1 किलो गोबर और 20 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट क्यारियों में डालने से अजोला तेजी से विकसित होता है। पशुओं को खिलाने से पहले इसे साफ पानी से धो लेना चाहिए तथा 1/5 से 2 किग्रा. अजोला नियमित आहार के साथ पशुओं को खिलाया जा सकता है।

अजोला उत्पादन के दौरान ध्यान रखने योग्य बातें

- अजोला की अधिक उत्पादन और तेज बढ़वार के लिए इसे प्रतिदिन उपयोग हेतु प्रति क्यारी से (लगभग 200 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से) बाहर निकाला जाना आवश्यक होता है।
- क्यारी में नाइट्रोजन की अधिकता तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को रोकने के लिए एक महीने में एक बार क्यारी की मिट्टी को लगभग 5किलो नई ताजा मिट्टी से बदलना चाहिए।
- प्रति 10 दिनों के अंतराल पर 25–30 प्रतिशत पुराने पानी को ताजा पानी से बदलना चाहिए जिससे नाइट्रोजन की अधिकता को रोका जा सके।
- प्रत्येक तीन महीने में एक बार क्यारी को साफ करने के साथ साथ पानी तथा क्यारी की मिट्टी भी बदलनी चाहिए। इसके बाद नये ताजे अजोला बीज का प्रयोग करना चाहिए।
- अजोला को क्यारी से निकालने के लिए छलनी का उपयोग करना चाहिए तथा अजोला से आने वाली गंध को दूर करने के लिए साफ ताजे पानी से धोना चाहिए।
- अजोला की बढ़वार के 30° सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है, इसके लिए अजोला की क्यारियों के लिए छायादार स्थान को चुनना चाहिए, ताकि तापमान 30° सेल्सियस से ऊपर न जाए।
- प्रतिदिन अजोला की 1.5 से 2 किलोग्राम प्रति क्यारी से अजोला प्राप्त करने के लिए 20 ग्राम सुपर फॉस्फेट तथा 5 किलोग्राम गोबर का घोल बनाकर प्रति क्यारी में प्रति माह मिलाना उपयुक्त रहता है।

निष्कर्ष

वर्तमान में हरे चारे की कमी और पोषक तत्वों की उपलब्धता को देखते हुए अजोला उत्पादन दुधारू पशुओं के पोषक आहार के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प है। इसकी शीघ्र वृद्धि होने के कारण इससे लगातार अर्थात् वर्षभर हरा चारा उपलब्ध रहता है। अजोला पोषण आहार का पशुओं के स्वास्थ्य पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। अजोला खिलाने से पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता एवं उसकी सरंचना में सुधार होता है। अजोला की उत्पादन लागत बहुत ही कम (लगभग एक रूपये प्रति कि.ग्रा. से भी कम) आती है, इसलिए यह किसान भाइयों के बीच बहुत तेजी से लोकप्रिय होता जा रहा है। इस प्रकार दिन–प्रतीदिन घटती जमीन, हरे चारे की कमी और मौसम की अनिश्चित्ताओं के कारण पशुओ के लिए हरे चारे की समस्या से जूझ रहे किसानों के लिए अजोला किसी वरदान से कम नहीं है।

08 प्रोबायोटिक्स : हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभकारी जीवाणु

रश्मि एच.एम., चन्द्रशेखर बी., सौरभ कादियान एवं सुनीता ग्रोवर
डेरी सूक्ष्मजीवाणु प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्रोबायोटिक्स

प्रोबायोटिक्स का मानव स्वास्थ्य तथा मानव हित को बढ़ावा देने का विश्वभर में एक व्यापक इतिहास है। प्रोबायोटिक्स की चिकित्सीय अवधारणा एक नई खोज नहीं है क्योंकि इसका वर्णन प्राचीन हिन्दू तथा बाइबिल शास्त्रों में प्रमुखता से किया गया है, जोकि विभिन्न पारंपरिक किण्वित खाद्य पदार्थों के चिकित्सीय प्रभावों का समर्थन करता है। फिर भी प्रोबायोटिक्स की अवधारणा ने वैज्ञानिक प्रेरणा प्राप्त कर ली जब रूसी वैज्ञानिक ई.मेटेनिकॉफ ने दीर्घायु के सिद्धान्त का प्रस्ताव रखा तथा बल्गेरिया के लोगों की लम्बी आयु के लिए किण्वित दुग्ध उत्पादों के उपभोग को उत्तरदायी ठहराया। पिछली सदी में प्रोबायोटिक्स के क्षेत्र में कई विकास हुए जो कि प्रोबायोटिक जीवाणुओं के अलगाव से शुरू होकर उनके विस्तृत श्रृंखला के उत्पादों जैसे खाद्य अथवा औषधियों के रूप में उपयोग में लाये गए। खाद्य पदार्थों में उनके व्यापक प्रयोग को देखते हुए वर्ष 2002 में एफ.ए.ओ./डब्ल्यूएचओ ने तथा बाद में आई.सी.एम.आर–डी.बी.टी. ने वर्ष 2011 में आहार में प्रोबायोटिक्स के मूल्यांकन के लिए दिशानिर्देश तैयार किए। दिशानिर्देशों के अनुसार, प्रोबायोटिक्स सजीव सूक्ष्मजीव हैं जो कि जब पर्याप्त मात्रा में होते हैं तो मेजबान पर स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं(एफ.ए.ओ./डब्ल्यू.एच.ओ; 2002) तथा प्रवेशार्थी प्रोबायोटिक बैक्टीरिया उच्च अम्लता और पित्त सघनता का पालन करने के अलावा जठरआंत्र की स्थिति को सहन करने में तथा इसके अलावा जठर इको प्रणाली में संभावित रोगजनकों को प्रतिस्पर्द्धात्मक रूप से बाहर करने में सक्षम होते है। इसके अतिरिक्त 'विश्व गेस्ट्रोएंट्रोलोजी संगठन' ने प्रोबायोटिक्स तथा प्रीबायोटिक्स पर अपने वैश्विक दिशानिर्देश प्रकाशित किए और पुष्टि की प्रोबायोटिक्स की प्रभाविता उच्च उपभेद तथा खुराक विशिष्ट है।

कई प्रोबायोटिक उपभेदों के बीच, आज तक के सबसे प्रलेखित आम प्रोबायोटिक जीवाणु उपभेदों में लैक्टोबैसिली (Lactobacilli) और बिफीडोबैक्टीरिया (Bifidobacteria) की जनक शामिल हैं जो आमतौर पर परम्परागत रूप से तैयार खाद्य सूत्रों में पाए जाते हैं तथा मानव उपभोग के लिए सामान्यतः सुरक्षित (जी.आर.ए.एस) माने गए हैं। इसके अतिरिक्त हाल ही में आंत माइक्रोबायोटा (Gut Microbiota) पर किए गए अध्ययनों ने स्वास्थ्य पर आंत्रिक/सहभोजी जीवाणुओं की मुख्य भूमिका पर प्रकाश डालते हुए नए मार्ग खोल दिए हैं, रोगजनकों के आक्रमण और सूजन के परिणामस्वरूप अव्यवस्थित संतुलन को बहाल करने के लिए प्रोबायोटिक्स पर आधारित व्यक्तिगत स्वास्थ्य संबंधी रणनीतियों की खोज की है।

हाल ही के वर्षों में उपभोक्ता के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले आहार एवं पोषण की गुणवत्ता के महत्व के बारे में भारतीय उपभोक्ताओं के एक विशाल वर्गों के बीच चर्चायें हुई हैं। बढ़ती जागरूकता के साथ स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ता भारत में 'प्रोबायोटिक आन्दोलन' के लिए ग्रहणशील हो रहे हैं।

लेक्टिक एसिड जीवाणुओं जो कि तकनीकी कार्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा स्वास्थ्य को प्रोन्नत करने वाले जीवाणु हैं, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान भी प्रोबायोटिक्स पर अनुसंधान कार्य में लगे हुए हैं तथा उन्होंने लेक्टोबेसिलस प्लांटरम एम.टी.सी.सी. 5690 (एल.पी.91) (Lactobacillus plantarum MTCC 5690 (Lp1) तथा लेक्टोबेसिल्स फरमेंटम एम.टी.सी.सी 5689 (एलएफ.1) (Lactobacillus fermentum MTCC 5689 (Lf1) जैसे स्वदेशी प्रोबायोटिक जातियों की तकनीक विकसित की है।

वैश्विक वैज्ञानिक समुदाय ने प्रोबायोटिक प्रणाली के विभिन्न तंत्रों को स्पष्ट करने के लिए गहनता से काम किया है जोकि मानव स्वास्थ्य एवं मानव हित में उसके फायदे के लिए काम करता है। इनमें से कई तन्त्र लक्षित पोषक की बेहतर पोषण स्थिति, विभिन्न एलर्जी तथा रोगजनक विकारों के विरूद्ध इम्यूनोमोडयूलेटरी तथा प्रतिरोगाणुरोधी प्रभाव, संभावित आन्त्र रोगजनकों के खिलाफ रोगाणुरोधी प्रभाव, विभिन्न जठरांत्र रोगों की रोकथाम और उपचार में बेहतर आंत्र अवरोधन समारोह में सुधार तथा जीवनशैली रोगों के प्रबंधन में ऊर्जा तथा ग्लूकोज़ चयापचय में सुधार से संबंधित है (चित्र 1)। ये सभी संस्थापित तंत्रों की शक्तिशाली वैज्ञानिक जानकारी का उत्पन्न विभिन्न इन–विट्रो, इन–विवो, पशु एवं मानव नैदानिक परीक्षणों द्वारा किया गया है जो विभिन्न औद्योगिक साझेदारों को वैश्विक बाजार में स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं की जरूरतों को आकर्षित करने और उन्हें पूरा करने के लिए प्रोबायोटिक खाद्य पदार्थों के निर्माण में निवेश करने के लिए आकर्षित कर रहा है। इन संयुक्त दृष्टिकोण के साथ, आज प्रोबायोटिक खाद्य पदार्थ कार्यात्मक खाद्य श्रेणी में भारत सहित दुनिया भर में सबसे आकर्षक व्यापार का हिस्सा है।

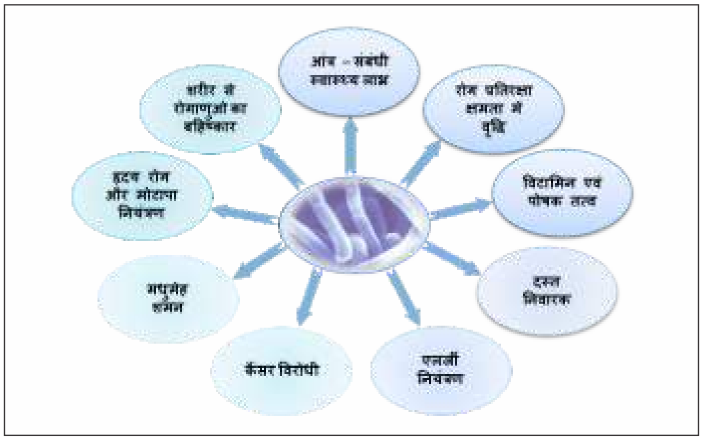

चित्र 1 : प्रोबायोटिक्स के विभिन्न स्वास्थ्य लाभ

प्रोबायोटिक्स के स्वास्थ्य लाभ

प्रोबायोटिक्स के स्वास्थ्य लाभों से जुड़े दावों का समर्थन बहुतायत वैज्ञानिक साक्ष्यों द्वारा किया गया है। इनमें से प्रमुख स्वास्थ्य लाभ–मेजबान के पोषण और आंतों के स्वास्थ्य में सुधार; प्रतिरक्षा स्वास्थ्य मे विकास, वृद्धि और रखरखाव; रक्तवसा विरोधी, मधुमेह निवारक और ऑक्सीकरण विरोधी गुणों के माध्यम से चयापचय स्वास्थ्य में सुधार; रोगजनक जीवाणुओं के उपनिवेशण मे रोकथाम से आंत समस्थिति होना। यह स्वास्थ्य लाभ अधिकतर उपभेद विशिष्ट हैं तथा खुराक में प्रोबायोटिक जीवाणुओं की पर्याप्त संख्या पर भी निर्भर करते हैं। पर्याप्त साक्ष्य के साथ, प्रोबायोटिक्स का व्यापक और तीव्र मधुमेह रोगों के उपचार में, एंटीबायोटिक से जुड़े दस्त की रोकथाम में और लैक्टोज असहिष्णु उपभोक्ताओं में लैक्टोज चयापचय में सुधार के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया गया है, लेकिन इन्हे अन्य नैदानिक परिस्थितियों में उपयोग करने की सिफारिश के अपर्याप्त सबूत हैं।

पोषक की पोषण स्थिति में सुधार करने में प्रोबायोटिक्स

विभिन्न आयु वर्गों (नवजात शिशुओं / व्यस्कों / बुजुर्गों) के लोगों के बीच पौषणिक स्तर में सुधार के लिए प्रोबायोटिक्स की भूमिका गत कुछ दशकों में विभिन्न जांचकर्त्ताओं द्वारा व्यापक रूप से अध्ययन की गई है। पोषक की पोषण संबंधी स्थिति में सुधार में लगे मुख्य तन्त्र हैं: (i) पोषक तत्वों के प्रभावी चयापचय के लिए

संशोधित आंत सूक्ष्मजैवीय संतुलन (ii) कार्बनिक अम्लों, जैवसक्रिय पेप्टाइडों, लघु श्रृंखला वसीय अम्लों, विटामिनों जैसे जैवसक्रिय संघटकों के संशोधित संशलेशित्र से पोषक के पौषणिक स्तर के बेहतरी के लिए महत्वपूर्ण योगदान करना। हाल ही में पौषणिक अनुसंधान में 'ओमिक विज्ञान' के प्रयोग ने विभिन्न संकेतन मार्गों को अप्रकाशित किया है जो कि प्रोबायोटिक्स और उनके मेटाबोलाइट्स द्वारा संशोधित होते हैं जो पोषक की विशिष्ट प्रतिक्रियाओं को ग्रहण करते हैं। बचपन के कुपोषण को कम करने के लिए 'रेडी टू यूज' चिकित्सीय खाद्य पदार्थ (आर.यू.टी.एफ) के रूप में हाल ही में कई शोधों ने प्रोबायोटिक हस्तक्षेप की कार्य नीति की ओर इशारा किया है।

प्रोबायोटिक्स तथा संशोधित आन्त्रीय अवरोध कार्य

आन्त्रीय अवरोध अखंडता अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए एक पूर्वापेक्षा है, क्योंकि यह शरीर में बाहरी सूक्ष्मजैवीय और रासायनिक पदार्थों के प्रवेश को रोकने तथा अवशोषण के बीच संतुलन बना कर आंतों की श्लेष्मा समस्थिति को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। आन्त्रीय अवरोधक पोषक तत्वों के अवशोषण के अलावा एल.पी.एस जैसे खतरनाक स्थूल अणुओं के प्रवेश को रोकता है और पोषक की रक्षा करके मानव स्वास्थ्य के रखरखाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आन्त्रीय अवरोधक एक बाहरी 'शारीरिक' अवरोधक तथा एक आन्तरिक 'कार्यात्मक' प्रतिरक्षाविज्ञानी अवरोधक से बनी एक सम्मिश्रित बहुपरत प्रणाली है। इन दोनों अवरोधकों का परस्पर समन्वय संतुलित पारगम्यता को सक्षम करती है जो कि मानव स्वास्थ्य के रखरखाव में मदद करती है। हालांकि, आन्त्र माइक्रोफलोरा परिवर्तन, तबदील श्लेष्मा स्त्रावी उपकला क्षति जैसे कारक आंत्र के कम होते हुए अवरोधक कार्य के लिए तथा आन्तरिक प्रतिरक्षाविज्ञानी अवरोध के ल्यूमिन अंश के बढ़ते स्थानान्तरण के लिए उत्तरदायी पाए गए। सुराखदार उपकला के द्वारा ल्यूमिनल अंश के बढ़ते स्थानान्तरण आंतरिक श्लेषमा प्रतिरक्षा प्रणाली के अति उत्तेजना का कारण बनता है जो कि आई.आर.डी, आई. बी.एस, कोलाइटस और चयापचय सिंड्रोन जैसे रोगों अथवा विकारों के परिणामस्वरूप विभिन्न रोगजनक शारीरिक परिणामों के विकास के लिए जिम्मेदार हैं।

प्रोबायोटिक्स आंत अवरोध समारोह में सुधार के लिए आकर्षक चिकित्सीय विकल्प हैं। यह आंत सूक्ष्मजैवीय संरचना को ठीक करने, श्लेष्मा स्त्राव को बढ़ाने, छोटे आँत तथा मलाश्य मे तंग संगम प्रोटीन की अभिव्यक्ति और संरचनात्मक पुनर्व्यवस्था के साथ ल्यूमिनस अंश के स्थानान्तरण के लिए संशोधित आंत अवरोध करते हैं जो कि सूजन–संबंधी एवं चयापचय रोगों एवं विकारों से पीड़ित मनुष्यों के स्वास्थ्य में सुधार लाता है। प्रोबायोटिक जीवाणुओं द्वारा किण्वन ब्यूट्रेट का उत्पादन होता है जो कि नियामक टी कोशिकाओं के कार्य का समर्थन करने तथा श्लेष्मा के स्त्राव को बढ़ाने हेतु पाया गया है।

संभावित रोगजनकों के विरूद्ध प्रोबायोटिक के रोगाणुरोधी प्रभाव

सेलमोनेला टायफिम्यूरिम (Salmonella typhimurium) एस्चेरिचिया कोलाई (Escherichia coli) एन्टरोकोकस फेसेलिस (Enterococcus faecalis) स्टैफिलोकोकस आरियस (Staphylococcus aureus) तथा क्लोस्टरीडियम डिफिसाइल (Clostridium difficile) क्लेबसिएला निमोनिया (Klebsiella pneumonia) तथा योनि रोगजनकों जैसे गार्डनेरलैवा वेजिनेलिस (Gardnerella vaginalis) और केंडिडा एलबिकेनस (Candida albicans) जैसे संभावित आंत्रिक रोगजनकों के विरूद्ध प्रोबायोटिक्स की रोगाणुरोधी गतिविधि पर गहन अध्ययन किया गया है। मुख्य रोगाणुरोधी यन्त्र में लैक्टिक तथा एसिटिक अम्ल जैसे कार्बनिक अम्ल का उत्पादन शामिल होता है जिसके परिणामस्वरूप संवर्धन (कल्चर) का पीएच कम हो जाता है। जीवाणुनाशक तथा रोगाणुरोधी पेप्टाइडस का स्त्राव, हाइड्रोजन परऑक्साइड तथा नाइट्रिक आक्साइड के उत्पादन अलावा मेटाबॉलिट्स जैसे लघु श्रृंखला वसीय अम्ल और अन्य कम आण्विक भार योगिकों जैसे रियूट्रीसाइक्लिन जो कि सम्भावित रोगजनकों के लिए विरोधी हैं। पशु अध्ययनों से पता चला है कि

प्रोबयोटिक के अनुप्रयोग से छोटी आंत में पनेथ कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि होती है जो कि मुख्य कोशिकाएं हैं जो आंत के लुमेन में एएमपी का उत्पादन करती है। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट किया गया है कि उन्होंने आंतों के तरल पदार्थ में एस. आयिस (S. aureus) तथा सेलोमोनेला टायफिम्यूरियम (Salmonella typhimurium) के खिलाफ रोगाणुरोधी गतिविधि भी दिखाई हैं।

एलर्जी तथा सूजन–संबंधी विकारों के विरूद्ध प्रोबायोटिक्स–कार्रवाई के संभावित तरीके

विभिन्न एलर्जी और सूजन–संबंधी विकारों के इलाज के लिए प्रतिरक्षा प्रतिक्रियाओं को संशोधित करने के लिए प्रोबायोटिक जीवाणुओं की क्षमता का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। पोषक की प्रतिरक्षा स्थिति तथा रोगजनक प्रतिक्रियाओं पर प्रोबायोटिक कार्रवाई के मुख्य तंत्र को इन विट्रो कोशमय तथा इन–विवो पशु मॉडलों से साइटोकिन उत्पादन प्रोफाइल के साथ अच्छी तरह से प्रलेखित किया गया है तथा मानव नैदानिक परीक्षणों में हस्तक्षेप अध्ययन करके उनकी प्रभावकारिता संस्थापित की गई है। इम्यूनोमोडयूलेशन के तन्त्र में आई.जी.ए के स्त्राव शामिल हैं जो पोषक को सबसे पहली प्रतिरक्षा रक्षा प्रदान करता है, टी–एच 1/टी–एच 2 प्रतिरक्षा के रखरखाव और साइटोकिन स्त्राव को नियंत्रित करने के लिए टीरेग कोशिकाओं की गतिविधि को बढ़ाने में मदद करता है।

आंतों के रोगों की रोकथाम तथा उपचार में प्रोबायोटिक्स क्रिया की प्रक्रिया

विभिन्न आयुवर्ग के लोगों के बीच एंटीबायोटिक संबंधी दस्त, कलोस्ट्रीडियम डिफिसाइल (Clostridium difficile) सम्बद्ध दस्त, कार्यात्मक आंत्र समस्याओं (कब्ज़ तथा अतिसंवेदनशील आन्त्र रोगलक्षण) सूजनशील आन्त्र रोगों (क्रोहन रोग (सीडी) तथा सव्रण बृहदान्त्रशोथ (यूसी) जैसे जठरान्त्रीय विकारों तथा संदूषण के विकास में संभावित रोगजनक प्रकारों की बढ़ती संख्या के साथ आन्त्र सूक्ष्मजैवीय संरचना में परिवर्तन मुख्य कारण है। जठर सूक्ष्मजैवीय संरचना से जुड़ा असंतुलन आंत्र अवरोध कार्य, आंतों की प्रतिरक्षा प्रणाली तथा सूजन को परिवर्तित कर देता है जो कि ऊपर उल्लिखित आंत्र रोगों के विकास के लिए उत्तरदायी हैं। तथापि प्रोबायोटिक्स संशोधित आंत्र सूक्ष्मजैवीय संतुलन के साथ इन रोगों के उपचार में प्रभावी पाए गए हैं।

चयापचय संबंधी विकारों के प्रबंधन में प्रोबायोटिक्स के तंत्र

प्रोबायोटिक्स हाल ही में उपापचयी रोगलक्षणों के प्रबंधन में संभावित जैव चकित्साविधान के रूप में उभरे हैं। इनकी प्रभाविकता को विभिन्न इन–विट्रों तथा इन–विवों पशुमाडल में प्रदर्शित किया गया है जो कि उनकी स्थापित बहुक्रियाशील भूमिकाओं और रोकथाम तथा रोग उपचार के तंत्रो को प्रयाप्त रूप से समर्थित करते हैं। इसके अन्तर्गत प्रमुख तन्त्र जैस संशोधित आंत सूक्ष्मजैवीय संतुलन सहित संयुग्मित लिनोलिक एसिड (सीएलए) उत्पादन, भोजन अन्तर्ग्रहण मे घटत, पेट की वसा और कुल रक्तवसा में कमी, बेहतर श्लेष्म अखंडता सहित सूजन–संबंधी विकारों में घटत होने से मोटापा तथा टाइप–2 मधुमेह जैसे चयापचय लक्षणों के प्रबंधन शामिल हैं।

प्रोबायोटिक्स तथा मौखिक स्वास्थ्य

मौखिक गुहा अधिकता सूक्ष्म जीवों का समुदाय है जिसमें 700–1000 से अधिक जीवाणु प्रजातियां शामिल हैं जिनमें से 20 प्रतिशत स्ट्रेप्टोकोकी द्वारा दर्शाइ गई हैं। मौखिक स्वास्थ्य प्रमुख तौर से निवासी माइक्रोफ्लोरा से प्रभावित होने सहित उम्र, स्वास्थ्य, पोषण की स्थिति और जीवन शैली से भी प्रभावित होता है। प्रोबायोटिक्स पेरिडोन्टल रोगों, दांत क्षय तथा मूंह से दुर्गन्ध को नियंत्रित करने के लिए पाए गए हैं। प्रोबायोटिक्स मौखिक स्वास्थ्य को तीन मूल तन्त्रें के द्वारा मौखिक जीवाणु के एकत्रीकरण, मौखिक उपकला के साथ परस्पर क्रिया तथा रोगजनकों पर प्रतिरोधी प्रभाव डालते पाए गए हैं। वे ओरल बायोफिल्म संरचना को सकारात्मक रूप से संशोधित करते हैं जो अन्ततः रोगजनक तथा बायोफिल्म कीटाणुओं की

कारियोजेनिक क्षमता को कम कर देता है। इसके अतिरिक्त मौखिक उपकला के साथ परस्पर क्रिया उपकला अवरोध कार्य को सुदृढ़ करने की ओर जाता है।

सारणी 1: सार्वजनिक प्रोबायोटिक्स डेरी उत्पाद एवं प्रयुक्त उपभेद

कम्पनी	किस्म	उत्पाद
नेस्ले	एल.एसिडोफिलस एनसीएफएम (L. acidophilus NCFM)	एक्टीप्लस प्रोबायोटिक दही
मदर डेरी	एल.एसिडोफिलस (L. acidophilus) बी.लेक्टिस बी.बी.12 (B. lactis BB12) लेक्टोबेसिलस एसिडोफिलस ए5 (Lactobacillus acidophilus A5)	न्यूट्रिफिट प्रोबायोटिक पेय बी–एक्टिव प्रोबायोटिक दही
याकुल्ट डेनोन इंडिया (वाई.डी.आई)	एल.केसई शिरोटा (L. casei Shirota)	प्रोबायोटिक पेय
अमूल	लेक्टोबेसिलस एसिडोफिलस (L. acidophilus) तथा बिफिडोबेक्टीरियम एनीमलाइस (Bifidobacterium animalis) (उपभेदों निर्दिष्ट नहीं)	शुगर फ्री प्रोबायोटिक आईस्क्रीम, प्रोबायोटिक चोकोबार, प्रोबायोटिक लस्सी, प्रोलाइफ प्रोबायोटिक बटरमिल्क
मो सुपरफूडस	एक्टिव केफीर कल्चर (Active Kefir Culture) (उपभेदों का उल्लेख नहीं)	प्रोबायोटिक योघर्ट स्मदी
न्यूट्रास फूड प्राइ.लिमि.	उपभेदों का उल्लेख नहीं	प्रोबायोटिक ग्रीक योघर्ट
ब्लू मांउट डेरी प्राइवेट लिमि.	उपभेदों का उल्लेख नही	ब्लूमो प्रोबायोटिक दही

प्रोबायोटिक्स और मानसिक स्वास्थ्य

पिछले दशक में जठर को मस्तिष्क से जोड़ते हुए गहन शोध देखे गए है। तथ्य यह है कि जठर आंत्र क्षेत्र तथा केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के बीच एक दिशात्मक संचार नेटवर्क मौजूद है, जो कि एक आंत–मस्तिष्क अक्ष की उपस्थिति के माध्यम से मान लिया गया है। इन क्षेत्रों में आग बढ़ने से कई मनौवैज्ञानिक तथा तंत्रिका संबंधी विकार जैसे अवसाद, स्वलीनता को आंतों के सूक्ष्मजीवों में होने वाले बदलावों से जोड़ा गया है। तीन बुनियादी तंत्र हैं जो कि आंत्र मस्तिष्क अक्ष के केन्द्र हैं अर्थात् प्रत्यक्ष न्यूरोनल संचार, अन्तः स्त्रावी संकेतन मध्यस्थ तथा प्रतिरक्षा प्रणाली। प्रोबायोटिक्स इनमें से एक या अधिक कारकों को संशोधित कर सकते हैं तथा एक स्वस्थ मानसिक स्वास्थ्य सुनिश्चित कर सकते हैं। कुछ अध्ययनों ने प्रोबायोटिक्स पर संकेत दिया है जो पार्किन्संस तथा अल्जाइमर जैसे पुराने न्यूरोलाजिकल विकारों के लक्षणों को कम करता है।

प्रोबायोटिक्स एवं योनि स्वास्थ्य

योनि संक्रमण महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले सबसे आम संक्रमणों में से एक है। योनि स्वस्थ परिस्थितियों में एक देशी माइक्रोबायोटा प्रमुख्य तोर पर लैक्टोबैसिलस (Lactobacillus) प्रजातियों को पनाह देती है। जो कार्बनिक अम्लों के उत्पादन के माध्यम से लगभ योनि के 4.5 पी.एच. को बनाए रखने में मदद करता है। इस माइक्रोबोयोम (Microbiome) को रोगग्रस्त स्थिति में बदल दिया जा सकता है और गार्डनरेला वेजिनालिस, मायकोप्लाज़्मा होमिनिस जैसे रोगनकों की ओर संतुलन को स्थानानरित कर सकता है जिससे जीवाण्विक वैजि नोसिस (बीवी) तथा वुलोवाफेनिल कैंडिडिओसिस (वीवीसी) जैसे रोग हो

सकते है। वीवीसी स्थितियों में प्रोबायोटिक्स के अनुप्रयोग से मामूली सुधार हुआ तथा बीमारी के शीघ्र उपचार में सहायता मिली।

प्रोबायोटिक्स उत्पाद

भारत में प्रोबायोटिक्स का स्वदेशीकरण 21वीं शताब्दी के प्रारंभ में डेरी आधारित प्रोबायोटिक उत्पादों के विपणन के साथ शुरू हुआ। व्यापक रूप से उपभोक्ताओं की स्वीकार्यता के साथ डेरी, आहार पोषण तथा स्वास्थ्य जैसे कई क्षेत्रों/विषयों से अनुसंधानकर्त्ताओं ने प्रोबायोटिक विज्ञान के क्षेत्र में सूत्रित एकीकृत दृष्टिकोण तैयार किया है ताकि विभिन्न स्वास्थ्य सबंधी प्रोबायोटिक्स को उनके उत्पादों की व्यापक श्रेणी द्वारा उपभोक्ताओं में परिवर्तित कर सकें। भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान लेक्टोबेसिलस फरमेंटम 5689 (Lactobacillus fermentum 5689), लेक्टोसिलस प्लानटेरम 5690 (Lactobacillus plantarum 5690) जैसे स्वदेशी प्रोबायोटिकस का प्रयोग करके प्रोबायोटिक उत्पादों की विशाल संख्या विकसित करने वाला एक अग्रणी संस्थान है। इनमें से अधिकतम उत्पाद जैसे प्रोबायोटिक दही, प्रोबायोटिक लस्सी तथा श्रीखण्ड (चित्र 2) आंतों की संक्रामक स्थितियों में आंत अवरोध कार्य में सुधार करने के अतिरिक्त स्वदेशी प्रोबायोटिक जीवाणुओं को पहुंचाने के लिए एक श्रेष्ठ मैट्रिक्स है। इसके अतिरिक्त, शहद तथा जई के रूप में प्रीबायोटिक्स के सम्पूरण से भण्डारण के दौरान प्रोबायोटिक्स जीवाणुओं व्यवहार्यता को बढ़ा दिया तथा शेल्फ लाइफ समाप्त होने पर प्रोबायोटिक की अनुशंसित खुराक वितरित की गई।

उन्नत जीवनशैली के रोगों, स्वास्थ्य देखभाल की लागत तथा स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के कारण ऐसे उत्पादों की मांग बढ़ रही है। डेरी उद्योग ने प्रोबायोटिक उत्पादों के विकास में प्रमुख योगदान दिया है। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय खिलाड़ी योघर्ट, आइस्क्रीम, किण्वित पेय आदि जैसे डेरी मेट्राइसिस में प्रोबायोटिक वितरित कर रहे हैं। भारत का सबसे बड़ा सहकारी समूह 'अमूल' फरवरी, 2007 में प्रोबायोटिक आईस्क्रीम 'प्रोलाइफ' का प्रारम्भ करने वाला पहला समूह था। भारतीय प्रोबायोटिक बाजार में नेस्ले तथा मदर डेरी दूसरे तथा तीसरे स्थान पर है। प्रोबायोटिक के साथ दही का मूल्य वर्धन मदर डेरी तथा नेस्ले द्वारा क्रमशः 'बी–एक्टिव' तथा 'एक्टीप्लस' नाम से किया गया। मदर डेरी ने बाद में एक 'न्यूट्रीफिट' नामक प्रोबायोटिक डेरी पेय प्रारम्भ किया गया। 'याकुल्ट' प्रोबायोटिक किण्वित दुग्ध पेय का एक अन्य लोकप्रिय ब्रांड है जिसका विपणन 'याकुल्ट डेनोन प्राइवेट लिमि. द्वारा किया गया जो कि जापान के याकुल्ट होशां तथा फ्रेंच–डेनोन ग्रुप (चित्र 3) का 50:50 का संयुक्त उपक्रम है

वर्तमान में ऐसे उत्पादों का बाजार केवल महानगरों तक ही सीमित है लेकिन उभरते हुए प्राइवेट खिलाड़ियों द्वारा प्रोबायोटिक आधारित डेरी उत्पादों को प्रारम्भ करने पर विचार किया जा रहा है जिससे ऐसे उत्पादों की मांग बढ़ने की आशा है। नीचे दी गई तालिका 1 में भारतीय बाजार में उपलब्ध कुछ प्रोबायोटिक डेरी उत्पादों की सूची दी गई है।

निष्कर्ष

प्रोबायोटिक आंत जीवाणुओं के एक स्वस्थ समुदाय को बढ़ावा देते है और स्वास्थ्य लाभ की एक व्यापक श्रृंखला से जुड़े हुए हैं। प्रोबायोटिक खाद्य पदार्थों की खपत के लिए भारत में महत्वपूर्ण जनहित है। प्रोबायोटिक किस्म के खाद्य पदार्थों की व्यापक श्रेणी है तथा जो और भी बढ़ रही है। डेरी उत्पाद मुख्यत: योघर्ट तथा दही उपभोक्ता को प्रोबायोटिक जीवाणुओं के वितरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ बने हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। भारत आने वाले दशक में स्वास्थ्य सुधार एवं विभिन्न विकारों से बचाव एवं उपचार की औषधियों को बनाने में आहारीय सम्पूरक के रूप में बाजार में प्रोबायोटिक सम्पूरकों की आशातीत वृद्धि का साक्षी होगा।

प्रोबायोटिक लस्सी   प्रोबायोटिक दही

चित्र 2 : प्रोबायोटिक किण्वित डेयरी उत्पाद स्वदेशी प्रोबायोटिक उपभेदों से तैयार, लैक्टोबैसिलस प्लांटरम 5690 (Lactobacillus plantarum 5690) और लैक्टोबैसिलस फेरमेंटम 5689 (Lactobacillus fermentum 5689)

चित्र 3 : भारत में विपणन किए गए प्रोबायोटिक डेरी उत्पाद

मट्ठा प्रोटीन पेय और उनके लाभ

रेनु कश्यप एवं शिल्पा विज

डेरी सूक्ष्मजीवाणु प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

09

हाल के वर्षों में, दूध कार्यात्मक खाद्य पदार्थ के रूप में पहचाना जाता हैं पर मट्ठा,पनीर और दही निर्माण का उपोत्पाद मे, कभी व्यर्थ पदार्थ माना जाता था। दूध में प्रोटीन के दो प्राथमिक स्त्रोत होते हैं, कैसिइन और मट्ठा। जब एक कौयगुलांट (आमतौर पर रेनिन) दूध में डाला जाता है, तो दही (कैसिइन) और मट्ठा अलग हो जाता है। मट्ठा प्रोटीन दूध का पानी में घुलनशील हिस्सा है। केसिन प्रोटीन के लिए दही बनाने मे जिम्मेदार होते हैं, जबकि मट्ठा जलीय में रहता है। ऐतिहासिक रूप से, मट्ठा को एक इलाज माना जाता था, यह सभी आरथ्राइटिस संबंधी शिकायतों से लेकर संयुक्त बीमारियों जैसे लिगामेंट की समस्या को ठीक करता है। आज मट्ठा प्रोटीन का एक लोकप्रिय आहार है जोकि एंटीमाइक्रोबियल प्रदान करने के लिए, प्रतिरक्षा मॉडुलन, बेहतर मांसपेशी शक्ति और शरीर की संरचना, और हृदय रोग और ऑस्टियोपोरोसिस रोकने के लिए बेहतर पेय माना जाता है। प्रत्येक मट्ठा उत्पाद प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, इम्युनोग्लोबुलिन, लैक्टोज, खनिज और वसा कीं मात्रा में भिन्न होता है।

मट्ठा प्रोटीन, कुल दूध प्रोटीन का 20% होता है जिस मे α–लैक्टोग्लोबुलिन सहित कई अलग–अलग प्रोटीन ((–LG), α–lactalbumin (α–LA), भारी–और लाइट–चेन इम्युनोग्लोबुलिन (Ig), गोजातीय सीरम एल्ब्यूमिन (बीएसए), लैक्टोफेरिन (एलएफ), लैक्टोपरोक्सीडेज और ग्लाइकोक्रोपेप्टाइड (जीएमपी) भी शामिल है । मट्ठा प्रोटीन में सभी 20 अमीनो एसिड भी शामिल हैं, और यह सल्फर एमिनो का एक समृद्ध और संतुलित स्त्रोत है जोकि एसिड एंटीऑक्सिडेंट के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसमें अन्य प्रोटीन की तुलना में तीन से चार गुना अधिक जैवउपलब्ध सिस्टीन होता है। सिस्टीन ग्लूटाथियोन के बायोसिंथेसिस ओर पूरे शरीर में प्रोटीन चयापचय मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिसके परिणामस्वरूप शरीर रचना में परिवर्तन होता।

मट्ठा के प्रकार

मट्ठा प्रोटीन विभिन्न रूप में उपलब्ध हैं। मट्ठा प्रोटीन सांद्रता (WPC) और आइसोलेट्स (WPI), मट्ठा प्रोटीन भिन्न (α–lactalbumin और स–lactoglobulin समृद्ध अंश, कैसिइन ग्लाइकोमाक्रोपाइड, लैक्टोफेरिन, और लैक्टोपरोक्सीडेज) और प्रोटीन हाइड्रोलिसेट्स (WPH) मे मट्ठा को वर्गीकृत किया जा सकता है ।

मट्ठा को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है

अम्लीय मट्ठा (पीएच <5) ↙ ↘ मीठा मट्ठा (पीएच 6 और पीएच 7)

मट्ठा प्रोटीन के क्या लाभ हैं?

यह प्रोटीन का उच्च गुणवत्ता वाला, अच्छी तरह से अवशोषित स्त्रोत है जो लक्षित दैनिक प्रोटीन की कमी के लिए बहुत उपयोगी है।

- इसके लाभ सामान्य रूप से शरीर मे प्रोटीन की कमी को पूरा करता हैं, इस के साथ ही यह मांसपेशियों

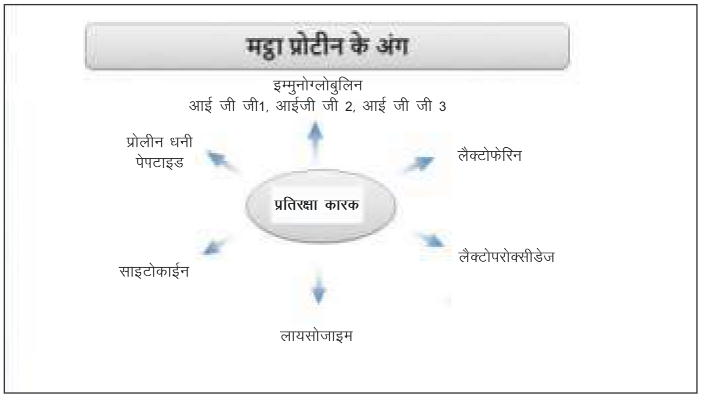

का लाभ बढ़ाना, कम कैलोरी आहार के दौरान मांसपेशियों की हानि को सीमित करना, और अत्याधिक कैलोरी सेवन की अवधि के दौरान वसा लाभ करने मे सक्षम है।

- यह अन्य प्रोटीन स्रोतों की तुलना में अधिक प्रभावी है और इसका उपयोग प्रोटीन एलर्जी, अस्थमा, उच्च कोलेस्ट्रॉल, मोटापा और वजन घटाने, शिशुओं में एलर्जी और पेट के कैंसर को रोकने के लिए भी किया जाता है।

1. रोगाणुरोधी और एंटीवायरल गतिविधियां

मट्ठा में कई घटक होते हैं जो विषाक्त पदार्थों, बैक्टीरिया और वायरस से रक्षा कर सकते है। इन घटकों में इम्मुनोग्लोबूलिन, लैक्टोफेरिन, लैक्टोपरोक्सीडेज, जीएमपी और स्फिंगोलिपिड्स और इसके रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स मट्ठा प्रोटीन के द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं। इसमे मोजूद लैक्टोफेरिकिन एक विविध रेंज के ग्राम–नकारात्मक बैक्टीरिया सहित सूक्ष्मजीव, ग्राम पॉजिटिव बैक्टीरिया, परजीवी प्रोटोजोआ और कुछ हानिकारक खाद्य जनित रोगजनकों जैसे कि ई. कोलाई और लिस्टेरिया मोनोसाइटोजेनेस के विकास को भी बाधित करता है। लैक्टोफेरिन महत्वपूर्ण एंटीवायरल भी है ओर यह इम्युनोडेफिशिएंसी वायरस, मानव साइटोमेगालो वायरस (एचसीएमवी), हर्पीज वायरस, मानव पेपिलोमा वायरस (एचपीवी), अल्फा वायरस और हेपेटाइटिस सी, बी और जी वायरस को रोकने मे सक्षम है। मट्ठा प्रोटीन प्रतिरक्षा सेल को सक्रिय करता है और संक्रमण को रोकता है। मट्ठा प्रोटीन दस्त निपटने में भी मदद करता है, जिसके वजह से लगभग 500,000 बच्चों की सालाना मृत्यु हो जाती है।

2. एथलेटिक प्रदर्शन

मट्ठा प्रोटीन का उपयोग एथलेटिक प्रदर्शन में सुधार के लिए किया जाता है। कुछ नैदानिक अनुसंधान से पता चलता है कि शक्ति प्रशिक्षण के संयोजन में मट्ठा प्रोटीन लेने से दुबला शरीर द्रव्यमान, शक्ति और मांसपेशियों का आकार बढ़ जाता है। जबकि कुछ सबूत बताते हैं कि एक शक्ति प्रशिक्षण कार्यक्रम के हिस्से के रूप में मट्ठा प्रोटीन लेने से रोग प्रतिरोधक शक्ति मे भी वृद्धि होती है। मट्ठा प्रोटीन तीव्र व्यायाम के बाद मांसपेशियों की वृद्धि में मदद कर सकता है। मट्ठा प्रोटीन एक ब्रांच्ड चेन एमिनो एसिड (BCAAs) का स्त्रोत है जो कि एथलीटों के लिए महत्वपूर्ण हैं। अन्य आवश्यक अमीनो एसिड के विपरीत, यह सीधे मांसपेशियों के ऊतकों में चयापचय करता है और इसे पहले लोग व्यायाम की अवधि के दौरान इस्तेमाल करते है। आवश्यक अमीनो एसिड और मट्ठा प्रोटीन समान रूप से बुजुर्ग व्यक्तियों के लिए भी प्रभावी होता हैं बुजुर्ग व्यक्तियों में मांसपेशियों के प्रोटीन संश्लेषण को प्रोत्साहित करते है। इसके अलावा, मट्ठा प्रोटीन मे एक आवश्यक अमीनो एसिड उत्कृष्ट है, जो ल्यूसीन है। ल्यूसीन भी एथलीटों मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्यूंकी यह मांसपेशियों के प्रोटीन संश्लेषण और मांसपेशियों को बढ़ावा देता है।

3. कुपोषण

मट्ठा प्रोटीन उन लोगों में वजन बढ़ाने में मदद कर सकता है जिन्हें वजन बढ़ने और वजन रखने में परेशानी होती है, जैसे कि बड़े वयस्क या एचआईवी/एड्स वाले लोग। मट्ठा प्रोटीन अकसर एक सकारात्मक अंतर बनाने में मदद करता है और यह सबसे अच्छा ऊर्जा प्रतिबंधित आहार है। यह भूख को नियंत्रित करने मे भी लाभदायक है।

4. मधुमेह

मट्ठा प्रोटीन मधुमेह रोगियों के लिए एक अच्छा विकल्प है। यह मोटापे और उच्च रक्तचाप, टाइप II मधुमेह, हाइपर और डिस्लिपिडेमिया से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए भी फायदेमंद है। यह शरीर की संरचना में सुधार करता है और कमर की परिधि को कम करता है। मट्ठा प्रोटीन रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में मदद करता है और यह वजन के लिए भी फायदेमंद है, जो की टाइप– II मधुमेह रोगियो मे एक चिंता का विषय है।

5. ओस्टीओपोरोसिस

मट्ठा प्रोटीन में हड्डी के स्वास्थ्य के लिए कई घटक लाभदायक होते हैं। यह माना गया है की 300 मिलीग्राम मट्ठा प्रोटीन सेवन करने से सीरम बढ़ता है। मट्ठा के दूध मे सक्रिय प्रोटीन जो ऑस्टियोब्लास्ट को सक्रिय करने मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसमे मूजूद लैक्टोफेररिन हड्डी कोशिका की गतिविधि को बड़ाता है ओर यह हड्डी के टूटने को भी कम करता है। यह शक्तिशाली उपचय, विभेदीकरण और ओस्टियोब्लास्ट पर एंटी–एपोप्टोटिक प्रभाव और ऑस्टियोपोरोसिस और संभवतः, हड्डी के विकास के महत्वपूर्ण शारीरिक नियामक माना गया है।

6. एलर्जी

हाइड्रोलाइज्ड फॉर्मूला में प्रोटीन होता है जो गाय के दूध और सोया–आधारित फॉर्मूलों की तुलना में छोटे आकार में टूट जाता है। अनुसंधान से पता चलता है कि मट्ठा प्रोटीन के हाइड्रोलाइज्ड रूप दिए गए शिशुओं में मानक फार्मूला का सेवन करने वाले शिशुओं की तुलना में एटोपिक डर्माटाइटिस (एक्जिमा) विकसित होने का जोखिम कम होता है।

7. कैंसर

मट्ठा प्रोटीन का उपयोग कैंसर की रोकथाम और उपचार में शोध द्वारा प्रमाणित किया गया है एक रिसर्च से यह पता चला है कि मट्ठा प्रोटीन कैंसर का उपचार, एवं कैंसर रोधी की क्षमता रखता है। कैंसर रोगी के साथ एक छोटा परीक्षण किया गया था। जिनमें मेटास्टेटिक कार्सिनोमा के साथ, स्तन कैंसर, अग्नाशय के कैंसर, और एक यकृत कैंसर मोजूद थे। 59 रोगियों को छह महीने के लिए प्रोटीन सांद्रता के लिए 30 ग्राम मट्ठा दिया गया। अध्ययन के पूरा होने के बाद, दो रोगियों में ट्यूमर प्रतिगमन और लिम्फोसाइट जीएसएच स्तर की वापसी सामान्य होने के संकेत मिले। दो रोगियों ने ट्यूमर स्थिरीकरण के लक्षण छोटे आकार के यह अध्ययन, एक बड़े नैदानिक की आवश्यकता को दर्शाता है। 8-हेपेटाइटिस मट्ठा प्रोटीन पूरकता से हेपेटाइटिस बी या सी संक्रमित रोगियों में चर प्रभाव प्रदर्शित करता है। शुरू में यह पाया गया कि लैक्टोफेरिन ने हेपेटाइटिस सी वायरस (एचसीवी) को रोका था।

8. मानव रोग क्षमपर्याप्तता विषाणु (HIV)

एचआईवी से संक्रमित व्यक्तियों के लिए ग्लूटेथिओन की कमी एक आम समस्या है। अंततः एचआईवी पॉजिटिव व्यक्तियों में ग्लूटाथियोन ओर सिस्टीन बढ़ाने के लिए, मट्ठा प्रोटीन से कई अध्ययन किए गए हैं। दो छोटे अध्ययन एचआईवी पॉजिटिव महिलाओं पे किए गए हैं, जिनमें शरीर में वृद्धि को नोट किया है।

मट्ठा प्रोटीन के अन्य उपयोग

मट्ठा में आवश्यक और गैर–आवश्यक अमीनो एसिड, खनिज, वसा और जैविक रूप से सक्रिय प्रोटीन की विस्तृत श्रृंखला व्यापक है जोकि जले हुए लोगों जैसे एसिड अटैक से ग्रस्त और पुराने घाव वाले लोगों को ठीक करने के लिए दिखाया गया है। मट्ठा प्रोटीन अत्याधिक तनावग्रस्त व्यक्तियों में संज्ञानात्मक कार्य में भी सुधार करता है। मट्ठा में ट्रीप्टोफेन नामक एक सब्सट्रेट प्रदान करता है जोकि सेरोटोनिन के लेवल को बढ़ाता है, जोकि तनाव में सुधार करने के लिए उपयोगी है।

निष्कर्ष

वैज्ञानिक अनुसंधान का विशाल बहुमत इस निष्कर्ष का समर्थन करता है कि मट्ठा प्रोटीन की खुराक आपके शरीर को सुनिश्चित करने का सही मौका देती है ओर यह एक उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन स्त्रोत हैं जो आसानी से अवशोषित हो जाता है। मट्ठा प्रोटीन व्यावसायिक रुचि स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले कार्यात्मक खाद्य पदार्थ ओर इसमे मौजूद प्रोटीन और पेप्टाइड्स न्यूट्रास्यूटिकल्स के रूप में काम करते है जो स्वास्थ्य के लिए उपयोगी माना गया है। परिणामस्वरूप, हम संभावित रूप से प्रमुखता देख रहें है कि खाद्य और स्वास्थ्य क्षेत्रों द्वारा विकास मट्ठा प्रोटीन और उनके व्यापक पेप्टाइड्स कार्यात्मक खाद्य सामग्री के रूप में, एक पूरक आहार है।

सुविचार

नीरक्षीरविवेके हंस आलस्यं त्वं एव तनुषे चेत।
विश्वस्मिन अधुना अन्यः कुलव्रतम पालयिष्यति कः

अर्थात् :– ऐ हंस, यदि तुम दूध और पानी को भिन्न करना छोड़ दोगे तो तुम्हारे कुलव्रत का पालन इस विश्व मे कौन करेगा। भाव यदि बुद्धिमान व्यक्ति ही इस संसार मे अपना कर्त्तव्य त्याग देंगे तो निष्पक्ष व्यवहार कौन करेगा।

दुधारू पशुओं में आने वाले आम उपापचय विकार एवम् देखभाल

10

शामभ्वी, चन्द्र दत्त, प्रिंस चौहान, कुलदीप डूडी एवं जितेन्द्र कुमार

पशु पोषण प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

विशेषतः उच्च उत्पादन वाले पशुओं में बढ़ती पोषक तत्वों की मांगों को पूरा करने में असमर्थ होने की वजह से दुधारू पशु में उत्पादन रोग होते हैं। उत्पादन रोगों के कारण डेरी उद्योग को बहुत आर्थिक नुकसान उठाने पड़ते है। साथ ही यह पशु कल्याण के लिए भी चिंताजनक है। पिछले कई दशकों में दुधारू पशुओं का गहन आनुवंशिक चयन हुआ है जिससे दुग्ध उत्पादन उस स्तर तक बढ़ गया है कि आहार और शरीर के ऊतक भंडार से पोषक तत्वों की बढ़ी हुई मांग के परिणामस्वरूप अक्सर पशुओं में विकार व बांझपन हो जाता है। उत्पादन रोगों को मानव निर्मित समस्या माना जा सकता है, जिससे उच्च उत्पादन और आधुनिक गहन पशुपालन विधियों के संयुक्त तनाव के तहत शरीर की विभिन्न चयापचय प्रणालियाँ कमजोर पड़ जाती है।

गर्भावस्था के अंत के 3 सप्ताह से दूध देने के 3 सप्ताह की अवधि को सक्रान्ति काल कहा जाता है। इस दौरान गाय कम रखरखाव के चरण से उच्च प्रदर्शन की अवधि में प्रवेश करती है। इस दौरान उचित पोषण प्रबंधन बहुत जरूरी है। साथ ही अचानक आहार परिवर्तन के कारण पशु को पाचन संबंधी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। सक्रान्ति काल के समय अतःस्त्रावी स्थिति पूरे गर्भावधि और दूध देने की अवधि में से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। इस समय गाय के आहार में कमी हो जाती है जबकि गर्भ में विकसित हो रहे भ्रूण व दूध उत्पादन के लिए पोषक तत्वों की मांग बढ़ जाती है। जिसके कारण गाय में अत्याधिक शारीरिक तनाव होता है जिसके कारण इस समय गाय के उत्पादन रोग होने का खतरा सबसे अधिक होता है। दुधारू पशुओं में उत्पादन रोगों की समस्या बहुत जटिल है जिनमें से प्रमुख रोग है; दुग्ध ज्वर, किटोसीस, यकृत में वसा का अत्याधिक जमाव, रोमन्थ अम्लीयता, सुम शोथ इत्यादि। पशुओं की दुधारू अवस्था/सक्रान्ति काल में होने वाले उपापचय विकार एवम् उनकी देखभाल का जिक्र इस लेख में किया गया है ताकि डेरी पशु पालकों को इससे लाभ मिल सके।

(क) दुग्ध ज्वर

दुग्ध ज्वर एक जटिल चयापचय विकार है जो गाय–भैसों में ब्याने के कुछ समय बाद, दूध निकालने की शुरूआत में होती है। दुग्ध ज्वर एक भ्रामिक नाम है क्योंकि इसमें पशु के शरीर का तापमान बढ़ता नहीं है। यह विकार लगभग 75% स्थिति में ब्याने के चौबीस घंटों के भीतर ही हो जाता है और सिर्फ 5% स्थिति में 48 घंटों बाद होती है। दुग्ध ज्वर में पशुओं के रक्त में बड़ा परिवर्तन कैल्शियम के स्तर में आता है (तालिका–1)। खून में कैल्शियम की कमी के साथ फास्फोरस (P) भी कम हो जाता है एवं पोटेशियम (K) और मैगनिशियम (Mg) के स्तर में वृद्धि हो जाती है। यह बीमारी अधिक दूध देने वाली गायों में 6–14 वर्ष की उम्र में एवं तीसरे से सातवें ब्यॉंत में अधिक होती है। पहले ब्यांत में यह प्रायः नहीं होता है। गोवंश में जर्सी गाय में यह अधिक होता है।

रोग के कारण

खून में कैल्शियम के स्तर में कमी के तीन प्रमुख कारण हैं :–

1. ब्याने के बाद बहुत ज्यादा कैल्शियम खीस के साथ शरीर से बाहर आ जाता है। खीस में खून से 10–12 गुना कैल्शियम होता है।

2. ब्याने के बाद दूध एवं खीस में कैल्शियम निकल जाने के कारण हड्डियों से शरीर को कैल्शियम जल्दी नहीं मिल पाता है।
3. यदि ब्याने के बाद पशु के आहार में पौषक तत्वों की कमी होती है तो कैल्शियम का अवशोषण भी कम होता है।

प्लाज्मा में कैल्शियम का कम स्तर मुख्य कारण है। अन्य कारणों में प्लाज्मा में फास्फोरस का स्तर कम होना, पोटेशियम का प्लाज्मा में उच्च स्तर, ब्याने से पहले असंतुलित आहार उचित समय का शुष्क काल का ना होना एवं शुष्क काल में ज्यादा कैल्शियम देना है।

लक्षण

उत्तेजना, सिर और पैर की मासपेशियों में कंपन, शुष्क थूथन, घूरती आखें, ठंडे कान व पैर, कब्ज, कमजोर और दिल की धड़कन तेज, पशु का तापमान सामान्य से कम होना, मांसपेशियों का कमजोर होना, पशु का एक तरफ पेट की ओर गर्दन मोड़कर बैठे रहना। आमतौर पर लक्षणों को तीन चरणों में विभाजित किया जाता हैः– अतिसंवेदनशीलता, कंपकपी, उत्तेजना को पहले चरण में रखा जाता है, दूसरे चरण में पशु का बैठे रहना और तीसरे चरण में पशु का लेट जाना आता है।

निवारण

दुग्ध ज्वर को नियंत्रित करने के उपाय निम्नलिखित है।

1. ब्याने के समय के आसपास, मुहँ से कैल्शियम देना।
2. गर्भावस्था के अंतिम हफ्तों में अनायन मिश्रण ब्याने से 3–4 सप्ताह पहले (75–100ग्रा./दिन/पशु) का सेवन कराना एवं राशन में कैल्शियम को सीमित मात्रा में खिलाना।
3. गर्भावस्था में विटामिन डी और विटामिन डी के अनुरूप का उपलब्ध करवाना।
4. गर्भावस्था में मैग्निशियम (Mg) के स्तर पर नियंत्रण रखना।
5. पशु के शरीर का भार व स्थिति पर नियंत्रण।
6. गर्भावस्था में कार्बोहाइड्रेट सेवन पर नियंत्रण कराना।
7. पशु को उचित अवधि का शुष्क काल देना।
8. प्रारंभिक समय में कम दूध निकालना।

शुष्क काल के दौरान कैल्शियम के सेवन को नियंत्रण करने के दिशा–निर्देश :–

1. प्रतिदिन 50 ग्राम से कम कैल्शियम का सेवन करना (पूरे आहार का 0.5% से कम)
2. प्रतिदिन 45 ग्राम से कम फास्फोरस का सेवन करना (पूरे आहार का 0.35%से कम)
3. शुष्क काल के दौरान उच्च कैल्शियम वाले चारे (अल्फा–अल्फा की सूखी) खिलाने से कैल्शियम की खपत में कटौती होती है और दुग्ध ज्वर कम होता है। एनायोनिक मिश्रण को शुष्क काल में खिलाना दुग्ध ज्वर को रोकने का एक प्रभावी तरीका है। एनायोनिक नमक हड्डियों से कैल्शियम की मात्रा को बढ़ाकर दुग्ध ज्वर की घटनाओं को कम करता है।

तालिका–1 दुग्ध ज्वर की विभिन्न अवस्थाओं में खून में कैल्शियम का स्तर

क्र.सं.	खून में कैल्शियम का स्तर	मिलीग्राम/100 मिलीलीटर
1.	सामान्य दूध देने वाली गाय	8.4–10.2
2.	ब्याने के सामान्य स्तर	6.8–8.6
3.	अल्प दुग्ध ज्वर	4.9–7.5
4.	मध्यम दुग्ध ज्वर	4.2–6.8
5.	गंभीर दुग्ध ज्वर	3.5–5.7

तालिका–2 राशन में डी.सी.ए.डी. स्तर का मूत्र पी.एच.पर असर

राशन डी.सी.ए.डी	मूत्र पीएच	अम्लता–क्षारकता स्तर	कैल्शियम
सकारात्मक (>0 इक्विवेलेंट/किलोग्राम)	8.0–7.0	क्षारमयता	खून में कैल्शियम की कमी
नकारात्मक (<0 इक्विवेलेंट/किलोग्राम)	6.5–5.5	थोड़ा चयापचय अम्लयमयता	खून में सामान्य कैल्शियम
	25.5	गुर्दा पर अधिक भार	

एनायोनिक मिश्रण में क्लोराइड, सल्फर और फास्फोरस की अधिकता से खून में कैल्शियम की कमी के अवसर बहुत कम हो जाते हैं। अतः दुग्ध ज्वर कम होता है। राशन में –100 से –150 मिलि इक्विवेलेंट/कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ की मात्रा में डी.सी.ए.डी. शामिल करने से दुग्ध ज्वर होने की संभावना को कम किया जा सकता है।

(ख) किटोसीस

किटोसीस तब होता है जब अपर्याप्त आहार एवं अधिक दूध निकालने के कारणवश पशु का ऊर्जा का संतुलन नकारात्मक हो जाता है। इस विकार में खून में कीटोन निकायों का स्तर बढ़ जाता है जैसे कि एसिटोएसीटेट, एसीटोन व बीटा–हाइड्रोक्सिब्यूटाइरेट और ग्लूकोज का स्तर कम हो जाता है। रक्त प्लाज्मा में बीटा– हाइड्रोक्सिब्यूटाइरेट की सघनता का 1200–1400 माइक्रोमोल प्रतिलीटर में ज्यादा हो जाना, इस रोग का मानक है।

गाय व भैंसों में यह ब्याने के 10 दिन से 6 सप्ताह पश्चात् अधिक दूध देने वाली गायों में होता है। बकरियों में देर गर्भावस्था या शुरूआती दुग्धावस्था में हो सकता है। बकरियों में कीटोसिस का प्रमुख कारण एक ही समय में अधिक बच्चे होने से एवं तात्कालिक ऊर्जा की कमी से होता है।

कारण

यह विकार सामान्य चयापचय प्रक्रिया में बाधा से होता है। दुग्धावस्था में ग्लूकोज, लैक्टोज (दूध सर्करा) और दूध में वसा के बनने के लिए आवश्यक होता है, जिसके कारण खून में ग्लूकोज कम हो जाता है। 4.8 प्रतिशत लैक्टोज़ वाले प्रतिलीटर दूध के लिए 50 ग्राम ग्लूकोज एवं 4% वसा वाले प्रतिलीटर दूध के लिए 30 ग्राम ग्लूकोज़ की आवश्यकता होती है। आहार में कार्बोहाइड्रेट की कमी से जिगर, ग्लूकोज का निर्माण करने लगता है जिसके लिए वसा भंडार को प्रयोग करता है। इस प्रक्रिया में किटोन्स का उत्पादन होता है जो खून में ग्लूकोज की कमी के साथ मिलकर इस रोग के लक्षण के कारण बनते हैं।

लक्षण

1. रोमन्थ/र्‍यूमन की निष्क्रियता

2. शरीर के वजन व दुग्ध उत्पादन में कमी

3. रक्त में ग्लूकोज मात्रा की कमी व कीटोन स्तर में बढ़ोत्तरी

4. अंधापन, त्वचा को जीभ से चाटना, गोल–गोल चक्कर लगाना

निवारण

1. गर्भावस्था आहार में ऊर्जा की मात्रा को बढ़ाना एवं उच्च ब्यूटाइरिक एसिड वाले साइलेज को नहीं खिलाना चाहिए।
2. आहार में परिवर्तन धीरे–धीरे करें, अचानक से पूरा आहार परिवर्तित न करें।
3. शुरूआती शुष्क काल एवं दुग्धावस्था के अंत में नियंत्रित आहार दें।
4. नियासिन (6–12 ग्राम प्रतिदिन) को चारे में मिलाकर देने से किटोसिस की आशंका कम होती हैं।
5. उच्च किटोसिस सम्भावित पशुओं को प्रोपाईलिन ग्लाइकोल भी दिया जा सकता है (300 मिलीलीटर प्रतिदिन, 10 दिनों के लिए पिलाएं)।
6. शुष्क काल के अंतिम समय में मोनेंसिन भी पशु को देने से कीटोनमयता कम होता है। (250 से 300 ग्राम प्रतिदिन, शुष्क काल के अंतिम 50 दिनों के लिए)।
7. कीटोनमयता से बचाने के लिए सबसे जरूरी है कि दुग्धावस्था के पहले दो सप्ताह में पशु की निगरानी और पशुओं को किटोनमयता के लक्षण से बचाने के लिए उच्च ऊर्जा वाला आहार देना चाहिए।
8. ब्याने के बाद प्रतिदिन सोडियम प्रोपिनेइट (Sodium Propionate), 100 ग्राम आहार के साथ देने से किटोसिस की सम्भावनाएँ कम होती हैं।

(ग) रोमन्थ अम्लीयता (Acidity) एवं सुम शोथ (Laminiti)

रोमन्थ अम्लीयता तब होती है जब रोमन्थ पी.एच. 5.5 से कम हो जाती है (सामान्य 6.5 से 6.8)। कई पशुओं में पी.एच. और भी कम हो सकती है। पी.एच. के गिरावट में सबसे पहले, र्यूमन की गति कम हो जाती है। जिसके कारण भूख और उत्पादन कम हो जाते हैं। इसके अलावा अम्लता में परिवर्तन से र्यूमन में उपस्थित सूक्ष्म जीवियों की संरचना में बदलाव आ जाता है। अम्ल–उत्पादक बैक्टीरिया की संख्या अधिक हो जाती है जिससे लैक्टिक अम्ल का उत्पादन अधिक होता है एवम् अम्लीयता की स्थिति और गंभीर हो जाती है। बढ़े हुए एसिड को फिर र्यूमन के माध्यम से अवशोषित किया जाता है जिससे चयापचय अम्लीयता होती है, जो गंभीर अवस्था में मृत्यु का कारण बन सकती है। अम्लीयता का प्राथमिक कारण तेजी से पचने वाले कार्बोहाइड्रेट जैसे जौं, गेंहू, मक्का इत्यादि का अधिक सेवन करना है। अधिक दूध देने वाले पशुओं के आहार में स्टार्च की मात्रा अधिक होने से यह विकार होता है। तीव्र अम्लीयता से अक्सर पशु की मृत्यु हो जाती है। पशुओं में अन्य लक्षण जैसे भूख न लगना, सुस्त रहना, बढ़ी हुई हद्वय गति या दस्त हो सकते हैं।

रोमन्थ अम्लीयता को रोकने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए

1. चारे में रेशे की उचित मात्रा (न्यूनतम एन.डी.एफ., कुल आहार के शुष्क पदार्थ का 25%)
2. पशु के चारे में धीरे–धीरे बदलाव
3. र्यूमन उभयरोधी पदार्थ जैसे कि सोडियम बाईकोर्बोनेट या पोटाशियम बाइकार्बोनेट (आहार का 0.75–1%) पशुओं को देना

4. आइनोफोर जैसे कि मोनेनसिन, सेलिनोमाईसिन
5. यीस्ट (सेक्रोमाईसिस सेरिविसी) का पशु के आहार में सम्मिलनः र्‌यूमन में अम्लीयता होने से व लेक्टिक अम्ल उत्पादन करने वाले बैक्टीरिया की संख्या अधिक होने के कारण हिस्टेमिन का उत्पादन ज्यादा होता है, इसके चलते खुर के अन्तरस्तवचा में संकुचन तत्पश्चात् फैलाव हो जाता है। उसके साथ में सूजन व रक्त शिराओं में भी चोट पहुँचती है। पांव में दर्द के साथ खुर में केराटीन नामक प्रोटीन की संरचना में कमी हो जाती है। इस विकार को सुम–शोथ कहा जाता है जो एक असंक्रामक रोग है जिससे खुरों में विकृति आ जाती है। आमतौर पर पशुओं में लंगड़ापन दीर्घकालिक सुम शोथ के कारण होता है। खुराक में बायोटिन 20 मिग्रा/प्रति पशु/प्रतिदिन देने से लाभ होता है। गाय/भैंस के ब्याने के बाद उनकी जरूरत के अनुसार धीरे–धीरे दाने की मात्रा बढ़ानी चाहिए। ब्याने से पहले व उतरांतकाल में पशुओं को व्यायाम करवाना चाहिए।

(घ) यकृत में वसा का अत्याधिक जमाव

ब्याने के कुछ दिन बाद तक ज्यादा दूध देने वाली गाय अक्सर नकारात्मक ऊर्जा सन्तुलन में होती है। इसकी वजह से शरीर के भण्डारों में से अत्याधिक मात्रा में वसा रक्त में प्रवाहित होती है तथा रक्त में गैर एस्ट्रीकृत वसीय अम्ल बढ़ जाते हैं। वसीय अम्लों के बढ़ने से यकृत ज्यादा मात्रा में उन्हें ग्रहण करने लगता है। स्वतंत्र वसीय अम्लों को यकृत वसा में परिवर्तित कर देता है। रोमन्थी पशुओं के यकृत में वसा को प्रयोग में लाने की क्षमता कम होती है इसलिए वसा का यकृत में ट्राईग्लसीराईड के रूप में भण्डारण आरम्भ हो जाता है। ब्यांत के बाद अधिक वजन वाली गायों में यह स्थिति देखी जाती है। यह बीमारी विभिन्न चयापचयी शारीरिक अव्यवस्था जैसे दुग्ध ज्वर, अम्लरक्तता, थनैला आदि से सम्बन्धित है। मुख्य लक्षणों में भूख में कमी तथा सामान्य अवसाद शामिल हैं।

इस बीमारी को रोकने का सबसे सही तरीका वसीय अम्लों के अत्याधिक संग्रहण को रोकना है। उचित पोषण तथा चारा प्रबंधन, प्रारंभिक ब्यांत में होने वाली नकारात्मक ऊर्जा संतुलन को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है। शुष्क काल में गाय के शरीर की स्थिति की गणना (BCS) सामान्यता 3–3.25 होनी चाहिए। ब्यांत के अंत तथा शुश्क काल के दौरान गाय के शरीर की अवस्था की निगरानी करते रहनी चाहिए ताकि शरीर में अतिरिक्त चर्बी जमा न हो।

अन्तः शिरा शर्करा का उपयोग फलदायक हो सकता है। आमतौर से कोलीन को प्रसव के 10–15 दिन पूर्व से लेकर प्रसव के 15 दिन बाद तक दे सकते हैं। ग्लूकोज, कैल्शियम एवं मैग्निशयम को पशु के चारे में सम्मिलित करना चाहिए। आहार में प्रोपोलिन ग्लाइकोल देना चाहिए। विटामिन B_{12} को पशु को अन्तः शीरा द्वारा देना (5ml/50कि.ग्रा.वजन) चाहिए। इंसुलिन@ 200–300 IU दिन में दो बार चमड़ी के नीचे (s/c) देना चाहिए।

सारांश

दुधारू एवम् संक्राति काल में पशुओं के उपापचय विकारों के कारण दूध उत्पादकता में कमी होने से पशु पालकों को आर्थिक नुकसान होता है। दूध उत्पादन संबंधित विकारों की देखभाल से पशु पालक अपने पशुओं के स्वास्थ्य, उत्पादन एवम् पशु कल्याण को सुनिश्चित कर सकते हैं। आशा है कि अगर पशु पालक उपर लिखित बातों का अनुसरण करेंगे ताकि उनकी पशुजनित व्यवसाय में वृद्धि हो सके।

11 पशु स्वास्थ्य में विटामिन-ए एवं खनिजों का महत्त्व

अश्विनी कुमार रॉय एवं महेंद्र सिंह
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

क्या आप अपने पशुओं की पोषण आवश्यकताओं को पूरा कर रहे हैं? हमारी पृथ्वी और पौधों समेत कई ऐसे खाद्य पदार्थ हैं जिनमें पशुओं के लिए पर्याप्त पोषक तत्त्व उपलब्ध नहीं है। खनिज तत्त्वों की कमी होने से पशु अक्सर बीमार रहते हैं तथा अपनी वास्तविक आयु से अधिक बूढ़े लगने लगते हैं, इसलिए पशुओं को इन पोषक तत्त्वों की भरपाई पर्याप्त मात्रा में करने की आवश्यकता पड़ती है। शरीर के सभी अंगों को आपसी तालमेल से बेहतर कार्य करने हेतु सभी पोषक तत्त्वों का योगदान होता है। संतुलित आहार खाने वाले पशु न केवल स्वस्थ रहते हैं, अपितु उत्पादन भी अधिक करते हैं।

पोषण की कमी होने पर पशु विभिन्न प्रकार के असामान्य व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। पशु सभी वस्तुएँ खाने की कोशिश करते हैं, जो उनका सामान्य आहार नहीं होती। 'पाइका' एक ऐसा रोग है, जब पशु गैर–आहारीय वस्तुओं को चाटने या खाने की कोशिश करने लगता है। इनमें हड्डियों को चबाना, मल, रेत, मिट्टी व लकड़ी खाने जैसी विसंगतियाँ प्रमुख हैं। अतः, हमें अपने पशुओं पर कड़ी निगरानी रखनी चाहिए, अन्यथा असामान्य व्यवहारों के जारी रहने से इन्हें पाचन तंत्र संबंधी कई गंभीर रोग भुगतने पड़ सकते हैं। पोषण में रेशों की कमी के कारण अक्सर पाइका रोग हो जाता है। यह रोग लवणों, फोस्फोरस एवं पोटाशियम की कमी से भी हो सकता है। फोस्फोरस की कमी सामान्यतः उन स्थानों पर होती है जहां की मिट्टी में इसकी कमी हो। फोस्फोरस व लोहे की कमी के कारण पशु मिट्टी खाने लगता है। खेतों में मेहनत करने वाले पशुओं को गर्मियों में सोडियम की कमी हो सकती है तथा पशु नमक चाटने के स्थान पर धूल एवं पेशाब आदि ग्रहण करने लगते हैं। पशुओं के आहार में उपलब्ध सभी तत्त्वों की जांच की जानी चाहिए, ताकि उन्हें किसी भी तत्त्व की अल्पता का शिकार न होना पड़े। आजकल विभिन्न प्रकार के खनिज एवं लवण मिश्रित उत्पाद भी बाजार में उपलब्ध हैं, जो पशुओं की पोषण आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए तैयार किए जाते हैं।

पशुओं को बेहतरीन आहार खिलाएँ

आहार में बहुत से सूक्ष्म–मात्रिक खनिजों जैसे लोहा, जस्ता, मेंगनीज, कोबाल्ट, आयोडीन तथा सेलिनियम की आवश्यकता होती है। इनकी पशुओं हेतु आवश्यक मात्रा बहुत ही कम होती है इसलिए इन्हें ट्रेस मिनरल अथवा सूक्ष्म–मात्रिक खनिज भी कहा जाता है। अधिकतर पशुओं में इनकी कमी तो होती है, परन्तु इसका पता लगाना अत्यंत कठिन होता है। पशुओं में इनकी कमी के कारण कोई विशेष लक्षण भी दिखाई नहीं देते, परन्तु इससे न केवल उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, बल्कि आहार दक्षता भी कम हो जाती है। इनकी कमी से पशुओं का रोग–प्रतिरोध तंत्र भी कमजोर हो जाता है। अतः, डेयरी पशुओं से अधिक लाभ कमाने हेतु पशुओं की खनिज आवश्यकताओं पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। जिन क्षेत्रों में किसी विशेष खनिज की कमी नहीं होती वहाँ भी पशुओं को इसकी आपूर्ति हेतु संपूरक देना पड़ सकता है। कई बार एक क्षेत्र में उत्पन्न आहार को दूसरे क्षेत्र में खिलाने हेतु ले जाया जाता है, जिससे खनिज की कमी वाले स्थानों का चयन करना कठिन हो जाता है, इसलिए पशुओं को खिलाए जाने वाले आहार में सभी संघटकों की जांच कर लेनी चाहिए। पशुओं को दाना खिलाते समय इन्हें बेहतर गुणवत्ता की 'हे' भी जरूर देनी चाहिए, ताकि इनमें जुगाली करने की प्रवृति बनी रहे। पशुओं को पर्याप्त रेशायुक्त आहार न मिलने से वे लकड़ी भी चबाने

लगते हैं। उदर एवं आँतों में गड़बड़ी होने से पशुओं को दर्द रहता है, जो इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। आरम्भ में तो पशु केवल गैर–आहारीय वस्तुएँ खाता है, लेकिन बाद में उपचार न होने के कारण ऐसा करना उसकी आदत बन जाती है। जुगाली करने वाले पशु जैसे गाय और भैंस को विटामिन बी या के की कोई कमी नहीं होती क्योंकि इनका संश्लेषण रुमेन में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवियों द्वारा होता रहता है, परन्तु इन्हें विटामिन ए की आवश्यकता पूर्ति हेतु अपने आहार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। गाय वनस्पति में पाए जाने वाले केरोटीन नामक पदार्थ को अपनी छोटी आंत में पहुँचने पर विटामिन ए में परिवर्तित करने में सक्षम है। विटामिन ए आँखों की दृष्टि के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह कोशिकाओं एवं श्लेष्मा झिल्ली के रखरखाव, हड्डियों के विकास तथा रोग–प्रतिरोध क्षमता बढ़ाने हेतु भी उपयोगी है। विटामिन–ए वसा में घुलनशील होता है तथा पशु अपनी 3 से 4 महीनों की आवश्यकताओं हेतु इसका संग्रहण जिगर में कर सकता है। जिन पशुओं को सर्दियों के मौसम में बढ़िया गुणवत्ता की 'हे' खिलाई जाती है, उन्हें विटामिन–ए की कमी नहीं होती। कुपोषित गायों को विटामिन–ए की पूरक खुराक देना आवश्यक होता है, अन्यथा उनका दैहिक विकास रुक सकता है तथा प्रजनन क्षमता में भी गिरावट होती है। अकाल जैसी परिस्थितियों के अंतर्गत पौधों में केरोटीन की मात्रा कम हो जाती है। अतः, पशुओं को इसकी पर्याप्त आपूर्ति न होने से विटामिन–ए की अल्पता हो सकती है। सर्दियों में हरे चरों में नाइट्रेट की मात्रा अधिक होती है, जो पाचन नली में केरोटीन एवं विटामिन–ए को नष्ट कर देते हैं।

विटामिन–ए की अल्पता के लक्षण

गायों में इसकी कमी होने पर पशु कम आहार खाता है, जिससे दैहिक विकास कम होता है। इनके शरीर के बाल खुरदरे होने लगते हैं। इन्हें रतौंधी के कारण रात के समय कम दिखाई देता है। प्रभावित पशुओं में दैहिक सूजन, दस्त, जकड़न तथा रोग–प्रतिरोध क्षमता में कमी की शिकायत हो सकती है। पशु वीर्य में असामान्य शुक्राणुओं की संख्या बढ़ने लगती है। मादाओं में गर्भधारण करने की दर कम हो जाती है। ग्याभिन पशुओं में गर्भपात अथवा अविकसित बछड़े उत्पन्न हो सकते हैं। विटामिन–ए की कमी से पीड़ित गायों के बछड़े जन्म से ही अंधे हो सकते हैं। अतः, अपर्याप्त हरा चारा एवं बढ़िया 'हे' का पोषण न लेने वाली ग्याभिन गायों को आहार के साथ विटामिन–ए की पूरक खुराक जरुर देनी चाहिए। विटामिन–ए की खुराक इंजेक्शन द्वारा भी दी जा सकती है। यह मुख द्वारा पूरक खुराक देने की तुलना में अधिक प्रभावशाली है। विटामिन–ए का टीका हर महीने दिया जाना चाहिए ताकि पशु अपने जिगर में इसकी आवश्यक मात्रा का संग्रहकर सके।

बछड़ों में अंधेपन की समस्या

आमतौर पर बछड़े और बछड़ियों में अंधेपन की समस्या कम ही देखने को मिलती है, परन्तु इसका पता चलते ही तुरंत उपचार करने की आवश्यकता होती है। अंधेपन के शिकार बछड़े गोलाई में घुमते हुए देखे

जा सकते हैं तथा ये अक्सर किसी भी दीवार या उनके सामने रखी बड़ी वस्तु से टकरा जाते हैं। अगर ऐसे बछड़ों की आँखों के सामने हाथ घुमाया जाए तो ये पलक नहीं झपकाते है, जो इनके अंधेपन का द्योतक है।. अंधे पशुओं को पालना बहुत कठिन होता है क्योंकि वे अच्छी तरह देख न पाने के कारण अपना पेट भरने या पानी पीने में भी असमर्थ होते हैं। इस तरह का अंधापन अक्सर उन गायों के बछड़ों को होता है जिन्हें चारे के रूप में पर्याप्त हरी घास खाने को नहीं मिलती जिससे इनमें विटामिन 'ए' की कमी हो जाती है। हरे चारे में केरोटीन होती है जिससे विटामिन 'ए' का निर्माण होता है। विटामिन 'ए' के कारण ही आँखों में 'रेटिना' उत्तक विकसित होते हैं। विटामिन 'ए' की कमी होने के कारण पशु कम अथवा अधिक रौशनी में अच्छी तरह देख नहीं सकता, जो अंधेपन के आरंभिक लक्ष्ण हैं। कई बार डेयरी फार्म में पड़े हुए पेंट के डिब्बे, 'लेड' बैटरी आदि के कचरे से भी पशुओं के खून में भारी धातु के कण पहुँच जाते हैं, जिनसे इन्हें लकवा अथवा अंधापन हो सकता है। 'लेड' की मात्रा जाँचने हेतु पशु के रक्त नमूनों की जाँच करवानी चाहिए। कुछ पशुओं में 'लेड' की उपस्थिति से बड़ी आँत में जलन भी हो सकती है। अतः, पशुओं को 'लेड' तथा पारे से बने उपकरणों से सदैव दूर रखें।

'बेसिलस' तथा 'क्लोस्ट्रीडियम' नामक सुक्ष्म जीवाणू प्रजातियों में पाए जाने वाले 'थायामिनेज' एंजाइम के कारण रुमेन में विटामिन बी–1के नष्ट होने से इसकी कमी हो जाती है। ऐसा अक्सर 3–6 माह के बछड़ों को अधिक मात्रा में दाना अथवा सान्द्र खिलाने से होता है। अतः, रोग का पता चलते ही इनका तुरंत उपचार करना चाहिए। नवजात बछड़ों को विटामिन–'ए' की खुराक दिलवाएँ तथा आँखों में संक्रमण की जाँच हेतु अपने पशु–चिकित्सक से अविलम्ब संपर्क करें। संक्रमित आँखों को उपयुक्त एंटीबायोटिक दवा की आवश्यकता होती है। यदि इस रोग की पहचान समय पर हो जाए तो इसका सफलतापूर्वक उपचार करना संभव हो सकता है।

जो बछड़े जन्म के समय ही विटामिन–ए की कमी से पीड़ित हों, उन्हें इसकी पूरक खुराक का अधिक लाभ नहीं होता है। आँखों की तंत्रिकाएँ जो विटामिन–'ए' की कमी से नष्ट हो जाती हैं, उनका पुनर्निर्माण संभव नहीं है। जिन बछड़ों में विटामिन–ए की गंभीर कमी न हो, उन्हें इसकी पूरक खुराक दिलवाने या टीका लगवाने का अवश्य ही लाभ हो सकता है। जो पशु विटामिन–'ए' की कमी से पीड़ित हों, उनमें विटामिन–'ई', ताम्बा, जस्ता, मैग्नीज और सेलेनियम की कमी भी हो सकती है। आजकल बड़े डेयरी फार्मों में खनिज एवं विटामिन अल्पता की जाँच लगातार होती है, ताकि इनकी अल्पता के शिकार पशुओं को समय पर उपचार मिल सके। पशुओं को स्वस्थ रखने हेतु विटामिन और खनिजों की बहुत कम मात्रा की ही आवश्यकता पड़ती है, परन्तु, इनकी कमी होने से कई गंभीर रोग हो सकते हैं। गर्भावस्था के अंतिम दौर में विटामिन–'ए' तथा 'ई' की कमी हेतु पशुओं की जाँच करना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

पशुपालक आवश्यक विटामिन एवं खनिजों का अनिवार्य पूरक पोषण देकर न केवल पशुओं को गंभीर रोगों से बचा सकते हैं, बल्कि अपनी डेरी के उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि कर सकते हैं।

बदलते हुए मौसम में डेयरी पशु प्रबंधन

12

विश्वरंजन उपाध्याय, राजू कुमार देवरी, कथन रावल एवं प्रियंका पटोलिया
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या का पोषण करने में कृषि के साथ–साथ हमारे पशुधन का बहुत बड़ा योगदान रहा है, परन्तु निरंतर हो रहे जलवायु परिवर्तन से तापमान में काफी तबदीली हुई है जिससे भारत ही नहीं,दुनिया भर के पशुधन गंभीर रूप से प्रभावित हो रहे हैं। वातावरणीय तापमान में तीव्र परिवर्तन से जानवरों का स्वास्थ्य, प्रजनन, पोषण इत्यादि प्रभावित होता है, जिससे पशु उत्पाद तथा इनकी गुणवत्ता में भी गिरावट होती हैं। अन्य जानवरों की तुलना में संकर डेयरी मवेशी जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील होते है जिनकी संख्या भारत में अधिक है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ते हुए तापमान, अनियमित मानसून, भयंकर ठंड, ओले, तेज हवा आदि जानवरों के स्वास्थ्य, शारीरिक वृद्धि और उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। मौसम में तनाव के कारण डेयरी पशुओं की प्रजनन क्षमता कम हो रही है। परिणामस्वरूप गर्भधारण दर में भी काफी गिरावट हो रही है। जलवायु परिवर्तन प्रतिरक्षा प्रणाली कार्यक्षमता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इससे थनैला रोग, गर्भाशय की सूजन तथा अन्य बीमारियों के जोखिम में वृद्धि हो रही है। भारत में उष्मीय तनाव पशु उत्पादकता को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक है।

पशु उत्पादन पर ऊष्मीय तनाव का प्रभाव

सभी जानवरों की एक निश्चित दैहिक तापमान सीमा होती है जिसे बरकरार रखना उनकी प्राथमिकता होती है। डेयरी गायों में यह वांछित तापमान तभी तक बरकरार रहता है जब तक वातावरण का तापमान 28–30 डिग्री सेल्सियस तक रहता है। इससे अधिक तापमान इनके लिए तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर सकता है। अत्यधिक तापमान पशुओं की रूमेन कार्य–क्षमता को कम करता है जो कई स्वास्थ्य संबंधित बीमारियों का कारण बनता है। बाहरी गर्मी के साथ–साथ उपचय ऊष्मा से भी शारीरिक ताप उत्पन्न होता है। जैसे–जैसे दुग्ध उत्पादन और पशु की खुराक में वृद्धि होती है, वैसे ही उपचय उष्मा की मात्रा बढ़ती जाती है । उष्मीय तनाव के चलते पशुओं की श्वसन दर 10–30 से बढ़कर 30–60 बार प्रति मिनट तक पहुँच जाती है। पशु हाँफने लगते हैं और उनके मुँह से लार गिरती दिखाई देती है। पशुओं के शरीर में बाइकार्बोनेट तथा आयनों की कमी से रक्त की पी.एच.कम हो जाती है। उष्मीय तनाव के दौरान पशुओं के शरीर का तापमान 102.5 डिग्री से 103 डिग्री फाहरेनहाइट तक बढ़ जाता है। इन परिस्थितियों में गाय अपने शरीर के तापमान को सामान्य अवस्था में बनाए रखने हेतु खानपान में कमी लाती है जिसके फलस्वरूप दूध उत्पादन, दुग्ध–वसा, प्रजनन क्षमता एवं प्रतिरक्षा प्रणाली में कमी आती है। उष्मीय तनाव स्तन ग्रंथियों के विकास को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इसका प्रभाव आगामी दुग्धावस्था में दिखाई देता है। उष्मीय तनाव से प्रभावित गायों को मदकाल प्रदर्शन करने में भी कठिनाई होती है। उष्मीय तनाव के दौरान मदकाल की अवधि छोटी हो जाती है तथा प्रजनन हॉर्मोन के स्राव में असंतुलन, मुख्यतः इस्ट्रोजन हॉर्मोन (जो मद के व्यवहार को प्रभावित करता है) की मात्रा कम हो जाती है। उच्च तापमान वाले वातावरण में गायों के मदकाल अकसर मूक ही रहते हैं और अमदकाल की घटनाएं बढ़ जाती हैं। यदि मद का पता लग भी जाए तो शरीर का तापमान अधिक होने के कारण कई बार पशु गर्भधारण नहीं कर पाता। उष्मीय तनाव बढ़ने से निषेचन क्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जो भ्रूण को क्षति भी पहुँचा सकता है तथा पैदा हुए बछड़े का दैहिक भार सामान्य ताप पर जन्म लेने वाले बछड़ों से कम पाया गया है।

उष्मीय तनाव से बचाव

गर्मियों के मौसम में गायों के बेहतर स्वास्थ्य एवं उत्पादन स्तर को स्थिर रखने के लिए उनकी विशेष देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। पशु के परिवेश के तापमान को कम करके उष्मागत तनाव को कम किया जा सकता है। पशुओं हेतु प्राकृतिक व कृत्रिम छाया का प्रावधान सबसे किफायती तरीकों में से एक है। अच्छी तरह डिजाइन किए गए पशु शेड द्वारा गर्मी के प्रभाव को 30–50% तक कम किया जा सकता है। शेड को पराली से अच्छी तरह ढक देना चाहिए ताकि वातावरण की उष्णता नीचे खड़े पशुओं तक कम से कम ही पहुँचे। हमें अपने पशुओं के लिए छायादार शेड का निर्माण करना चाहिए जिसकी छत की ऊंचाई 12 से 14 फीट तक हो। शेड की बनावट पूर्व पश्चिम वाली स्थिति में होनी चाहिए ताकि मई जून के महीने में कम से कम धूप ही अन्दर आए तथा दिसंबर के महीने में पशु को कुछ अधिक धूप मिल पाए। इसके अतिरिक्त पशु को आराम देने हेतु अन्य तरीकों का इस्तेमाल भी आवश्यक है जैसे फव्वारे, कूलर, मिस्ट पंखे, पानी के टैंक तथा नहलाने आदि की व्यवस्था। पशुशाला में गर्म हवाओं से बचाव के लिए उपलब्ध सामान जैसे जूट या बोरी के पर्दों का उपयोग किया जा सकता है। पशु के आंतरिक वातावरण को संतुलित बनाए रखना भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। लिहाजा हमें पशु के शरीर में आयन तथा अम्ल व क्षार का संतुलन बनाए रखना चाहिए। यह संतुलन बनाए रखने के लिए हमें नियमित रूप से पशु को यथासंभव रेशायुक्त आहार देना चाहिए ताकि अधिक मात्रा में लार स्रावित हो सके। इसके अतिरिक्त प्रतिरोधक घोल या बफर का इस्तेमाल करना चाहिए। पशुओं को खनिज तत्व जैसे सोडियम 5% तथा पोटेशियम 1.25 से 1.5% भी आहार के साथ खिला सकते हैं। गर्मियों में हरे चारे की पैदावार कम हो जाती है, जिसकी कमी पूरा करने के लिए सूखा भूसा भिगोकर तथा उसमें दाना व मिनरल मिश्रण मिलाकर देना चाहिए। दाने की मात्रा सकल शुष्क पदार्थ ग्राह्यता के 55–60 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। गर्मियों में पशुओं की ऊर्जा आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए अधिक ऊर्जायुक्त आहार खिलाने चाहिए जो आतंरिक उपचय ऊष्मा को नहीं बढ़ाते हैं। इसके लिए अधिक वसा–युक्त आहार (6% तक ही) दें। ऐसे आहार खिलाने से शारीरिक तापमान में कोई वृद्धि नहीं होती और श्वसन दर भी सामान्य बना रहता है। गर्मियों में पशुओं के लिए हर समय ताजा व स्वच्छ पानी उपलब्ध होना चाहिए। प्रायः ऐसा देखा गया है कि यदि तापमान 30–35 सेल्सियस तक बढ़ता है तो दुधारू पशुओं में पानी की आवश्यकता 50% से अधिक बढ़ जाती है।

पशु उत्पादन पर सर्द मौसम का प्रभाव

डेयरी गायों से पूर्ण उत्पादकता प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक है की ये स्वस्थ एवं आरामदायक परिस्थितियों में निवास करें। प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियाँ जैसे भयंकर ठंड, ओले, तेज हवा, सर्दी में भीगना आदि पशुओं में तनाव की स्थिति उत्पन्न करता है। कम वातावरणीय तापमान में तेजी से चलने वाली हवा पशुओं के लिए अत्यंत कष्टदायी होती है जो स्वास्थ्य, शारीरिक वृद्धि और उत्पादकता को प्रभावित करता है।जब सर्दियों में तापमान में गिरावट शुरू होती है या जब हमारे पशु 5 डिग्री सेल्सियस के नीचे के तापमान पर पहुँचते हैं, तो गाय की उत्पादकता और दक्षता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ''थर्मोन्यूट्रल जोन'' के निम्न सिरे पर, शरीर के मुख्य तापमान को बनाए रखना दुधारू पशुओं के लिए एक बड़ी चुनौती हो सकती है, इसके लिए सामान्य उपचय प्रक्रिया के दौरान शरीर की गर्मी की आपूर्ति हेतु पशु को अपनी उपचय दर बढ़ानी पड़ती है। यह अधिक ऊर्जा के लिए पशु की आहार आवश्यकताओं को बढ़ाता है। शरीर के वजन को स्थिर रखने और उत्पादन की मांग के लिए अधिक ऊर्जा की जरुरत होती है (अत्यधिक ठंड के दौरान 40% तक) जो अतिरिक्त अनाज सेवन के लिए एक आवश्यकता पैदा करती हैं। अतः फीड सेवन में कोई भी रुकावट शरीर की स्थिति के साथ पशु उत्पादन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती है। यह सुनिश्चित करें कि गायों के पास पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध हो। पानी सीमित करने से आहार ग्राह्यता सीमित हो जाएगी और गायों को अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करना मुश्किल हो जाएगा। बेहतर डेरी प्रबंधन हेतु हम

इन तनावों को नजर अंदाज नहीं कर सकते तथा इसके निवारण हेतु निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं।

- पशुओं को पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार एवं अतिरिक्त चारा प्रदान करें।
- फफूंदीयुक्त भोजन से बचें।
- अधिक घास और अनाज खिलाएं, यदि गीले फीड खिलाए जाते हैं, तो यह सुनिश्चित करें कि वे जमे हुए न हों।
- पर्याप्त मात्रा में स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करें।
- पशुओं हेतु अच्छी तरह डिजाइन किए गए पशु शेड का निर्माण करवाएँ।
- मोटोराइजड तकनीक द्वारा शेड की छत की ऊँचाई को ऋतु अनुसार नियंत्रित किया जा सकता है।
- दूध दुहने हेतु एक ही समय निश्चित करें।
- गायों का धूप में घूमना–फिरना जरूर करवाएँ।
- गायों के शेड को साफ और सूखा रखें।
- पशुओं को पर्याप्त आराम व चारा चरने का समय दें।
- मिनरल मिश्रण तथा वसा–युक्त आहार खिलाएँ।
- आवश्यकता पड़ने पर पशुचिकित्सक से परामर्श अवश्य लें।

निष्कर्ष

भविष्य में जलवायु परिवर्तन तेजी से होने की संभावना है, जो हमारी खाद्य सुरक्षा की समस्या तथा पशुधन आधारित उत्पादों की मांग में वृद्धि कर सकता है । इस मांग को पूरा करने हेतु, हमें अपने जानवरों को उष्मीय तनाव के प्रतिकूल प्रभाव से बचाना होगा और अपनी स्थानीय नस्लों को भी संरक्षित करना होगा। कम उत्पादन क्षमता वाली गायों की तुलना में अधिक दूध उत्पादन करने वाली गायों पर उष्मीय तनाव का प्रभाव अधिक पड़ता है अतः उनके खान–पान और रखरखाव पर अधिक ध्यान देना चाहिए। हम मौसम को तो नियंत्रित नहीं कर सकते लेकिन गायों पर मौसम के प्रभाव को कम करने हेतु हर संभव प्रयास किए जा सकते हैं।

13 रिजका की वैज्ञानिक खेती

अक्षय गलोत्रा, प्रमोद कुमार तिवारी, मगन सिंह एवं राजेश कुमार मीणा
भा.कृ.अनु.प. राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

रिजका शुष्क जलवायु क्षेत्रों के लिए एक महत्वपूर्ण हरें चारे वाली फसल है। इसमें सूखे को सहने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है। इसलिए इसे शुष्क जलवायु में भी आसानी से उगाया जा सकता है। कम लागत में अच्छी पैदावार देने के कारण इसे शुष्क क्षेत्रों के किसानों के लिए वरदान माना जाता है। हरे चारे में सामान्यतः 15–18 प्रतिशत प्रोटीन, 1.5 प्रतिशत कैल्शियम, 0.2 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा विटामिन ए, बी, डी, प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इस फसल में एक वर्षीय एवं बहुवर्षीय दोनों प्रकार की किस्में पाई जाती है। इन्ही लाभदायक गुणों के कारण इसे "चारा फसलों की रानी" भी कहा जाता है।

भारत में क्षेत्रफल और विस्तार: भारत में रिजका का क्षेत्रफल लगभग 10 लाख हेक्टेयर है, जो मुख्यतः राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश ,गुजरात, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में पाया जाता है।

मृदा एवं जलवायु: रिजके की खेती को विभिन्न प्रकार की मृदाओ में उत्पादित किया जा सकता है, परन्तु

उन्नत किस्में : इस फसल की उन्नत किस्में इस प्रकार से है।

क्रमांक	किस्म का नाम	अनुशंसा क्षेत्र	अनुमानित हरे चारे की पैदावार(टन/हेक्टेयर)
1.	सिरसा 8	उत्तरी भारत	80–85
2.	आनन्द 2	गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान	80–100
3.	आनन्द 3	पहाड़ी क्षेत्रों के लिए	60–65
4.	आनन्द लूसर्न 3	गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान	90–100
5.	आनन्द लूसर्न 4	गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान	80–90
6.	एल.एल.कम्पोजिट 5	पंजाब, हरियाणा, राजस्थान	70–80
7.	को. 1	तमिलनाडु, कर्नाटक	80–90
8.	आर.एल. 88	सभी क्षेत्रों के लिए	70–80
9.	चेतक (एस. 244)	मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश	140–150
10.	एन.डी.आर.आई. सेलेक्शन 1	उत्तरी क्षेत्रों के लिए	90–100
11.	को. 2	तमिलनाडु. कर्नाटक	85–90
12.	सिरसा टाइप 9	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश	80–85

महत्वपूर्ण सस्य प्रणाली: भारत में लूसर्न की खेती शीतकालीन ऋतु में होती है। इस फसल का अधिक उत्पादन लेने के लिए महत्वपूर्ण सस्य प्रणाली इस प्रकार से है।

फसल चक्र: बाजरा–लूसर्न, मक्का–लूसर्न, चावल–लूसर्न, ज्वार–लूसर्न, सोयाबीन–लूसर्न
लोबिया+मक्का–लूसर्न

अच्छे निकास वाले रेतीली दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। क्षारीय मृदा इसके लिए उपयुक्त नहीं रहती है, पर अम्लीय मृदा पर चूने (लाइम) के प्रयोग द्वारा इसे सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। अच्छी बढ़वार के लिए 20–25 डिग्री तापमान उपयुक्त रहता है।

खेत की तैयारीः पलेवा करने के बाद मिट्टी पलटने वाले हल से एक बार जुताई करनी चाहिए। इसके उपरांत दो बार देशी या कंट्री हल से जुताई करें। जमीन को समतल बनाने के लिए सुहागा अवश्य लगाये। अच्छे अंकुरण के लिए मिट्टी का भुरभुरा होना अति आवश्यक है।

बीज दर एवं बिजाईः छिटकाव विधि द्वारा 20–25 किलो बीज प्रति हेक्टेयर उपयुक्त है। इसका बीज बहुत ही छोटा होता है,इसलिए अधिक गहराई पर बीज का अंकुरण नही हो पाता है। बीज की गहराई 1.5 सेंटीमीटर से अधिक नही होनी चाहिए। भारी मिट्टी में मेंढ़ पर छिडकाव किया जाना चाहिए। बिजाई का उपयुक्त समय अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा है। इसके पश्चात् बिजाई करने से पैदावार में कमी आती है।

खाद एवं उर्वरकः लेग्युमिनोसी (दलहनी) कुल का पौधा होने के कारण यह वायुमंडलीय नत्रजन को स्थिरीकरण करने में सक्षम है। इसके लिए बीजो को राइजोबियम मेलिलोटी प्रजाति द्वारा उपचारित करना चाहिए। आखिरी जुताई के समय 20 किलो नत्रजन, 60–75 किलो फॉस्फोरस और 40 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर मिट्टी में अच्छी तरह से मिला दें।

अच्छी प्रकार से सड़ी गोबर की खाद का प्रयोग (20 टन प्रति हेक्टेयर) करना फसल के लिए लाभदायक रहता है। रेतीली मिट्टी में बोरोन की कमी पाई जाती है जिसके कारण "लूसर्न येलो" नामक विकार देखा जा सकता है, जिसके कारण पत्तियां पीली पड़ जाती है। इसके बचाव के लिए 0.2 प्रतिशत बोरेक्स का छिडकाव अनुमोदित है। नत्रजन स्थिरीकरण को बढ़ाने के लिए मोलिब्डेनम 2 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करें।

जल प्रबंधनः अच्छे अंकुरण के लिए पलेवा करना आवश्यक है। रिजके को स्थापित होने में समय लगता है। इसलिए शुरुआती दिनों में सिंचाई का होना अति आवश्यक है। शुरुआत के दिनों में सिंचाई का अंतराल 7–10 दिन होना चाहिए। जड़ विकसित होने के बाद इस अंतराल को 15–20 दिन कर देना चाहिए। एक किलो सुखा चारा पैदा करने के लिए लगभग 850–900 लीटर पानी की आवश्कता होती है।

खरपतवार नियंत्रणः अमरबेल इस फसल का मुख्य परजीवी खरपतवार है। इसके बचाव के लिए परजीवी रहित बीज की बुवाई करें। फसल चक्र को बढ़ावा दें। पूर्णतः सड़ी खाद का प्रयोग करें। ग्रीष्मकालीन ऋतु के दौरान गहरी जुताई अवश्य करें। खेत को साफ रखें तथा इसके रासायनिक नियंत्रण के हेतु पेंडीमैथलीन (1–1.5 किलो)(बिजाई के बाद या जमाव से पहले) या प्रोनामाइड 2 किलो प्रति हेक्टेयर 20 दिन बाद

छिड़काव करें। जैव खरपतवारनाश कोलेटोट्राईकम ग्लोईस्पोरोयीडस का प्रयोग भी अमरबेल को नियंत्रित करने के लिए किया जा सकता है।

रोग प्रबंधनः रतुआः यह रिजके का एक सामान्य रोग है। छोटे भूरे रंग के धब्बे पत्तियों पर देखने को मिलते है। पैदावार में कमी देखने को मिलती है। इसके रोकथाम के लिए फोलीक्योर 1–2 मिली /लीटर पानी या डाईथेन एम 45 के 0.25 प्रतिशत घोल का बीमारी दिखने पर छिड़काव करें।

कटाईः पहली कटाई बुवाई के 50–55 दिन उपरांत करें। अन्य कटाईयाँ पहली कटाई के 25–35 दिन उपरांत करें। एक वर्ष में 7–8 कटाईयाँ ली जा सकती है। सामान्यतः एक हेक्टेयर से 70–80 टन हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

बीज उत्पादनः पश्चिमी एवं दक्षिणी मध्य भारत बीज उत्पादन के लिए उपयुक्त है। बीज उत्पादन के लिए अंतिम कटाई जनवरी में लें। फूलों के पूर्णतः खुल जाने पर सिंचाई रोक देनी चाहिए। बीज उत्पादन हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50 सेंटीमीटर होनी चहिये। 0.5 प्रतिशत बोरेक्स का स्प्रे बीज उत्पादन के लिए लाभदायक रहता है। फलियों के सूख जाने पर बीज के लिए कटाई करें। इससे सामान्यतः 200–300 किलो प्रति हेक्टेयर बीज प्राप्त किया जा सकता है।

सरदार वल्लभ भाई पटेल

प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्रभाषा का विकास करे। हिंदी का प्रसार सागर की तरह विशाल होना चाहिए, जिसमें भारत की भाषा भी अपना सही स्थान बना सकें। राष्ट्रभाषा किसी प्रांत, किसी समुदाय तक सीमित नहीं होती।

कृषि-कोष : भारतीय राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली की एक संस्थागत डिजिटल रिपॉजिटरी

14

नरेंद्र सिंह रोहिला, बी. पी. सिंह, लक्ष्मण, दीन दयाल, वीनू, सुबिना एवं एस. एम. देब
राष्ट्रीय डेरी विज्ञान पुस्तकालय, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्रस्तावना

भारत एक कृषि आधारित देश है और खेती करना यहाँ का मुख्य कार्य भी है। किसानों को खेती में पारंगत करने तथा उनको पारम्परिक खेती से उन्नत खेती की ओर ले जाने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान की स्थापना 16 जुलाई, 1929 को की गई थी। यह एक विश्व की विशालतम राष्ट्रीय कृषि पर आधारित सिस्टम है जो कृषि अनुसंधान, शिक्षा तथा विस्तार के लिए कार्य कर रहा है। आज लगभग 101 भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के रिसर्च इंस्टिट्यूट तथा 71 कृषि विश्वविद्यालय के साथ भारत वर्ष को अपनी सेवाएं प्रदान कर रहा है, जिसको हम नेशनल एग्रीकल्चरल रिसर्च सिस्टम (नार्स) के नाम से पुकारते हैं। नार्स के वैज्ञानिकों द्वारा कृषि के विभिन्न पहलुओं जैसे एग्रीकल्चर, हॉर्टिकल्चर, पशुपालन, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन, भूमि संरक्षण, फल और फसल संरक्षण आदि पर विभिन्न शोध किये गए हैं एवं किये जा रहे हैं। वैज्ञानिक उन शोधों तथा उनके परिणामों को विस्तार रूप देने के लिए विभिन्न माध्यम का इस्तेमाल करतें है जैसे जर्नल, पुस्तकें, संगोष्ठी प्रोसीडिंग्स, पेटेंट्स, थीसिस आदि। यह सभी शोध भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के विभिन्न संस्थानों में तथा कृषि विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों मे विभिन्न माध्यमों में प्रकाशित होने के पश्चात संरक्षित है परंतु जिसकी पहुंच बहुत सीमित लोगों तक ही है। इसके कारण इस ज्ञान के लाभ भी सीमित ही रह जाते हैं। अतः भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा यह फैसला लिया गया की नार्स सिस्टम के सभी पुस्तकालयों को एक नेटवर्क के तहत जोड़ा जाये जिससे सभी पुस्तकालयों के सोर्सेज एक प्लेटफार्म के द्वारा एक्सेस किया जा सके। इसके लिए यह आवश्यक था की पुस्तकालयों के रीडिंग मैटेरियल्स को डिजिटाइज किया जाये। एन. ए. आई. पी. के प्रोजेक्ट ई–ग्रन्थ मे डिजिटाइजेसशन कार्य को शुरू किया गया था। इसके तहत कृषिकोष का जन्म हुआ, जो की नार्स सिस्टम के विभिन्न संस्थानों की डिजिटल रिपॉजिटरी है।

कृषिकोष– कृषि और संबद्ध विज्ञानों में संचित ज्ञान का एक डिजिटल भंडार ही कृषिकोष है, जिसमें पुरानी और मूल्यवान पुस्तकों, पुरानी पत्रिकाओं, थीसिस, शोध लेख, लोकप्रिय लेख, मोनोग्राफ, कैटलॉग, सम्मेलन की कार्यवाही, सफलता की कहानियां, केस स्टडी, वार्षिक रिपोर्ट, समाचार पत्र का संग्रह है जो आई. सी. ए. आर. के विभिन्न संस्थानों तथा कृषि विश्वविद्यालयों मे फैला हुआ था। आज एक क्लिक पर किसान, वैज्ञानिक, रिसर्च स्कॉलर्स आदि नार्स सिस्टम के ज्ञान के भंडार को 24 घंटे कहीं भी प्राप्त कर सकता है।

आई.सी.ए.आर. ओपन एक्सेस पॉलिसी–आई.सी.ए. आर. ओपन एक्सेस पॉलिसी के तहत यह आवश्यक है, कि संस्थान की सभी पब्लिकेशन्स कृषिकोष प्लेटफार्म पर अपलोड करना होता है जैसे कि रिसर्च आर्टिकल्स, पॉपुलर आर्टिकल्स, मोनोग्राफ्स, कांफ्रेंस प्रोसीडिंग्स, न्यूज लेटर, वार्षिक रिपोर्ट्स आदि। इसके अतिरिक्त एम. एस. सी तथा पी. एच. डी की थीसिस भी कृषिकोष मे अपलोड करना आवश्यक है ताकि सभी आई.सी.ए.आर. संस्थान तथा कृषि विश्वविद्यालय एक नेटवर्क में जुड़कर ज्ञान का आदान प्रदान ऑनलाइन कर सकें।

कृषिकोष व्यवस्था–वर्तमान मे लगभग 103 संस्थान कृषिकोष मे पंजीकृत हैं। वर्तमान मे कृषिकोष पर लगभग 2 लाख डाक्यूमेंट्स अपलोडेड हैं उनमे विभिन्न डाक्यूमेंट्स इस प्रकार से हैं।

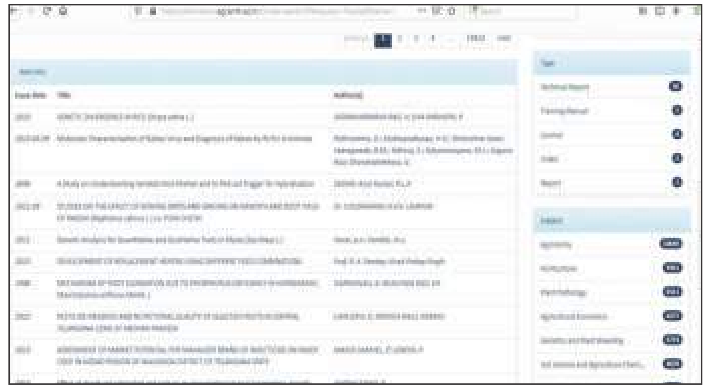

क्रम सं.	कलेक्शन टाइप	संख्या
1	थीसिस	1,48,103
2	जरनल	17,686
3	आर्टिकल्स	13387
4	वार्षिक रिपोर्टस	2239
5	रीप्रिंट्स	692
6	कांफ्रेंस प्रोसीडिंग्स	474

क्रम सं.	विषय अनुसार	संख्या
1	एग्रोनोमी	10699
2	हॉर्टीकल्चर	9443
3	पशु आहार	2691
4	पशु चिकित्सा	2101
5	पशु पैथोलॉजी	1929
6	पशु आनुवंशिकी और प्रजनन	1703

कृषिकोष की मुख्य विशेषताएं–

- कृषिकोष एक सभी पंजीकृत संस्थानों का केंद्रीय डिजिटल रिपॉजिटरी है।
- सभी पंजीकृत संस्थान कृषिकोष में अपने संस्थान के मूल्यवान डॉक्यूमेंट्स का अपने लॉगिन द्वारा इसमें भण्डारण कर सकते है।
- सभी पंजीकृत संस्थानों का अपना पूरा कण्ट्रोल इंस्टीटूशनल रिपॉजिटरी पर होता है।
- किसी भी तरह का रखरखाव संस्थान को अपने लेवल पर करने की कोई आवश्कता नहीं होती है।
- कृषिकोष एक ओपन एक्सेस इंस्टीटूशनल रिपॉजिटरी है।
- कृषिकोष में सर्च करना बहुत आसान है जैसे विषयानुसार, लेखक के नाम के द्वारा, संस्थान के नाम के द्वारा, कीवर्ड्स के द्वारा आदि।
- कृषिकोष में पुश नोटिफिकेशन, डाक्यूमेंट्स को ट्रेक करना और सर्च करना इसको सरल बना देता है।
- कृषिकोष को मोबाइल पर भी डाउनलोड किया जा सकता है जो इसको एक्सेस करना और सरल बना देता है।

उपसंहार–वर्तमान समय सूचना क्रांति का समय है। प्रत्येक व्यक्ति आज स्पेसफिक सूचना बिना समय गवायें प्राप्त करना चाहता है। अतः आज के समय मे इस प्रकार का ओपन एक्सेस प्लेटफार्म का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है जिसके द्वारा कृषि सम्बंधित सूचनाओं को प्राप्त किया जा सकता हो। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद का यह कदम वास्तव मे सराहनीय है।

भैंसों की मुख्य नस्लें

15

सतीश कुमार राठी, अर्चना वर्मा, विकास वोहरा, सब्यसाची मुखर्जी, अनुपमा मुखर्जी, रानी एलैक्स, गोपाल गोवने, ईश्वर दयाल गुप्ता एवं सितांगसु मोहन देब

पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत एक कृषि प्रधान देश है। पशुधन कृषि का अभिन्न अंग है। दीर्घ, मध्यम व सीमांत किसान खेती करने के साथ–साथ पशुधन भी पालते है। भूमिहीन मजदूर, मजदूरी करने के साथ–साथ पशुधन पालन पर ही निर्भर है। विभिन्न पशुधन के अन्तर्गत भैंस मुख्यतः दूध के लिए पाली जाती है। भारत में वर्ष 2016–17 में कुल दूध उत्पादन 16 करोड़, 54 लाख टन था, जो वर्ष 2017–18 में बढ़कर 17 करोड़, 40 लाख टन हो गया है। कृषि उत्पादन मूल्य का 18 प्रतिशत व पशुधन उत्पाद मूल्य का 65 प्रतिशत अकेले दूध से ही मिलता है। कुल दूध उत्पादन का 49 प्रतिशत भैंसों से प्राप्त होता है। भैंसों के कुल दूध उत्पादन का 35 प्रतिशत शुद्ध देसी भैंसों की नस्लों से व 14 प्रतिशत अवर्णित भैंसों से मिलता है। चुंकि कुल दूध उत्पादन का 49 प्रतिशत हिस्सा भैंसों से ही प्राप्त होता है, साथ ही भैंस के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा वसा (घी) ज्यादा होता है तथा नर भैंसें (झोटे) बुग्गी से बोझा ढ़ोने व जुताई करने के काम आते है। अतः पशुधन के अन्तर्गत भैंसों का विशेष योगदान है।

आनुवंशिक तौर पर भारत में दो प्रकार की भैंसें पायी जाती है। एक वह जो नदी (रिवर) या तालाब में तैरना पसंद करती है इन्हें रिवेराइन भैंसों से जाना जाता है और दूसरी वह जो कीचड़ (स्वाम्प) में लेटना पसन्द करती है इन्हें स्वाम्प भैंस के नाम से जाता है। विभिन्न जलवायु, मिट्टी, पूर्व प्राकृतिक सीमाओं व प्राकृतिक प्रजनन के कारण हमारे देश में रिवेराइन वर्ग की विभिन्न नस्ल है और अभी तक 16 नस्लें पंजीकृत हो चुकी है जो इस प्रकार है। मुर्रा, नीली रावी, भदावरी, सुरती, नागपुरी, जाफराबादी, मेहसाना, टोडा, बन्नी, चिल्का, पंडरपुरी, कालाहांडी, मराठवाडा, बरगुर, छत्तीसगढ़ी व लुइत। इन नस्लों में लुइत स्वाम्प भैंस है, जब कि और सभी रिवेराइन भैंस है। भैंसों की कुछ नस्लों का वर्णन संक्षेप में नीचे दिया गया है।

मुर्राः–मुर्रा भैंसों की सर्वोत्तम डेरी नस्ल है। इस कारण ही इस नस्ल के नर को अवर्णित व अन्य भैंसों में आनुवंशिक सुधार के लिए अधिकतर प्रयोग किया गया है। यह नस्ल उत्तर से दक्षिण, व पूर्व से पश्चिम लगभग सभी राज्यों में बढ़ रही है। कई देशों द्वारा भी इस नस्ल को हमारे देश से निर्यात किया गया है और उन देशों में भी यह डेरी उत्पाद के मुख्य केन्द्र के रूप में है। इस नस्ल की मुख्य पहचान यह है कि इसके सींग बहुत छोटे, व सिर के पास से ही तुरन्त कसकर घुमावदार होते है व रंग गहरा काला होता है। इस नस्ल के पशुओं की गर्दन व सिर लम्बा, अयन व थन पूर्णतया विकसित होते है। पिछला हिस्सा चौड़ा होता है (अर्थात हीप की दोनो हड्डी की दूरी काफी होती है)। पूंछ टखने तक लम्बी एवं पूंछ के आखरी हिस्से (झाब्बा, गुलला, आदि) में सफेद बाल भी हो सकते है।

मुर्रा नस्ल का प्रजनन क्षेत्र हरियाणा राज्य के रोहतक, जींद, हिसार, गुड़गांव जिले, पंजाब का नाभा जिला, पश्चिमी उतर प्रदेश के बागपत, मेरठ, मुज्जफरनगर जिले व दिल्ली राज्य के दक्षिणी भाग है। इस नस्ल के नर (झोटे) ज्यादा शक्तिशाली होते है, और बुग्गी से बोझा ढ़ोने व हल खीचनें के काम आते है।

नीली रावीः–इस नस्ल का नाम रावी नदी के नाम पर पड़ा है। इस नस्ल के पशुओं की आँखें नीली होती है इसलिए भी इसका नाम रावी नदी व नीली आँखों के कारण नीली रावी के नाम पर पड़ा है। यह भी माना जाता है कि रावी नदी का पानी साफ, सुथरा होने के कारण बहुत हल्का नीला दिखाई देता है अतः रावी नदी को नीली रावी के नाम से भी जाना जा सकता है और इस नस्ल का नाम नीली रावी के नाम पर हो सकता

है। इस नस्ल के सींग छोटे (लेकिन मुर्रा से उपेक्षाकृत थोड़े बड़े), सिर के ऊपर माथे की ओर घुमावदार होते है व रंग काला होता है। सिर, माथे, टांगे, मजल (ऊपर के होठ), व पूंछ में सफेद धब्बे या निशान होने के कारण इसे पंच कल्यानी के नाम से भी पुकारा जाता है। गर्दन लम्बी व पतली होती है। इस नस्ल का प्रजनन क्षेत्र पंजाब का फिरोजपुर जिला, अमृतसर की खेमकरण तहसील, व गुरदासपुर जिला है।

भदावरीः—इस नस्ल का नाम उत्तर प्रदेश के आगरा जिले के भदावर तहसील के नाम पर पड़ा है। इस नस्ल के पशु तांबे के हल्के रंग के होते है। यह मध्यम आकार की भैंस है। सिर व टांगे अपेक्षाकृत छोटे, पूंछ लम्बी, पतली और लचीली होती है। माथा छोटा व उभरा हुआ होता है। इस नस्ल के भैंसों के दूध में वसा (घी) 6—12.5 प्रतिशत तक होता है। अतः इस नस्ल की भैंसों को उच्च वसा (घी) व नर को उच्च गर्मी सहिष्णुता के लिए भी जाना है। इस नस्ल के पशु उत्तर प्रदेश राज्य के आगरा, इटावा जिले व मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले में पाए जाते है।

सुरतीः—इस नस्ल का नाम गुजरात के सुरत जिले के नाम पर पड़ा है। इस नस्ल के सींग दंराती के आकार के होते है अर्थात सिर से कमर की तरफ सीधे थोड़े से लम्बे होकर बाद में धुम जाते है। पशुओं का रंग (जंग लगे जैसा हल्का भूरा होता है। शरीर मध्यम आकार का होता है। सिर लम्बा व आंखे मोटी होती है। गर्दन के नीचे दो सफेद पटटी मिलती है। सुरती नस्ल का प्रजनन क्षेत्र गुजरात राज्य के खेड़ा, बड़ौदा, भडौच व सुरत जिला है।

नागपुरीः—इस नस्ल का नाम महाराष्ट्र राज्य के नागपुर जिले के नाम पर पड़ा है। इस नस्ल की विशेष पहचान इसके तलवार जैसे सींग है अर्थात् सींग काफी लम्बे, सपाट व हल्के घुमावदार होते है और सिर से कमर की ओर कंधे से आगे तक चले जाते है। पशुओं का रंग काला है। मुंह लम्बा व पतला होता है। इस नस्ल को एलिचपुरी या बरारी भी कहा जाता है। इस नस्ल का प्रजनन क्षेत्र महाराष्ट्र राज्य के नागपुर, अकोला व अमरावती जिले है।

जाफराबादीः—इस नस्ल के पशुओं का सिर व गर्दन मासंल होती है। माथा काफी उभरा हुआ होता है। गर्दन के नीचे की झालर ढ़ीली व लटकी होती है, सींग भारी व सिर से गर्दन के नीचे की ओर गिरकर मुड़ जाते है। पशुओं का रंग काला होता है। थन पूर्णतया विकसित होते है। इस नस्ल का प्रजनन क्षेत्र गुजरात राज्य के जूनागढ़, जामनगर व कच्छ जिले है। इस नस्ल के पशुओं को मालधारी किसान परम्परागत प्रजनन से अनुरक्षित रखते है। इसके नर भारी होते है और जुताई के काम आते है।

मेहसानाः—इस नस्ल का नाम उत्तरी गुजरात के मेहसाना कस्बे के नाम पर पड़ा है। नस्ल के पशुओं के सींग नीली रावी की तरह है। इस नस्ल का सिर व शरीर लम्बा तथा शरीर और खुर का रंग काला होता है। माथा चौड़ा लेकिन मध्यम में थोड़ा सा गहरा होता है। इस नस्ल का प्रजनन क्षेत्र गुजरात के मेहसाना कस्बा, व बनसकांथा व साबरकांथा जिले है।

पंडरपुरीः—इस नस्ल का नाम महाराष्ट्र के पंडरपुर क्षेत्र के नाम पर पड़ा है। इस नस्ल के सींग काफी लम्बे होकर गोलाई में घुम जाते है और पुटठे की हड्डी तक चले जाते है। ये मध्यम आकार के पशु होते है चेहरा लम्बा व पतला होता है लेकिन गर्दन मोटी होती है। यह नस्ल उत्पादन व प्रजनन के लिए अच्छी होती है। इस नस्ल का प्रजनन क्षेत्र महाराष्ट्र के सोलापुर, कोल्हापुर, सगंली व सतारा जिले है।

मराठवाड़ीः—इस नस्ल का नाम महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र पर पड़ा है। ये मध्यम आकार की भैंस होती है इस नस्ल के सींग भी बड़े होते है लेकिन सिर से कंधे की तरफ हल्की गोलाई में घूमते हुए कंधे के ऊपर की ओर चले जाते है। भैंसों का दुध उत्पादन नागपुरी भैंसों की अपेक्षाकृत कम होता है।

बन्नीः—इस नस्ल का नाम गुजरात के बन्नी क्षेत्र के नाम पर पड़ा है। पशुओं का रंग काला होता है। इस

नस्ल को भी डेयरी नस्लों के अन्तर्गत रखा गया है। भैंस की प्रथम ब्यांत पर उम्र 40 माह और ब्यांत अन्तराल 15 महीने है। प्रथम ब्यांत का औसत दूध उत्पादन 2300 कि.ग्रा. रिकार्ड किया गया है। दूध में घी (वसा) 6.6 प्रतिशत होता है।

टोडाः—इस नस्ल का नाम तमिलनाडु की नीलगिरी पहाड़ियों पर बसने वाली प्राचीन जनजाति टोडा के नाम पर पड़ा है। इस नस्ल के पशुओं का रंग सलेटी (राख) जैसा होता है व बाल मोटे होते है। पशु स्वभाव से उग्र होते है। यह नस्ल नीलगिरी के पठार में उच्च वर्षा व उच्च आर्द्रता के अनुकुलित है। यह अभी अर्ध जंगली रूप में जंगल में चरती है। पशुओं का सिर भारी होता है और सींग माथे से ऊपर की और काफी चौड़ाई में फैले होते है और माथे से ही गोलाई में घुमने लगते है। पशुओं का शरीर लम्बा छाती चौड़ी होती है। ये भैंसें अच्छा दूध देती है। टोडा जनजाति के लोग इन भैंसों का शादी—विवाह में लेन—देन करते है।

विभिन्न नस्लों के उत्पादन गुणों को निम्नलिखित तालिका में दिखाया गया है

तालिका—1 विभिन्न भैंसों के उत्पादन गुणों का औसत प्रदर्शन

नस्ल	305 दिन या उससे कम दिनों का दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	पहली बार ब्याने पर उम्र (महीने)	दुध उत्पादन अवधि (दिन)	ब्यांत अन्तराल (दिन)
मुर्रा	2000	44.0	300	453
नीली रावी	1950	45.3	300	487
जाफराबादी	1850	50.7	300	440
मेहसाना	1700	42.2	310	476
पंडरपुरी	1400	44.8	350	465
सुरती	1400	56.4	90	535
नागपुरी	1200	55.8	270	430
भदावरी	1100	50.0	270	478
मराठवाड़ी	1000	55.7	300	435
टोडा	700	47.0	250	480
बन्नी	2000	40	270	455

16 पशुओं को जड़ीबूटीय मिश्रण खिलाएँ और अधिक लाभ कमायें

अनुप कुमार सिंह, रमेश चंद्रा, एस. एस. लठवाल, पवन सिंह, दीपांदीता बर्मन एवं निनाद भट्ट
पशुधन उत्पादन प्रबंधन अनुभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत कृषि के साथ–साथ एक पशु प्रधान देश भी है। देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या पशु और कृषि पर निर्भर रहती है। 19वीं पशु जनगणना, 2019 के अनुसार भारत में कुल पशु संख्या 535.78 मिलियन है, जिसमें गायों, भैसों और बकरियों की संख्या (मिलियन मे) एवं प्रतिशत (कोष्ठक में) क्रमशः 192.52(36.00), 109.85(20.50) और 148.88(27.78) है। मत्स्य पालन, पशु पालन और डेयरी मंत्रालय 2018–2019 के अनुसार देश में लगभग 187.75 मिलियन टन दूध का उत्पादन है, जिसमें गायों, भैसों और बकरियों का योगदान क्रमशः 48, 49 और 3 प्रतिशत है। इससे पता चलता है कि गायों और भैसों की संख्या ज्यादा होने के कारण भारत दुनिया में शीर्ष दूध उत्पादक देश है, लेकिन हमारे देसी गायों, संकर गायों और भैसों की औसत दैनिक दूध उत्पादकता प्रतिपशु 3, 7.95 और 6.19 किग्रा है। हमारे पशुओं में कम दूध के उत्पादन का कारण हरे चारे का अभाव, दाने का अधिक मूल्य और कुप्रबंधन हैं और अन्य कारण, जैसे गायों की कम दूध देने की अवधि आदि है। देशी गायों में साहीवाल, थारपारकर, गिर, रेड सिन्धी और भैसों मे मुर्राह, भदावरी, नीलीरावी आदि अच्छी दुधारू नस्ले हैं।

भारत सदियों से एक ऋषि प्रधान देश रहा है और हमारे पूर्वज के द्वारा लिखी 'सुश्रुतसंहिता' और 'चरक संहिता' में औषधियों से चिकित्सा का उल्लेख मिलता है। गैलेक्टोगोग्स, कृत्रिम पौधों से उत्पन्न और अंतर्जात पदार्थ से बनी दवाएं हैं, जो पर्याप्त दूध उत्पादन की शुरुआत, रखरखाव या वृद्धि में सहायता करते हैं, परन्तु बाजार में उपलब्ध कृत्रिम दवाओं का पशु और मानव शरीर पर हानिकारक प्रभाव होता है, अतः प्राकृतिक जड़ीबूटियों का प्रयोग सदा ही सार्थक रहा है। ज्यादा दूध की क्षमता वाले पशुओं को थन के स्वास्थ्य के लिये जड़ी–बूटियों का मिश्रण दिया जाता है जो पशुओं के थन के आक्सीकारक तनाव को कम कर देते हैं जिससे दूध बनाने वाली कोशिकाएं लंबे समय तक बनी रहती हैं और दूध देने की क्षमता को बरकरार रखती है।

पशुओं में प्राकृतिक जड़ीबूटियों का महत्व

1. प्राकृतिक जड़ी–बूटियाँ आसानी से बाजार मे उपलब्ध हो जाती हैं।
2. यह 15–35 प्रतिशत तक दूध आसानी से बढ़ा देती है।
3. इनकी लागत कम है।
4. यह पशु के सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है।
5. यह पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं पहुंचाती है।
6. इसका शरीर पर कोई दुष्प्रभाव नहीं होता है।
7. हर्बल दूध बेचने से किसानों को अच्छा मुनाफा मिल सकता है।
8. यह प्रजनन सम्बन्धी समस्या से निजात दिलाती है।
9. इनका भंडारण आसानी से होता है।
10. ब्यांत के बाद पशु समय से गर्मी मे आ जाते हैं।

प्राकृतिक जड़ी–बूटियों के कार्य करने की विधि

प्राकृतिक जड़ी–बूटियाँ पीयूष ग्रंथि के एड्रेनो–हाइपोथैलेमिक–हाइपोफिसियल–गोनैडल अक्ष पर हाइपोथैलेमिक डोपामिनर्जिक रिसेप्टर्स को अवरुद्ध या डोपामाइन उत्पादक न्यूरॉन्स को बाधित करके कार्य करते हैं, जिससे प्रोलेक्टीन का स्राव बढ़ जाता है, जिससे दूध के निकलने की शुरुआत हो जाती है, परन्तु दूध का रखरखाव स्थानीय प्रतिपुष्टि क्रियाविधि से होता है। कुछ जड़ीबूटियाँ भूख को बढ़ा देती है, कुछ तनाव को कम कर देती है, क्योंकि जड़ी बूटिया खनिज लवण और पोषक तत्वों से परिपूर्ण होती हैं।

प्राकृतिक जड़ी–बूटियों मे सक्रिय अवयव

इसमे 'पोलिफीनाल' नमक सक्रिय अवयव पाया जाता है, जिसका बहुत बड़ा समूह है, जो एंटी– ऑक्सीडेटिव, एंटी–माइक्रोबियल, एंटी–एलर्जी, हाइपो–लिपिडेमिक, एंटी–कैंसर, एंटी–म्यूटाजेनिक, प्रतिरक्षा–विनियामक और कार्डियो–सुरक्षात्मक प्रभाव का गुण रखता है।

बहुजड़ी–बूटिय मिश्रण बनाने की विधि

1. सबसे पहले नजदीकी वैज्ञानिक अथवा पशुचिकित्सक से औषधियों के बारे में जानकारी ले लेनी चाहिये।
2. बहुजड़ी–बूटियां हमेशा किसी अच्छे दुकानदार से खरीदनी चाहिये।

3. खरीदने के बाद उसे अच्छे से धूप में सूखा लें।
4. फिर उसे चक्की अथवा ग्राइंडर मे मोटा मोटा पीसवा लें।
5. उनकी मात्रा आवश्यकतानुसार आपस में मिला लें।
6. प्रति पशु की खुराक अनुसार पेकेट्स में भर कर रख लें (चित्र)।
7. और इसे शुष्क (सूखे) और छायादार स्थान पर भंडारण करना चाहिये। भंडारण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि पैकेट्स में नमी नही होनी चाहिये अन्यथा मिश्रण खराब हो सकता है।

बहुजड़ी–बूटिय मिश्रण खिलाने की विधि

जड़ी–बूटियों से जो मिश्रण बनाया जाता है, वह स्वाद में कड़वा या कसैला हो सकता है, क्योंकि जड़ी–बूटियों में पाये जाने वाले तत्व अधिकतर कड़वे या कसैले होते हैं, जिन्हें पशु आसानी से नहीं खाते। अतः बहुजड़ी–बूटिय मिश्रण को गुड़ (50–100 ग्राम) में मिलाकर खाली पेट खिलाना चाहिये। कुछ दिनों के बाद दाने या रोटी या आटे के साथ खिलाया जा सकता है। मिश्रण खिलाने के बाद पशु को दाना या चारा दिया जा सकता है। इसे गाय के ब्यांत के 2 सप्ताह पूर्व से ब्यांत के 2 सप्ताह बाद तक दिया जाता है। अर्थात 1 माह के लिए दी जाती है। इसका खर्चा 15.00–30.00 रुपया प्रतिपशु प्रतिदिन हो सकता है।

इसके अलावा बाजार में भी बहुजड़ी–बूटिय मिश्रण उपलब्ध है, जिनके विवरण नीचे दिये गये हैं, जिन्हें

एक बहुजड़ी–बूटिय के मिश्रण की सारणी नीचे दी गयी है जो दुग्ध उत्पादन मे सहायता करती है।

बहुजड़ी–बूटिय के अवयव	उपयोगी भाग	मात्रा (ग्राम)	वैज्ञानिक नाम	वंश
शतावरी	जड़	15–75	ऐस्पेरेगस रेसीमोसस	लिलिऐसी
जीवन्ती	जड़	1.5–20	लेप्टाडेनिया रेटिक्युलेटा	ऐस्परगेसी
मेथी	बीज	20–60	ट्राइगोनेला फोइनम–ग्रेक्योम	फेबेसी
सौंफ	बीज	15–60	फोएनिकुलुम वल्गर	एपियसी
बबूल	फली	30–100	एकेसिया निलोटिका	फेबेसी
बिनौला	बीज	5–20	गॉसिपियम हर्बेसम	माल्वेसी

तालिकाः बहुजड़ी–बूटिय मिश्रण पर लागत

क्रमांक संख्या	बहुजड़ी–बूटिय के अवयव	दर प्रतिकिग्रा (रु)	मात्रा (ग्राम)	लागत (रु)
1	शतावरी	325.00	15–40	4.88–13.00
2	जीवन्ती	380.00	10–15	5.70–5.70
3	मेथी	70.00	20–50	1.30–3.50
4	सौंफ	125.00	15–40	1.80–5.00
5	बबूल	45.00	30–60	1.35–2.70
6	कपास	30.00	15–20	0.45–0.60
	योग		110–240	15.18–30.50

बहुजड़ी बूटिय मिश्रण को खिलाने का आर्थिक लेखाजोखा

प्राचल	नियंत्रिक समूह	उपचार समूह
कुल चारा और दाना लागत (दाना रु 20, हरा चारा 1.5 और भूसा 5/किग्रा प्रति पशु प्रति दिन)	110.00	110.00
बहुजड़ीबूटिय मिश्रण की लागत (रुपया प्रति पशु प्रति दिन)	0.0	15.18
कूल लागत (रुपया प्रति पशु प्रति दिन)	110.00	125.18
औसत दैनिक दूध उपज (लीटर प्रति पशु)	5.74	7.45
दूध बिक्री पर दैनिक आय (रु 35 प्रति पशु प्रति दिन)	200.90	225.75
प्रतिकिग्रा दूध पर लागत (रु प्रति दिन)	19.16	16.80
प्रतिदिन लाभ (रु)	–	24.85

वैज्ञानिक अथवा पशु चिकित्सक की सलाह पर दिये जा सकते हैं। मिश्रण खिलाने का उपयुक्त समय ब्याने के कुछ दिन पहले और बाद का होता है, क्योंकि बच्चे का विकास अच्छा होता है और पशु का स्वास्थ भी अच्छा रहता है। नवजात बच्चों में बीमारियां भी कम होती हैं।

ब्रांड का नाम	लेबल के अनुसार संरचना	खुराक	कंपनी
पायप्रो	जीवन्ती, कलौंजी, सौंफ, विदारीकन्द, मुलेठी, जीरा और शतावरी	4 गोली प्रतिदिन	आयुरवेट
रुचामैक्स	लहसुन, नीम, मदार, वनजीरा, भृंगराज, गुग्गुल, वैविदंग, पिपली, कुटकी और अदरक	15 ग्राम प्रतिदिन	आयुरवेट
लेप्टाडीन वेट	शतावरी और जीवन्ती	0–15 टेबलेट सुबह शाम	अलार्सीन
गलेक्टिन वेट	शतावरी, जीवन्ती, अवश्गंधा, नल, पाठा, सौंफ, भृंगराज और मकोइ	4 गोली प्रतिदिन	हिमालया

17 पंचगव्य - पारंपरिक विज्ञान का संग्रह

प्रियंका सिंह राव, विवेक शर्मा, फरिन सय्यद, सोमा माजी, रिचा सिंह एवं दिवस प्रधान
डेरी रसायन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारतीय परंपरा में यह माना जाता है कि इस दुनिया में सभी जीवित प्राणी प्रकृति के पांच तत्वों से बने हैं, अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और अंतरिक्ष, जिन्हें एक साथ पंचभूत कहा जाता है। पांच तत्वों के इन अनुपातों में कोई भी गड़बड़ी बीमारी का कारण बन सकती है। इस सिद्धांत पर विभिन्न उपचारात्मक प्रणालियों को विकसित किया गया था। पौधों के लिए वृक्षायुर्वेद, पशुओं के लिए मृगयुर्वेद और मनुष्यों के लिए आयुर्वेद, जिसमें पंचगव्य का पहला प्रलेखित उपयोग है। ऐतिहासिक रूप से यह माना जाता है कि महर्षि वशिष्ठ ने दिव्य गाय "कामधेनु" की सेवा की और यह महर्षि धन्वंतरी थे जिन्होंने "पंचगव्य" तैयार किया। पंचगव्य एक जैविक सूत्रीकरण है, जिसका संस्कृत में अर्थ है गाय से प्राप्त पांच उत्पादों का मिश्रण यानि दूध, घी, दही, गोबर और मूत्र (ये सभी उत्पाद व्यक्तिगत रूप से "गव्य" कहलाते हैं और सामूहिक रूप से पंचगव्य के रूप में नामित हैं)। पंचगव्य को वेदों (भारतीय ज्ञान की दिव्य लिपियों) और वृक्षायुर्वेद की लिपियों में संदर्भ मिला है। पंचगव्य मवेशी आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है और इसमें किसान की वित्तीय स्थिति में सुधार करने की क्षमता है। पंचगव्य में जैव उर्वरकों, वर्मीकम्पोस्ट और जैव कीटनाशकों के रूप में मानव में कई विकारों और बीमारियों के उपचार में आवेदन किया जाता है, जो मिट्टी की उर्वरता में सुधार करता है, जिससे उपज और कृषि उपज की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। पंचगव्य का उपयोग करने की परंपरा दक्षिण भारत में विशेष रूप से तमिलनाडु और केरल में है।

पंचगव्य की तैयारी की विधि

पंचगव्य, गाय से प्राप्त पाँच उत्पादों यानि गोबर, मूत्र, दूध और घी को मिलाकर तैयार किया जाता है और इसे किण्वित करके भी उपयोग किया गया है। योजक घटक, अवयवों और किण्वन अवधि के अलग–अलग अनुपात के आधार पर, पंचगव्य (तालिका 1) को तैयार करने के साहित्य में उद्धृत विभिन्न विधियां और अनुपात हैं। कुछ अध्ययनों में इसे केवल पांच मूल अवयवों (दूध, घी, दही, मूत्र और गोबर) को मिलाकर तैयार किया गया है, जबकि अन्य में, किण्वन को तेज करने के लिए मूल अवयवों के साथ–साथ योज्य पदार्थ (गन्ने का रस, ताड़ी आदि) का भी उपयोग किया गया है।

पंचगव्य का रोगाणुरोधी गुण

पंचगव्य की जैव सक्रियता पर सीमित साहित्य उपलब्ध है। मथिवानन (2006) की रिपोर्ट में बताया गया कि पंचगव्य में सूक्ष्मजीवों के खिलाफ प्रत्यक्ष जीवाणुरोधी गतिविधि नहीं थी, इसके बजाय विशेष रूप से लैक्टोबैसिलस बैक्टीरिया की उच्च मात्रा है। हालांकि यह रिपोर्ट पहले की रिपोर्ट के विरोधाभासी थी, जिसमें फिल्टर्ड पंचगव्य के प्रयोग से ई. कोलाई की वृधि को कम किया गया (सुब्रमण्यम, 2005)। पंचगव्य में नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया जैसे कि एजोस्पिरिलम, एजोटोबैक्टर, फॉस्फो–बैक्टीरिया आदि की उच्च मात्रा होती है जो मिट्टी में नाइट्रोजन सामग्री को बढ़ाने में मदद करते है। कुमार (2011) ने पंचगव्य की रोगाणुरोधी क्षमता के लिए नकारात्मक परिणाम भी देखे, जबकि राय, (2018) ने दर्शाया कि किण्वित पंचगव्य में संकेतक सूचक के खिलाफ उच्चतम और लगातार रोगाणुरोधी गतिविधि थी।

पंचगव्य की अन्य जैवक्रिया

पंचगव्य में दोनों जल आधारित (वसा भाग, मूत्र, दही और गोबर के बिना कोलाइडल दूध) और वसा आधारित (घी, वसा कणों के साथ दूध) उत्पाद इस अर्थ में अद्वितीय हैं, जो की इनकी एंटीऑक्सीडेंट क्षमता को दर्शाते है। आठवले एवं साथी (2012) ने पंचगव्य की एंटीऑक्सीडेंट क्षमता का मूल्यांकन किया और

तालिका 1

अनुपात [(गोबर (किलो) :मूत्र(L): दूध(L): दही(L): घी(L)]	योजक घटक	किण्वन (दिन)	अध्ययन का क्षेत्र
1:1:1:1	–	1	इम्यूनो उत्तेजक गतिविधि
3:5:1.25:1.25:1	– .	0	प्रतिउपचारक गतिविधि
3:5:1.25:1.25:1	–	0	विश्लेषणात्मक अध्ययन
4:3:2:2:1	– .	7	जैव रासायनिक विश्लेषण
0.5:0.3:0.2:0.2:0.1 .	–	9	जैव उर्वरक
0.5:1:7:1:1	– .	21	जैव उर्वरक
5:3:2:2:1	गन्ने का रस(3 लीटर), (12 नंबर), निविदा नारियल पानी (3 लीटर), टोडी (2 लीटर),	40	रासायनिक माइक्रोबियल रचना
5:3:2:2:1	–उपरोक्त समान–	19	जैव उर्वरक
7:10:3:2:1	गन्ने का रस(3 लीटर), केला(2किग्रा)	15	जैव रासायनिक विश्लेषण
5:3:2:2:1	गन्ने का रस(3 लीटर), केला(1किग्रा) निविदा नारियल पानी (3 किग्रा)	–	जैव उर्वरक
3:5:5:1.5:1:0.5	गुड़(1.5 किग्रा), केला(6), नारियल पानी (1.5 लीटर)	30	विश्लेषणात्मक अध्ययन
3.5:5:1.5:1:0.5	गुड़(1.5 किग्रा), केला(6), नारियल पानी (1.5 लीटर)	30	विश्लेषणात्मक अध्ययन
1:3:2:2:1	गन्ने का रस(3 लीटर), केला (12), निविदा नारियल पानी (2 लीटर)	7	नैनो प्रौद्योगिकी और कृषि

पंचगव्य में एंटीऑक्सीडेंट यौगिकों की उपस्थिति देखी। प्रिया एवं साथी (2016) ने पंचगव्य की एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि पर किण्वन के प्रभाव का अध्ययन किया और 30 दिनों के किण्वन तक उच्च एंटीऑक्सिडेंट गतिविधि का अवलोकन किया। पंचगव्य के अन्य उल्लेखित अनुप्रयोग, जिनमें इम्यून बूस्टर, एंटीकैंसर और एंटीवायरल क्षमता शामिल हैं, जिसने चिकित्सा और पशु चिकित्सा पेशेवरों दोनों को आकर्षित किया है। चूहों में किये गए परिक्षण में, जब वैकल्पिक दिन पर पंचगव्य घृत खिलाने पर हेपाटोप्रोटेक्टीव क्षमता देखी गयीं। पंचगव्य में पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व, कई विटामिन, आवश्यक अमीनो एसिड, विकास को बढ़ावा देने वाले कारक जैसे आई. ए. ए शामिल हैं। उपलब्ध साहित्य की परिसीमा यह है कि अद्धयनो में उपयोग किए जाने वाले मूल अवयवों और अनुपातों में भिन्नता है और साथ ही गाय की नस्ल की जानकारी जिसमें से मूल सामग्री प्राप्त की गई, का भी अभाव है।

पंचगव्य का प्रयोग

पंचगव्य का उपयोग मुख्य रूप से कृषि उद्देश्य में किया गया है। पंचगव्य एंटीबॉडी के उत्पादन को उत्तेजित करता है इसलिए जानवरों में यह प्रतिरक्षा प्रणाली का निर्माण करता है। हालांकि, सभी रिपोर्टों में दिए गए इन अनुप्रयोगों से संबंधित वैज्ञानिक सबूतों की कमी है ।

कीटनाशक के रूप में उपयोगः कुछ कीटनाशकों के खिलाफ नीम के तेल के साथ पंचगव्य का उपयोग कीटों को नियंत्रित करने में प्रभावी पाया गया, लेकिन यह भी पाया गया कि अकेले 7% पतला पंचगव्य पौधों में सागौन कीटों को नियंत्रित करने के लिए अधिक प्रभावी पाया गया ।

बीज के अंकुरण के लिए उपयोगः पंचगव्य में एक उत्कृष्ट अंकुरण का गुण पाया गया। यह देखा गया कि 2% पंचगव्य को 16 घंटे और 5% पंचगव्य को बीज भिगोने के समय 8 घंटे साथ मिलाने से पोंगामिया पिन्नाटा और जेट्रोफा ककरस बीज में उत्कृष्ट अंकुरण गुण दिखाया गया।

पौधों की वृद्धिः पंचगव्य की 3% सांद्रता के फोलियर स्प्रे ने मिट्टी में माइक्रोबियल जनसंख्या, नाइट्रोजन, पोटाश, ऑक्सीडाइजेबल ऑर्गेनिक कार्बन, फॉस्फेट को बढ़ाया, जिसमें पौधों की वृद्धि, जैव रासायनिक और उपज मापदंडों को दिखाया गया। पंचगव्य (3%) को खाद के साथ मिला करके आवेदन करने से उच्चतम जड़ उपज के साथ काफी बेहतर प्रदर्शन प्राप्त हुआ।

पशुओ में उपयोग

नटराजन, (2008) ने सूअर, मुर्गी पालन, मछली पालन, बकरियों, भेड़ और गाय पालन में सफल परिणाम के साथ बिना किसी हानिकारक प्रभाव के पंचगव्य की अलग–अलग खुराक लगाई। प्रति दिन गाय को दिए जाने वाले पशु आहार के साथ पंचगव्य को मिलाने से दूध में वसा, एसएनएफ और दूध के उत्पादन के साथ स्वस्थ शरीर का परिणाम प्राप्त हुआ है। इसी तरह पंचगव्य को सुअर एवं मुर्गी के स्वस्थ और रोग मुक्त शरीर के लिए भी उपयोग किया गया है।

निष्कर्ष

इन दिनों गायों के दूध और मूत्र से प्राप्त उत्पादों की ओर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। पंचगव्य, प्राचीन विज्ञान का एक नया संस्करण, निश्चित रूप से आने वाले वर्षों में एक आशाजनक सूत्र है। पंचगव्य की तैयारी के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है। पांच बुनियादी अवयवों के अनुपात, योजकों के अतिरिक्त और किण्वन की अवधि के संदर्भ में विधियाँ भिन्न हैं। किण्वन के तापमान के लिए सटीक डेटा उपलब्ध नहीं है और जैवक्रिया जैसे की पंचगव्य की रोगाणुरोधी और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि पर सीमित अध्ययन है। यह एक प्राकृतिक उत्पाद है, जिसमें कई रासायनिक तत्व होते हैं जो इसके जैवसक्रियता में योगदान कर सकते हैं। इन मूल्यवान उत्पादों की उपयोगिता को उनकी पूर्ण क्षमता की खोज करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. अठावले, अ., जीरणक्लगीकर, न.,नारिया, प.तथा डे, स. (2012) Evaluation of In-vitro Antioxidant activity of Panchgavya: A Traditional Ayurvedic Preparation. IJPSR, 3(8): 2543-2549
2. कुमार,स.र.,गणेश,प. तथा थर्मराज, क. (2011) Biochemical characterisation and antibacterial activity of panchagavya. Golden Research Thoughts, 1:1-4
3. माथीवानन, आर.,एडविन, स.च., विश्वनाथन, क.तथा चन्द्रसेकरण। डा. (2003) Chemical, Microbial composition and Antibacterial activity of Modified Panchgavya. International Journal of Cow Science, 2(2): 23-26
4. नटराजन, क. (2006) Book on Panchagavya – A manual. Vedic giftshop.com, India: 5-37
5. प्रिया, ज.,रेवथी, क.,बाबू, म.तथा शम्सुदीन, प.(2016) Effect of Fermentation on antioxidant capacity of Panchgavya for its utilization in Poultry feed. Recent Advances in Life Sciences, 167
6. सुब्रमण्यम, अ. (2005) Effect of panchgavya on Escherichia coli in procured milk. Indian Veterinary journal, 82: 799-800
7. सत्यम राय Development of panchgavya formulation on the basis of antimicrobial activity. ICAR- National Dairy Research Institute (Deemed University) Karnal-132001 (Haryana), India

18

मेघदूत ऐपः मौसम पूर्वानुमान व कृषि मौसम सलाह के लिए

योगेश कुमार, सुरिन्द्र कुमार एवं ममता भारद्वाज

कृषि विज्ञान केंद्र, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

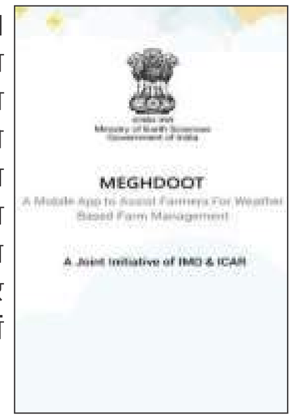

भारत के स्थानीय भाषा में किसानों को मौसम की जानकारी देने के लिए मोबाइल ऐप जारी किया गया है। मेघदूत नाम से जारी ऐप भारत मौसम विज्ञान तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा संयुक्त रूप से निर्मित हैं। ग्रामीण कृषि मौसम सेवा परियोजना के अंतर्गत जिले के कृषकों के लिए प्रत्येक मंगलवार एवं शुक्रवार को पांच दिवसीय मौसम पूर्वानुमान के आधार पर कृषि मौसम सलाह तैयार करके मेघदूत ऐप पर अपडेट की जाती है। मौसम घटकों के आंकड़े जो कि भारत मौसम विज्ञान विभाग से प्राप्त होते हैं, उन आंकड़ों से यह ऐप किसानों को उनकी फसलों और पशुओं की देखभाल व बदलते मौसम के अनुसार इनमे किये जाने वाले बदलाव करने की जानकारी प्रदान करने में सहायक है। जिला कृषि मौसम विज्ञान इकाई, कृषि विज्ञान केंद्र, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान द्वारा करनाल के किसान भाइयों को ब्लाक स्तर पर अगले पांच दिनों के अनुमानित मौसम से अवगत कराया जाता है तथा कृषि कार्यों एवं पशुपालन हेतु वैज्ञानिकों द्वारा सुझाई गई सलाह किसानों के मोबाइल पर इस ऐप की मदद से पहुंचाई जाती है।

मेघदूत ऐप को इस्तेमाल करने का तरीका

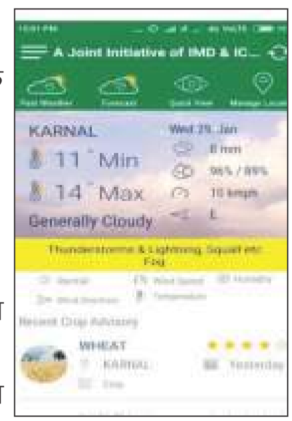

1) गूगल प्लेस्टोर या ऐप स्टोर से संग्रह करें।
2) उपयोगकर्ता को अपना नाम एवं स्थान साईंनअप सेक्शन में जा कर पंजीकृत करना होगा ताकि उन्हें उनके क्षेत्र विशेष की जानकारी मिल सके। उपयोगकर्ता को हिंदी व अंग्रेजी भाषा में से चुनाव करना है।
3) ऐप से फसल एवं पशुओं से सम्बंधित जानकारी प्राप्त करें।

किसानों को दी जानी वाली प्रमुख जानकारियां

- आगामी पाँच दिनों के लिए मौसम पूर्वानुमान उपलब्ध कराना, जो 90 प्रतिशत से अधिक सही होता है।
- किसानों को तापमान, वर्षा, आद्रता, हवा की गति, तथा हवा की दिशा से सम्बंधित पूर्वानुमान से अवगत कराया जाता है।
- गेहूं, जौ, सरसों, बरसीम, मशरूम, मछली पालन, मधुमखी पालन, पशुपालन व उनके आहार प्रबंधन व टीकाकरण के विषय में विस्तृत जानकारी प्रदान कर रहे हैं।
- संभावित मौसम को जानकर उसके अनुसार खेतों की तैयारी तथा मौसम के अनुरूप किस प्रकार खेती करें।
- मौसम के पूर्वानुमान को ध्यान में रखकर फसल में किस–किस समय पर सिंचाई करें। विभिन्न फसलों को लगाने के समय एवं विधि से संबंधित सलाह।
- फसल को कितनी खाद दें और मौसम के अनुरूप कौन सी फसल उपयुक्त रहेगी आदि सहित खेती से जुडी अन्य सभी जानकारियां।
- खाद एवं उर्वरक संबंधी सलाह (कितना, कब और कैसे प्रयोग करें) तथा जल एवं भूमि प्रबंध से संबंधित सलाह।
- फसल की कटाई, निराई–गुड़ाई एवं भंडारण से संबंधित सलाह तथा रोग एवं कीटाणु के आक्रमण की आशंकाएं तथा इससे बचाव एवं उपचार से संबंधित सलाह।
- सूखा की स्थिति में वैकल्पिक फसल योजना किसानों को उपलब्ध कराना।
- पशुधन में होने वाले रोगों एवं उनके उपचार की जानकारी किसानों को उपलब्ध कराना।

19 हल्दी की उन्नत खेती एवं बीज की संरक्षण विधि

विजेंद्र कुमार मीना, राजेश कुमार मीना, राकेश कुमार, फूलसिंह हिन्डोरिया, संतोष ओंट एवं मनीष कुशवाहा

सस्य विज्ञान अनुभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्रस्तावना

हल्दी का वानस्पतिक नाम करकुमा लोंगा एल. है। यह जिन्जिबरऐसे कुल का पौधा है। इसका उत्पति स्थान भारत देश है। भारत विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों है। भारत में इसकी खेती लगभग एक लाख पचास हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल पर की जाती है। इसकी खेती मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश, केरल, उड़ीसा, बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, मेघालय, असम, राजस्थान एवं हरियाणा में की जाती है। देश में प्रतिवर्ष इसका सात से आठ लाख टन उत्पादन होता है। इसका उत्पादन हरियाणा एवं राजस्थान में सीमित स्तर पर ही किया जाता है। क्योकि यहाँ कृषकों को उत्पादन की तकनीकी एवं उन्नत किस्मों के बीजों की उपलब्धता नहीं होने के कारण इसका विशेष लाभ नहीं मिल सका है। इसलिए इसके क्षेत्रफल में विस्तार नहीं हो पाया है।

उपयोग

हमारे देश में हल्दी का उपयोग प्राचीन समय से ही धार्मिक और मांगलिक कार्यों के लिए विशेष रूप से किया जाता रहा है। इसका उपयोग खाद्य पदार्थों जैसे सब्जी, दाल एवं करी बनाने के लिए किया जाता है। कच्ची हल्दी का उपयोग सब्जी व अचार में किया जाता है। इसका उपयोग औषधीय रूप में भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त ऊन, सिल्क एवं अन्य कपड़ा उद्योगों में रंगाइ, सौंदर्य प्रसाधनों, चर्म रोग, नेत्र रोग, खांसी, कामला, यकृत विकार, चोट एवं मोच, ज्वर आदि के उपचारों में इसका उपयोग किया जाता है। हल्दी की गुणवत्ता इसमें पाए जाने वाला पदार्थ कुरक्यूमिन व वाष्पशील तेल की मात्रा पर निर्भर करती है।

हल्दी खेती का तरीका

बुवाई का समय

जलवायु व किस्मों के अनुसार इसकी बुवाई अप्रैल से जुलाई माह तक की जाती है। केरल तथा पश्चिमी तटीय क्षेत्रों में जहाँ वर्षा मानसून से पहले होती है। उन क्षेत्रों में मानसून के पूर्व ही इसकी बुवाई की जाती है।

खेत की तैयारी

मानसून की पहली वर्षा होते ही भूमि को तैयार किया जाता है। इसके लिए खेत की तीन से चार बार गहराई से जुताई कर मृदा को अच्छी भुरभुरी बनाया जाता है इसके बाद सड़ी हुई गोबर की खाद को मृदा में मिलाया जाता है। अब 5.7 मीटर लम्बी एवं 3.5 मीटर चौड़ी क्यारियां बनाकर 50–60 सेंटी मीटर की दूरी पर मेंड बना लेनी चाहिए।

बुवाई का तरीका

बोने के लिए हल्दी के सुविकसित मोटे प्रकंदो का उपयोग किया जाता है और इन्हें पंचगव्य के घोल में डुबाकर 50–60 सेंटीमीटर दूरी पर बनाई गई मेंडों में लगभग 15–20 सेंटीमीटर की दूरी पर बोना चाहिए। बुवाई के समय हल्दी की आँखे ऊपर की तरफ होनी चाहिए। हल्दी के प्रकंदों को 4–5 सेंटीमीटर की गहराई पर लगाकर मृदा से ढक देना चाहिए। निराइ–गुड़ाई करते समय मिट्टी चढ़ानी चाहिए।

बीज की मात्रा

इसके बीज की मात्रा प्रकंदों के आकार व बुवाई की विधि पर निर्भर करती है। सामान्य तौर पर शुद्ध फसल लेने पर प्रति हेक्टर 15–20 क्विन्टल प्रकंद या गांठो की आवश्यकता होती है। बुवाई के पश्चात खेत में नमी बनाये रखने तथा खरपतवार नियंत्रण के लिये सूखी घास फूस, पुआल, पत्तियां या भूसे को पलवार के रूप में बिछाने से हल्दी के प्रकंदो की अंकुरण क्षमता अच्छी होती है।

बीज उपचार

हल्दी की बुवाई करने से पहले इसे फफूंदनाशक दवा इंडोफिल एम. 45 से 2.5 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी में घोलकर कंदो को लगभग एक घंटा डालकर रखने के बाद 24 घंटे के लिए छायादार स्थान में रखते है। इसके बाद बीज की बुवाई करने के लिए उपयोग करना चाहिए। अगर खेत में दीमक लगने की सम्भावना है तब दो मिली मात्रा प्रति लीटर पानी में क्लोरोपाईरीफास का घोल बनाकर बीज को उपचारित करना चाहिए।

हल्दी की उन्नतशील किस्में

अल्लेप्पी फिंगर (केरला) इरोड और सलीम टर्मेरिक (तमिलनाडू), राजपोरे और सांगली टर्मेरिक (महाराष्ट्र), निजामाबाद बल्ब (आंध्र प्रदेश), तमिलनाडू के लिये उपयुक्त किस्में इरोड लोकल, बी.एस.आर 1 पी.टी.एस. 10, रोमा, सुगुना, सुदर्सन और सलीम लोकल आदि है।

बीज की किस्मों की समय अवधि

हल्दी की किस्मों को फसल की अवधि के आधार पर तीन समूह में बांटा गया है।

1. दीर्घ अवधि की किस्में (9 माह). टेकुरपेट, दुग्गीराला, आरमुर, और मीदुकुरा आदि।
2. मध्यम अवधि वाली किस्में (8 माह) इनको केसरी किस्मों के नाम से भी जाना जाता है। इनकी उपज व गुणवत्ता अच्छी होती है। केसरी, रश्मि, रोमा, कोठापेट और कृष्णा आदि इस अवधि की प्रमुख किस्में हैं।
3. अल्प अवधि की किस्में (7 माह) अल्प अवधि की किस्मे अच्छी सुगंध वाली होती हैं। इनमें वाष्पशील तेल की मात्रा अधिक होती है। कस्तूरी, सुवर्णा, सुरोमा, अमलापुरम, डिन्दीग्राम और सुगना आदि इस अवधि की किस्में हैं।

हल्दी की किस्मों की विशेषताएं

भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए हल्दी की अधिक उपज वाली महत्वपूर्ण किस्में।

आंध्र प्रदेश

अमृतपाणी: यह मध्यम अवधि वाली किस्म है, जो लीफ स्पॉट बीमारी के लिए प्रतिरोधी होती है।

अर्मूर: यह सुप्रसिद्ध लम्बी अवधि वाली तथा लीफ ब्लॉच बीमारी के प्रति प्रतिरोधी किस्म है।

दुग्गीराला: यह लम्बी अवधि तथा लीफ ब्लॉच बीमारी के प्रति सहनशील किस्म है।

तेकुरपेटा: यह लम्बी अवधि की लीफ ब्लॉच बीमारी के प्रति प्रतिरोधी तथा अधिक लोकप्रिय किस्म है।

पश्चिम बंगाल व असम

पत्तांत: यह किस्म अपने विशेष रंग और सुगंध के लिए जानी जाती है।

केरला: अल्लेप्पी, वयनाड

महाराष्ट: राजापोरे, करहाडी, वैगन।

तमिलनाडू: चिन्नानादन, पेरियानादन

पंजाब व हरियाणा: पंजाब हल्दी 1 और पंजाब हल्दी 2 है। इसकी उपज क्रमशः 108 एवं 120 क्विंटल प्रति हेक्टर होती है।

खाद एवं उर्वरक

खेत की तैयारी के समय 20–25 टन प्रति हेक्टर की दर से पूर्ण सड़ी हुई गोबर की खाद को भूमि में मिलाया जाता है। इससे भूमि की उपजाऊ क्षमता अच्छी होती है। क्यारियां बनाने से पहले 100 कि.ग्रा. नत्रजन, 50 कि.ग्रा. फास्फोरस और 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टर की आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई पर खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इसके बाद नत्रजन की शेष मात्रा को दो भागो में बांटकर खड़ी फसल में एक बार 30–35 दिन पर तथा दूसरी बार 60–70 दिन पर पंक्तियों की मृदा में मिलाकर मृदा को पौधों पर चढ़ा देना चाहिए शेष आदि मात्रा एक माह बाद कतारों के बीच में देना चाहिए। हल्दी के अंकुरित होने के 20 दिन बाद पंच्चगव्य को 10–20 दिन के अंतराल पर खड़ी फसल में स्प्रे करने से हल्दी की पैदावार अच्छी होती है।

सिंचाई

प्रथम सिंचाई गांठ (प्रकंद) लगाने के तुरंत बाद करनी चाहिए। इसके बाद मानसून आने तक आवश्यकता अनुसार दस–दस दिन के अंतर पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। हल्दी की फसल के लिए 15 से 20 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खरपतवार नियत्रण

हल्दी के खेत में सूखी घास व पुआल की पलवार (मल्चिंग) करने से खरपतवार काफी हद तक कम हो जाता है। खेत में खरपतवार दिखाई देने पर इसकी निराई–गुडाई करके पोंधों पर मिट्टी चढ़ा देना चाहिए। अगर खेत में खरपतवार की समस्या अधिक है। तब फ्लुक्लोरालिन 1.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से उपयोग करने से घास व चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवारों को नियंत्रित किया जाता है।

खुदाई व उपज

अगेती फसल सात माह, मध्यम आठ माह तथा पछेती 9–10 माह में पक कर तैयार हो जाती है। फसल के पकने पर पत्तियां सूखकर पीली तथा धनकंद पूर्ण विकसित हो जाते है। इसकी खुदाई से तीन चार दिन पहले भूमि की हल्की सिंचाई करते है जिससे फसल की खुदाई में आसानी होती है। जिससे प्रकंद भूमि से बिना क्षति के निकल आते है। कुदाली व फावड़े से प्रकंद पुंजों को निकालकर उनसे पत्तियों को अलग कर दिया जाता है और प्रकंदो को अच्छी तरह पानी से धोया जाता है। इसकी उपज 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टर तक होती है। सुखाने के बाद कच्ची हल्दी की उपज 20–20% तक होती है।

बीज के लिए हल्दी सरंक्षण की विधियां

बीज के काम आने वाली हल्दी को कच्ची अवस्था में रखने की आवश्यकता होती है।

- बीज सरंक्षण की निम्न दो विधियां उपयोगी होती है।

1. मिट्टी में दबाकर

कच्चे बीज को भूमि में दो मीटर चौड़ा व एक मीटर गहरा गड्डा खोदकर उसमे हल्दी की सूखी हल्की.फुल्की पत्तियां बिछाकर हल्दी के प्रकंदो को भर दिया जाता है। अब उसके ऊपर लकड़ी के तख्तों को बिछाकर उस पर मिट्टी का लेप कर दिया जाता है। इससे गांठे तीन चार माह तक सुरक्षित रहती है।

2. ढेर लगाकर

गाठों का ढेर लगाकर उन्हें सूखी घास.फूस से ढककर चारो तरफ मृदा का लेप कर दिया जाता है। और फिर उसके ऊपर गोबर का लेप कर देते है। जिससे से बीज को तीन से चार महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

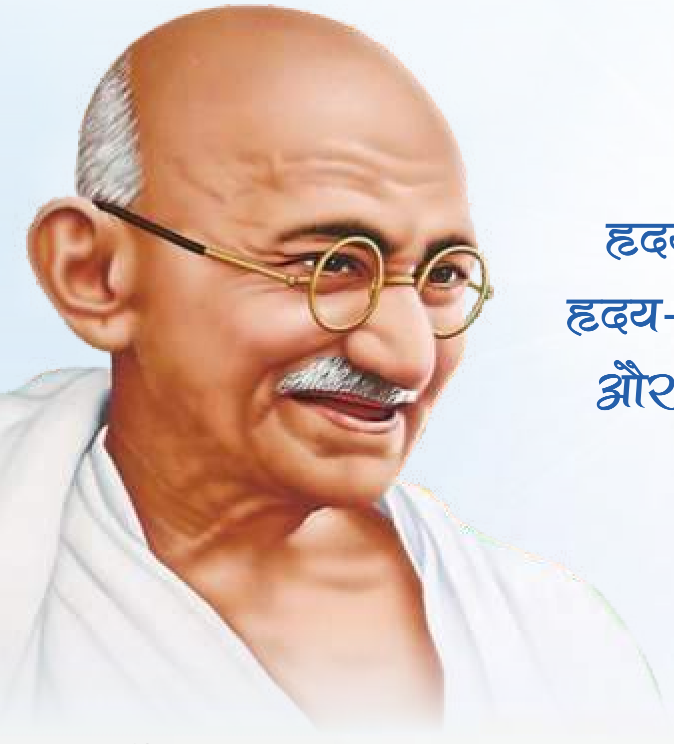

हृदय की कोई भाषा नहीं है,
हृदय-हृदय से बातचीत करता है
और हिन्दी हृदय की भाषा है।

-महात्मा गांधी

20 अरहर के अधिक उत्पादन हेतुः इसकी रोपाई विधि का प्रक्षेत्र स्तर पर प्रदर्शन

फूलसिंह हिन्डोरिया, राजेश कुमार मीना, राकेश कुमार, विजेंद्र कुमार मीना, संजीव कुमार, प्रसन्ना एस. पायति एवं सुशांत दत्ता
सस्य विज्ञान अनुभाग, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

परिचय

अरहर देश की प्रमुख दलहनी फसल है, जिसको मुख्य रुप से खरीफ के मौसम में उगाया जाता है। यह क्षेत्रफल तथा उत्पादन, दोनों ही दृष्टि से चना के बाद दूसरे स्थान पर है। इसे एक बहुउद्देशीय दलहनी फसल के रूप में उगाया जाता है। इसको क्षेत्रीय भाषा में अरहर, रेड ग्राम तथा तुअर के नाम से भी जाना जाता है। इसकी उत्पत्ति स्थल भारत तथा अफ्रीका दोनों को माना जाता है। इसकी हरी फलियों को सब्जी के लिए तथा हरी पत्तियों एवं टहनियों को हरे चारे के लिए उपयोग किया जाता है। इसके प्रमुख उत्पादक राज्यः उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश है। अरहर की दाल में लगभग 20–21 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है, साथ ही इस प्रोटीन का पाच्यमूल्य भी अन्य प्रोटीन से अच्छा होता है। दलहन प्रोटीन का सशक्त स्त्रोत होने से भारतीयों के भोजन में इसका समावेश है। अरहर की प्रति 100 ग्रा. दाल में लगभग ऊर्जा. 343 किलो कैलोरी,कार्बोहाइड्रेट 62.78 ग्रा., प्रोटीन 21.7 ग्रा., फाइबर 15 ग्रा., विटामिन जैसे. थाइमिन (बी1) 0.643 मि॰ग्रा॰,राइबोफ्लेविन (बी2) 0.187 मि॰ग्रा॰, नियासिन (बी3) 2.965 मि.ग्रा., तथा खनिज पदार्थ जैसे. कैल्शियम 130 मि॰ग्रा॰, आयरन 5.23 मि॰ग्रा॰, मैग्नीशियम 183 मि॰ग्रा॰, मैंगनीज 1.791 मि॰ग्रा॰, फास्फोरस 367 मि॰ग्रा॰, पोटेशियम 1392 मि॰ग्रा॰, सोडियम 17 मि॰ग्रा॰, जिंक 2.76 मि.ग्रा., आदि पोषक तत्व पाए जाते है जो स्वस्थ जीवन के लिए बहुत आवश्यक होते है। इसे मुख्य रूप से खरीफ ऋतु में एकल तथा अंतरवर्तीय फसल के रूप में उगाया जाता है। इस दलहनी फसल की मुख्य विशेषता यह है कि इसकी जड़ों पर उपस्थित ग्रंथियां वायुमंडलीय नत्रजन का स्थरीकरण करके सीधे भूमि तथा पौधों को प्रदान करती है, जिससे भूमि की उर्वरता में भी सुधार होता है। साधरणतया किसान इसकी खेती पारम्परिक तरीके से करते है जिससे अरहर फसल की औसत उपज (685 कि॰ग्रा॰/हे) इसकी आनुवंशिक उत्पादक क्षमता 2700 कि.ग्रा./हे से बहुत कम होती है। अतः वैज्ञानिक पद्धति को अपनाकर किसान भाई इसकी उपज को अधिक प्राप्त कर सकते है। इसकी उपज को बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम इसकी नर्सरी तैयार की जाती है उसके पश्चात मुख्य खेत में रोपाई की जाती है। ऐसा करने से पौधों की अच्छी बढ़वार होती है, तथा इसमें रोग तथा कीटों का प्रकोप भी बहुत कम होता है। जिससे इसकी पैदावार अधिक होती है और इसकी उत्पादन लागत भी कम होती है।

भारत में अरहर की कम उत्पादकता के महत्वपूर्ण कारण

- मुख्यतः इसकी खेती असिंचित क्षेत्र में की जाती है तथा खरपतवार एवं कीट के रोकथाम के लिए उचित प्रबंधन का अभाव।
- अधिक उपज वाली किस्मो का अभाव।
- अवैज्ञानिक ढंग से बुवाई या पारम्परिक छिड़काव विधि का उपयोग से एक समान अंकुरण ना होना।
- उचित सस्य क्रियाओं के प्रयोग का अभाव।

- खेती के लिए कम उपजाऊ मृदा का चुनाव।
- उर्वरकों के प्रयोग में उचित प्रबंधन का अभाव।
- उचित सिंचाई की व्यवस्था न होने के कारण फसल की वर्षा पर निर्भरता।
- वर्षा पर निर्भरता के कारण उचित समय पर बुवाई ना हो पाना।
- अपर्याप्त कीट व रोग नियंत्रणरू सीमान्त किसान आर्थिक तंगी और अज्ञानता के कारण पौध संरक्षण उपायों को नहीं अपनाते हैंए जिससे उपज में भारी कमी आती है।
- हाल के कुछ वर्षो में खरीफ ऋतु में वर्षा का अनियमित आगमन होने के कारण अरहर की बुवाई समय पर न होने की वजह से इसके पौधो की अनियमित वृद्धि होती है तथा फसल मुख्यतः खरपतवार, कीट एवं बीमारियों के प्रकोप से ग्रसित हो जाती है जिससे उपज भी कम हो जाती है।

अरहर की रोपाई का महत्त्व

अरहर की बुवाई रोपाई विधि से उचित समय पर करने से फसल में कीट तथा बीमारियाँ बहुत कम लगती है जिससे फसल की उपज भी बढ़ती है। सीधी बुवाई की तुलना में इसकी रोपाई विधि करने से पौधो की अधिक वृद्धि होती है क्योकि नर्सरी को उपयुक्त तापमान एवं आद्रता में लगाया जाता है तथा मुख्य खेत में उपयुक्त समय पर रोपाई की जा सकती है। रोपाई विधि एक प्राचीन पद्धति है जिसे छोटे बीज वाली फसलों अर्थात सब्जियों बैंगन, मिर्च और टमाटर को उत्पादित करने के लिए किया जाता है। उसी प्रकार अरहर की रोपाई भी कर सकते है जिससे किसान भाई स्वस्थ पौधो का चुनाव कर पौध से पौध तथा कतार से कतार की दूरी को समायोजित कर सकता है जिससे खेत में पौधो की संख्या 100% तक होने के कारण अधिक उत्पादकता ले सकते है।

अरहर की नर्सरी के समय निम्न बातों का पूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए

- प्लास्टिक बैग में स्वस्थ उपजाऊ मृदा तथा खरपतवार रहित गोबर से बनी स्वस्थ खाद के मिश्रण में अरहर का एक बीज लगाना चाहिए।
- सिंचाई का उचित प्रबंध रखना चाहिए तथा पौध की अच्छी बढ़वार के लिए 2% यूरिया के घोल का छिड़काव करना चाहिए।
- पौध की रोपाई के समय पौध तथा जड़ दोनों को क्षति से बचाना चाहिए अर्थात स्वस्थ पौधो की रोपाई करें।
- पौध की रोपाई के बाद सिंचाई तथा अन्य सस्य क्रियाओं का पौधो की अच्छी वृद्धि के लिए उपयुक्त प्रबंध करना चाहिए।

अरहर की नर्सरी की तैयारी निम्नानुसार करना चाहिए

- इसकी नर्सरी बुवाई के एक माह पहले (मई माह के पहले सप्ताह में) करना चाहिए जिससे इसकी रोपाई खरीफ/जून माह में की जा सके।
- इसकी नर्सरी तैयार करने के लिए 4X6 इंच के पॉलीथिन बैग का उपयोग करना चाहिए।
- उपजाऊ मृदा तथा कम्पोस्ट या गोबर की खाद का मिश्रण 1:1 के अनुपात में तैयार करना चाहिए।
- मृदा तथा खाद के मिश्रण को पॉलीथिन बैग में भरने के बाद इसमें बीज की बुवाई करनी चाहिए तथा एक दिन के अंतराल या कम से कम तीन दिन के अंतर पर फुहार विधि से सिंचाई का प्रबंध करना चाहिए।
- अरहर के अंकुरित होने के बाद पॉलीथिन बैग से अवांछित अस्वस्थ पौधो को निकाल देना चाहिए तथा पॉलीथिन बैग में एकल स्वस्थ पौधे को रोपाई के लिए रखना चाहिए।

- नर्सरी लगाने के 20 से 25 दिनों के बाद पौधे मुख्य खेत में रोपाई करने के लिए तैयार हो जाते है ।

मुख्य खेत में अरहर की रोपाई के समय ध्यान देने योग्य बातें

- इसकी रोपाई करने के लिए खेत को समतल कर मृदा को महीन भुरभुरी तैयार कर लेना चाहिए।
- खरीफ ऋतु में वर्षा के आने पर 6 फीट के अंतर पर देशी हल से खॉचा तैयार करने के बाद इसमें पौधे से पौधे की दूरी 30 से 35 से.मी. रखकर खॉचो में रोपाई करें।
- रोपाई के 30 से 60 दिनों तक खरपतवार नियंत्रण के लिए निराई–गुड़ाई करनी चाहिए।
- इसकी रोपाई से पहले खेत की तैयारी के समय संतुलित मात्रा में पोषक तत्व तथा 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।
- उचित समय पर कीटनाशी का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।
- सिंचाई की क्रांतिक अवस्था अर्थात पुष्पण के शुरू होने तथा फलियों में दाना भरते समय सिंचाई अवश्य करना चाहिए।

अरहर की रोपाई से होने वाले लाभ

- खरीफ मानसून के शुरू होने पर इसकी सही समय पर रोपाई करके प्राकृतिक स्त्रोतों जैसे वर्षा जल तथा आद्रता का पूर्ण क्षमता से उपयोग किया जा सकता है।
- खेत में पौधों की आबादी 100 प्रतिशत सुनिश्चित करने के लिए रोपण के उपयोग से गैप फिलिंग की जा सकती है।
- इससे बीज की बचत होती है क्योंकि इसमें एक स्थान पर एक पौधा लगाया जाता है।
- इससे पौधो में कीट तथा बीमारियां बहुत कम आती है, विशेषकर फली भेदक कीट का प्रकोप नहीं होता है।
- इस विधि से रोपाई करने से पौधे की जड़ें गहराई तक जाती हैं, जिससे जल तथा पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है।
- इससे प्रति पौधा अधिक टहनियाँ निकलती है, जिस कारण इसकी उपज में दो से तीन गुना अधिक बढ़ोत्तरी होती है।
- इसको रोपाई विधि से उत्पादित करने पर जैविक तथा अजैविक तनाव का प्रभाव बहुत कम हो जाता है।
- इसकी सही समय पर बुवाई होने के कारण फली छेदक से होने वाली क्षति में कमी होती है ।इसका शुद्ध लाभ लागत अनुपात 6 तक प्राप्त होता है।

रोपाई विधि की सीमाएं

- इसमें अधिक श्रम की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

इस उन्नत तकनीक से अरहर की खेती करने पर बीज की कम मात्रा आवश्यक होती है। तथा पौधों को कीट एवं व्याधियों से बचाव के लिये उपयोग किये जाने वाली रासायनिक दवाओं की आवश्यकता भी कम हो जाती है। जिसके कारण इसकी उत्पादन लागत भी कम होती है। जिससे किसानों को मुनाफा अधिक प्राप्त होता है।

पी.जी.पी.आर. (PGPR) राइजोबैक्टीरिया: पौधों के विकास हेतु एक वरदान

21

सौरभ कुमार, मगन सिंह, संजीव कुमार एवं विजेन्द्र कुमार मीना
सस्य विज्ञान अनुभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

आज के समय में मानव जनसँख्या की तीव्र वृद्धि एक गंभीर समस्या है। पूरे संसार की वर्तमान जनसंख्या सात अरब है जो कि अगले पचास साल में बढ़कर दस अरब तक हो जाएगी। इस बढ़ती आबादी को सीमित प्राकृतिक संसाधनों जैसे कि भूमि और पानी के साथ कैसे खिलायें, हमारे लिए चुनौती होगी। दुनिया के वर्तमान परिदृश्य में विभिन्न विकल्पों जिन्हें समाधान के रूप में देखा जा सकता है, असंभव प्रतीत होते हैं जैसे कृषि भूमि में वृद्धि जो जनसंख्या वृद्धि के कारण संभव नहीं है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का बढ़ता उपयोग जो समस्या का एक अल्पकालिक समाधान होगा क्योंकि ये हानिकारक रसायन लंबे समय में मिट्टी के स्वास्थ्य को प्रभावित करेंगे। खरपतवार तथा कीटनाशकों का बढ़ता हुआ प्रयोग लम्बे समय में पर्यावरण के दृष्टिकोण से अनुकूल नहीं है। खेती का मशीनीकरण सभी प्राकतिक स्थलों पर बढ़ाना आय के हिसाब से महंगा होता जा रहा है। ट्रांसजेनिक फसलों से कृषि उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है लेकिन मानव स्वास्थ्य पर उनका प्रभाव अभी भी एक रहस्य है तथा ट्रांसजेनिक फसलों का बढ़ता उपयोग नैतिक मूल्यों के विरुद्ध है। ऐसे में पौधो की उपज को बढाने बाला राइजोबैक्टीरिया (PGPR) एक बेहतर विकल्प हो सकता है।

पौधों की जड़ो के चारो तरफ के स्थान को हम राइजोस्फियर कहते है। यह एक पोषक तत्व से भरपूर आवास है। यहाँ पर बैक्टीरिया और कवक की एक विशाल विविध जनसंख्या निवास करती है जो प्रत्येक पौधे पर तटस्थ, लाभकारी या हानिकारक प्रभाव डाल सकते हैं। पीजीपीआर (Rhizo-Biofertilizers) बैक्टीरिया का एक समूह है जो सक्रिय रूप से पौधे की जड़ों का उपनिवेशण करते हैं और पौधे की वृद्धि और उपज को बढ़ाते हैं। यह पूर्णतः स्थापित हो चुका है कि केवल 1 से 2% बैक्टीरिया राइजोस्फीयर में पौधे की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं। पीजीपीआर का प्रदर्शन कई वाणिज्यिक फसलों और चारे वाली फसलों की वृद्धि और उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। ये पौधों की वृद्धि को परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है। यह जीवाणु द्वारा संश्लेषित यौगिक पदार्थ को पौधे को प्रदान करते हैं, उदाहरण के लिए फाइटोहोर्मोन या फिर पर्यावरण से कुछ पोषक तत्वों को आसानी से लेने में मददगार होते हैं। यह पौधों की वृद्धि में अप्रत्यक्ष संवर्धन तब होता है जब पीजीपीआर एक या एक से अधिक फाइटोपैथोजेनिक जीवों के हानिकारक प्रभावों को कम या रोक देता है जो की प्रतिपक्षी पदार्थों का उत्पादन करके या रोगजनकों के प्रतिरोध को प्रेरित करके हो सकता है। एक विशेष पीजीपीआर इन तंत्रों में से किसी भी एक या अधिक तंत्रों का उपयोग करके पौधे की वृद्धि और विकास को प्रभावित कर सकता है। पीजीपीआर एक बायोकंट्रोल एजेंटों के रूप में विभिन्न तंत्रों के माध्यम से कार्य कर सकता है जैसे की प्रत्यक्ष विकास संवर्धन में उनकी भूमिका हो या फिर ऑक्सिन फाइटोहोर्मोन के उत्पादन से या फिर प्लांट एथिलीन के स्तर में कमी या जड़ों के साथ जुड़कर नाइट्रोजन फिक्सिंग करके, यह हर तरीके से कम कर सकता है। पीजीपीआर और पौधों के साथ उनके संबंध का व्यावसायिक रूप से उत्पादन किया जाता है जो की टिकाऊ कृषि के लिए महत्वपूर्ण हैं।

पीजीपीआर

पीजीपीआर की भौतिकी (फिजियोकेमिकल) विशेषता

पीजीपीआर मुक्त–जीवित बैक्टीरिया हैं। उनमें से कुछ बैक्टीरिया जीवित पौधों के ऊतकों पर आक्रमण करते हैं तथा बीज या फसलों के लिए अनुपयुक्त और रोगसूचक संक्रमण के विरुद्ध प्रतिजैविक क्षमता का उत्सर्जन

करते हैं। यह पौधों के विकास को बढ़ाते हैं और मिट्टी जनित पौधों के रोगजनकों से नुकसान को कम करते हैं। राइजोबैक्टीरिया जो पौधे के विकास पर लाभकारी प्रभाव डालते हैं उनमें Pseudomonas] Azospirillum] Azotobacter, Klebsiella, Enterobacter, Alcaligens, Arthrobacter, Burkholderia, Bacillus और Serratia इत्यादि बैक्टीरिया की प्रमुख प्रजातियों का एक विस्तृत समूह जो पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है। पीजीपीआर द्वितीयक चयापचयों पदार्थो का उत्पादन और विमोचन करके पौधे की वृद्धि को प्रभावित करता है। ये जड़ पर्यावरण से कुछ पोषक तत्वों की उपलब्धता और वृद्धि को सुविधाजनक बनाते है।

बायोकेन्ट्रोल के रूप में पीजीपीआर

जो बैक्टीरिया पौधों की बीमारियों की घटनाओं या गंभीरता को कम करते हैं, उन्हें अक्सर बायोकेन्ट्रोल एजेंटों के रूप में जाना जाता है। पीजीपीआर एक बायोकन्ट्रोल एजेंट के रूप में भी काम करता है। यह सिदेरोफोरेस और एंटीबायोटिक दवाओं का उत्पादन करके, मेजबान पौधे को रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान कर उन्हें रोगों से बचाता है। विभिन्न पीजीपीआर में से स्यूडोमोनस फ्लोरेसेंसिस एक सबसे व्यापक रूप से अध्ययन किया गया राइजोबैक्टीरिया है, यह पौधो में कई रोगजनकों के खिलाफ काम करता है। केले का गुच्छा वायरस (बीबीटीवी) घातक वायरस में से एक है जो पश्चिमी घाट तथा तमिलनाडु में केले की फसल को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। विभिन्न स्थलों पर पी फ्लोरेसेंस स्ट्रेन के प्रयोग से ग्रीनहाउस और फील्ड परिस्थितियों में पहाड़ी केले में बीबीटीवी की घटना में काफी कमी पाई गयी।

पीजीपीआर बायोफॉर्मुलेशन के रूप में

पीजीपीआर और बैक्टीरियल एंडोफाइट्स विभिन्न कवक रोगों के प्रबंधन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। यह पता चला है की जब पीजीपीआर को कुछ अन्य बैक्टीरिया या कवक विरोधी पदार्थो के साथ मिश्रित किया जाता है, तो इसका प्रभाव बढ़ जाता है। दुनिया भर में इस विषय पर शोध चल रहा है कि किस प्रकार पीजीपीआर को बायोफॉर्मुलेशन के रूप में उपयोग किया जा सके, क्योंकि यह पर्यावरण तथा पौधों के लिए खाद के रूप में काफी उपयोगी हो सकते है।

चारे वाली फसलों पर पीजीपीआर के प्रभाव

पीजीपीआर के प्रयोग से चारे वाली फसलो में काफी अच्छा प्रभाव देखा गया है। चारे वाली फसलो के बीजो का पीजीपीआर द्वारा उपचार करने से उनका बीज अनुकरण दर 5 प्रतिशत बढ़ जाता है और सभी प्रजातियों पर औसत अंकुरण समय 5–8 प्रतिशत को कम करता है। चारे वाली फसलों में इसका इस्तेमाल २०० मिली. प्रति एकर फसल की बुवाई के समय कर सकते है। यह चारे वाली मक्के के उपज को बढ़ाता है तथा उनका आचार (Silage)बनाने के लिए भी ज्यादा चारा प्रति हेक्टेयर देता है। फलिदार चारे जैसे बरसीम तथा लोबिया में पीजीपीआर के प्रयोग से नोड्यूलेशन और नाइट्रोजन निर्धारण के माध्यम से पौधों के विकास में वृद्धि पाई गयी है।

निष्कर्ष

दुनिया भर में पीजीपीआर बायोफर्टिलाइजर तकनीक की क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। यह साबित कर दिया गया है कि मिट्टी की उर्वरता और कृषि उपज को बढ़ाने में पीजीपीआर बहुत प्रभावी हो सकते हैं। वर्तमान तथा भविष्य में पीजीपीआर कृषि क्षेत्र में और पर्यावरण के लिए काफी लाभदायक सिद्ध हो सकते है।

सरसों के प्रमुख रोग, लक्षण एवं उनकी रोकथाम

22

मुनीष लहरवान, राकेश कुमार, मगन सिंह, राजेश कुमार मीना एवं हरदेव राम
सस्य विज्ञान अनुभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

सरसों या तोरिया भारत की प्रमुख तिलहनी फसलें है। मुंगफली के बाद क्षेत्रफल एवं उत्पादन कि दृष्टि से ये दुसरे स्थान पर है। फसलों के समुह में तोरियाँ, पीली सरसों, राय तथा तारामीरा आते है। इसकी गिनती भारत की प्रमुख तीन तिलहनी फसलों (सोयाबीन, मूगंफली एवं सरसों) में होती है, जो देश में हुई पीली क्रान्ति के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है। इसका उत्पादन भारत में राजस्थान, मध्यप्रदेश उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा व बिहार आदि प्रदेशों में होता है। ये हरियाणा में लगभग 5 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में उगाई जाती है। सरसों की फसल के लिए शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। सरसों की उपज को बढ़ाने तथा उसे टिकाऊ बनाने के मार्ग में एक प्रमुख समस्या रोगों का प्रकोप है। फसलों के कम व अस्थिर उत्पादन के लिए रोग ही उत्तरदायी है। सामान्य आंकलन के अनुसार रोगों के कारण प्रतिवर्ष 10–20 प्रतिशत उपज में हानि होती है, जिससे किसानों को आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ता है। कुछ रोगों के लक्षण एवं उनके प्रबंधन के बारे में जानकारी निम्नलिखित है।

सफेद रतुआ

सफेद रतुआ (White Rust)

लक्षण

इस रोग में सर्वप्रथम नवंबर में जब तापमान 18–20 सेल्सियस के आसपास रहता है तो पत्तियों की निचली सतह पर 1–2 मि॰मी॰ व्यास के स्वच्छ व सेफद रंग के छोटे–छोटे फफोले बनते हैं। रोग की उग्रता बढ़ने के साथ–साथ ये आपस में मिलकर बड़ा रूप धारण कर लेते है इन फफोलों के ठीक ऊपर पत्तियों पर धब्बे दिखने लगते हैं। पूर्ण विकसित हो जाने पर फफोले फट जाते हैं और सेफद भूरे चूर्ण के रूप में बीजाणु फैल जाती हैं। तना व फलियों पर भी फफोले बन जाते हैं और इसके प्रभाव से उत्पन्न आंशिक व पूर्ण नपुसंकता के कारण बीज नहीं बन पाते। इस फूली हुई संरचना को बारहसिंघा कहते हैं। तने में सूजन काफी लंबाई तक हो जाने के कारण तना झुक जाता है। रोग की गंभीर अवस्था में पत्तियाँ सुख कर गिर जाती है, जिससे पोधे कमजोर रह जाते है यह रोग पुष्पक्रम को भी प्रभावित करता है जिससे पुष्पक्रम फूल विक्रीत आकार के हो जाते है इस अवस्था को स्टैग हैड कहते है यह ज्यादा पछेती फसल में अधिक होता है। विकार के कारण उत्पन्न आशिंक व पूर्ण नपुंसकता होती है व बीज नही बन पाते।

रोगजनक

यह रोग एल्बूगो कैन्डीडा नामक फूंफद से होता है।

रोग विकास

इस रोग का कवक मिट्टी में रोगी पौधे के अवशेषो पर जीवित रहता है अथवा बीज के साथ रहता है जो दूसरे वर्ष बोये जाने वाली सरसो फसलों को संक्रमित करता है कुछ बहुवर्षीय खरपतवार भी प्राथमिक निवेश द्रव्य उपलब्ध करवाने में सहायक होते हैं। नम 75 प्रतिशत से अधिक आर्द्रता, ठंडी 5–12 सेल्सियस तापमान व बादल युक्त 2–6 घंटे धूप जलवायु इस रोग के फलाव के लिए अति उपयुक्त है।

रोकथाम

- फसल की समय पर बुआई करें।

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का उपयोग करें।
- सफेद रतुवा ग्रसित निचली पत्तियों को चुन कर हटा दे बीज को मेटालैक्सिल (एप्रान 35 एस.डी.) 6 ग्राम प्रति 1 कि॰ग्रा॰ बीज की दर से उपचारित करके बोएं।
- फसल पर रोग के लक्षण दिखते ही मैंकोजेब/रिडोमिल एम.जेड. 72 डब्ल्यू.पी. कवकनाशी के 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव बुआई के 40 व 70 दिनों के उपरांत करने से सेफद रोली से बचा जा सकता है।

आल्टरनेरिया ब्लाइटः– (Alternaria Blight)

लक्षण

इस रोग में बुवाई के लगभग 60–70 दिन के बाद सर्वप्रथम पौधे के निचली पत्तियों के ऊपरी सतह पर गोलाकार हल्के भूरे धब्बे प्रकट होते है धीरे–धीरे ये गहरे भूरे रंग के धब्बे तने, टहनियों और फलियों पर रोग की उग्रता की दर से फैल जाते हैं। बाद में यह धब्बे बड़े आकार व हलके काले रंग के हो जाते है जैसे जैसे यह रोग ऊपर बढ़ता है निचली पत्तियां झुलुस कर गिर जाती है इस से दाने छोटे हो जाते है व दानो का रंग भी बदल जाता है रोग का परकोप अधिक होने पर फलियाँ फट जाती है व दाने झड जाते है। इस रोग से उपज एवं तेल की मात्राा को 10 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचता है।

रोगजनक

आल्टरनेरिया ब्रेसिकी नामक कवक से होता है

रोग विकास

इस रोग का कवक मिट्टी मैं रोगी पौधे के अवशेषो पर जीवित रहता है रोग का प्राथमिक संक्रमण निचली पत्तियों पर प्रकट होता है। जनवरी–फरवरी में तापमान 20 से 25 सेल्सियस और आर्द्रता 90 प्रतिशत से अधिक होने पर प्राथमिक निवेश द्रव्य ही द्वितीयक संक्रमण का स्रोत बनता है। पौधों की सघनता और बारी–बारी से हल्की वर्षा अथवा अधिक सिंचाई रोग विकास को उग्रता प्रदान कर पौधों के दूसरे भागों को भी यह रोग ग्रसित करती हैं।

रोकथाम

आल्टरनेरिया ब्लाइट

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज बोएं।
- पहली फसल के बचे हुए रोग ग्रस्त अवशेषों को नष्ट करें।
- उरर्वकों को अनुशंशित मात्रा में ही प्रयोग करें।
- खेत की तैयारी करते समय 1 किलोग्राम ट्राइकोडरमा विरिडी/25 किलोग्राम गोबर की खाद के साथ मिलाकर मिट्टी में डालना चाहिए। फसल में से रोग के प्रभाव को कम करने के लिए कुछ जैविक रसायन, जैसे नीम की पत्ती का रस, धतुरा की जड़ का रस तथा लहसुन का रस 20 ग्राम/लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करने से काफी हद तक रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है।
- पर्यावरण में रासायनिक दुष्प्रभाव को रोकने के लिए 2 प्रतिशत लहसुन के सत्त का प्रयोग बुआई के 45 एवं 75 दिनों बाद में करने से रोग से होने वाली हानि को 35 प्रतिशत कम किया जा सकता है।
- बीमारी के लक्षण नजर आते ही 600 ग्राम मेन्कोजेब (डाईथेन या इन्डोफिल एम–45) 200–300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से 15 दिन के अंतर पर 3–4 बार छिड़काव करें।

चूर्णिल आसिता रोग (Powdery Mildew)

लक्षण

पत्तियों की निचली सतह पर बैंगनी, भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते है। तापमान के वृद्धि के साथ साथ यह धब्बे आकार में बड़े हो जाते है और समस्त पौधे को ढक लेते है जिस से उनपर सफेद दानेदार चाक का चुरा छिड़क दिया हो ! रोग ग्रस्त फलियां आकार मैं छोटी या खाली रह जाती है ग्रसित फलियों में बीज सिकुड़े हुए छोटे व कम मात्रा में पाए जाते है।

रोगजनक

यह रोग ईरीसाईपफी क्रुसीपिफरेरम नामक फूंफद द्वारा होता है।

रोग विकास

यह रोग क्लीस्टोथिसिया (कवक की सरंचना) द्वारा पौधों के अवशेषों के साथ खेत में रहकर जीवित रहता है। यह प्राथमिक निवेशद्रव्य का काम करता है। बेमौसम परपोषी पौधे भी कवक जाल के रूप में प्राथमिक निवेशद्रव्य उपलब्ध करवाते हैं। ये रोग देर से बोआई की गयी फसलों पर ज्यादा दिखई देता है

रोकथाम

- फसलों की बुआई समय पर करें।
- रोगग्रसित फसल अवशेषों को मृदा में गाड़कर नष्ट कर दें।
- डायनोकेप अथवा घुलनशील गंधक का 0.1 प्रतिशत की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन में पुनः दोहराना
- रोग की रोकथाम के लिए गंधक का चूर्ण 125 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर फरल पर भुरकाव करें।

लक्षण

इस रोग मैं पत्तो व तनो पर लम्बे चिपचीपे सफेद धब्बे दिखाई पड़ते है ! जो बाद में रुई जैसे सफेद कवक जाल की वृद्धि से ढक जाते है जब रोग की शुरूवात पत्ती से होती है तब पत्ती मुरझाकर नीचे की और लटक जाती है इस पौधों के तनों को चिरकर देखे जानें पर काले रगों के पिड़ (स्कलेरोटिनिया) बनते हैं। इस रोग से उपज में 40 प्रतिशत तक नुकसान होता है।

तना गलन

रोगजनक

यह रोग स्केलेरोटिनिया स्कलेरोटियोरम नाम कवक द्वारा पनपता है।

रोग विकास

जमीन की ऊपरी सतह से अधिक नमी व वातावरण में ठंडक इस रोग को पनपने व पेफैलाने में सहायक होते हैं। जिन खेतों में लगातार सरसों की फसल उगाई जाती है वहां पर स्केलेरोशिया का उत्पादन व अंकुरण अधिक होता है। अधिक नाइट्रोजन उर्वरक मिलने पर भी रोग के लिए पौधों की ग्रहणशीलता में बढ़ोतरी होती है।

रोकथाम

- फसल चक्र का प्रयोग करना चाहिए।

- रोग ग्रसित फसल अवशेषों को जला दें।
- बिजाई से पहले 2 ग्राम कारबेन्डाजिम 1 कि॰ग्रा॰ बीच के हिसाब से उपचारित करें।
- जिन क्षेत्रों में तना गलन रोग का प्रकोप हर साल होता है वंहा बिजाई के 45—50 दिन तथा 65—70 दिन बाद कारबेन्डाजिम का 0.1 प्रतिशत की दर से 2 छिड़काव करें।

फिलोडी व मरोड़िया (Phyllody)

लक्षण

पौधे बे ढ़ंगे हो जाते है। अस्वभाविक बढ़वार हो जाती है। जिससे पौधे झाड़ी के आकार के हो जाते है। फूलों की जगह पतियाँ आ जाती है।

रोकथाम

- तोरिया की अगेती बिजाई ना करें।
- शुरू में रोगी पौधों का निकाल दें।

रिहायशी क्षेत्रों में कोविड-19 के प्रसार की रोकथाम के लिए एडवाइजरी

स्वच्छता / कीटाणुशोधन

1. घर में प्रवेश द्वार के पास सैनिटाइजर रखा जाना चाहिए एवं घर में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को सैनिटाइजर का उपयोग करना चाहिए और किसी भी सतह या वस्तु को छूने से पहले साबुन से हाथ धोना चाहिए।
2. कार्यालय, बाजार या बाहर से यात्रा करके घर पहुंचने के बाद स्नान करने की सलाह दी जाती है।
3. प्रवेश द्वार, हैंडल और डोर पैन, डोर बेल, स्विच को नियमित रूप से सैनिटाइजर से साफ किया जाना चाहिए।
4. सीढ़ी की रेलिंग या दीवारों को छूना नहीं चाहिए। कृपया बच्चों को सुरक्षा मानदंडों को समझने व पूरी सावधानी बरतने हेतु भी कहें।
5. लोगों को घर से बाहर जाते समय एक निजी सैनिटाइजर भी रखना चाहिए।

सामाजिक दूरी और स्वास्थ्य की निगरानी

1. आवासों में रहने वालों को सामाजिक दूरी का पालन करते हुए अपने निवास के बाहर किसी के भी साथ सीधे संपर्क से बचना चाहिए।
2. आवासों के बाहर हर समय फेसमास्क पहनना अनिवार्य है। इसका पालन न करने पर सख्त प्रशासनिक कार्रवाई की जाएगी।

आरोग्य सेतु एप्लकेशन

सभी निवासियों को अपने मोबाइल फोन पर आरोग्य सेतु ऐप इंस्टॉल करना चाहिए और लोकेशन शेयरिंग व ब्लूटूथ को हमेशा ऑन रखना चाहिए। इससे आपको पता चलेगा कि आप किसी कोविड—19 पॉजिटिव व्यक्ति के करीब हैं या नहीं। भीड़भाड़ वाली जगहों पर जाने से पहले आरोग्य सेतु ऐप पर अपनी जोखिम की स्थिति की जाँच करें।

खांसी, जुकाम या सांस लेने में तकलीफ के लक्षण देखने पर क्या करें?

बुखार / खांसी / जुकाम के लक्षणों वाले व्यक्ति को घर पर तुरंत अलग कमरे में रखें व उसे नजदीकी अस्पताल से संपर्क करना चाहिए।

छोटे पैमाने पर डेरी प्रसंस्करण इकाई हेतु कुछ आवश्यक डेरी प्रसंस्करण उपकरण

23

अंकित दीप एवं पी. बर्नवाल
डेरी अभियांत्रिकी प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि, पशुपालन के साथ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। डेरी क्षेत्र सामाजिक–आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंग होता है। डेरी व्यवसाय लाखों ग्रामीण परिवारों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। डेरी व्यवसाय ग्रामीण क्षेत्र में लाखों घरों को आजीविका प्रदान करता है। यह शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के लोगों को गुणवत्ता वाले दूध और दूध उत्पादों की आपूर्ति सुनिश्चित करता है। दूध और दूध उत्पादों की देश में बढ़ती मांग के साथ तालमेल बनाए रखने के लिए डेरी उद्योग तेजी से बढ़ता प्रतीत हो रहा है।

भारतीय संस्कृति के लिए पारंपरिक दूध की मिठाइयाँ, जो कि पुराने समय से बनाई जा रही हैं, बहुत ही प्रासंगिक हैं। ये दूध के उष्मीयकरण द्वारा तैयार की जाती हैं और बाद में इसमें चीनी मिलाई जाती हैं। पुराने समय से ही भारतीय दूध की मिठाइयों ने लोगों की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और पोषण भलाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पारंपरिक दूध की मिठाइयों मूल्यवर्धित उत्पाद हैं और इनकी मांग भी ज्यादा होती है। अनुमानित रूप से उत्पादित दूध का लगभग 50 से 55 प्रतिशत भाग पारंपरिक उद्योग, जैसे हलवाई आदि, द्वारा विभिन्न प्रकार के भारतीय दूध उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है, जिसमें उष्मीयकरण और अम्लीय जमावट, ऊष्मीय निर्जलीकरण और किण्वन जैसी प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है।

पारंपरिक दूध मिठाइयों के निर्माण की विधियां उन तकनीकों पर आधारित हैं, जो समय के साथ अपरिवर्तित रहीं। इन्हें हलवाईयों के कौशल के आधार पर छोटे स्तर के क्षेत्र में असमान (बदलती) गुणवत्ता के साथ मैन्युअल रूप से (हाथ द्वारा) बनाया गया था। दूध–उत्पादन अधिक मात्रा में होने के बावजूद, पारंपरिक दूध मिठाइयाँ, मुख्य रूप से जैकेट वाले केतली या कड़ाही में निर्मित होते हैं, जिनमें स्वाभाविक रूप से कई कमियां होती हैं तथा ऊष्मीय प्रसंस्करण प्रक्रियाओं को नियंत्रित करने और अनुकूलन करने की संभावनाएं बहुत सीमित हैं। भारतीय बाजार में पारंपरिक दूध उत्पादों की व्यापक लोकप्रियता और स्वीकार्यता के बावजूद, संगठित क्षेत्र अभी तक इस बाजार की संभावनाओं के बावजूद उपयुक्त लाभ नहीं उठा पाए हैं, जिसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे कि तकनीक पर प्रकाशित साहित्य की कमी, वाणिज्यिक उत्पादन के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकियों की अपर्याप्तता, उपयुक्त पैकेजिंग सामग्री की अपर्याप्तता और उपभोक्ता मांग में नए पैटर्न का ध्यान तथा उपयुक्त लेबलिंग ना होना, कम रखरखाव अवधि और गुणवत्ता आश्वासन प्रणालियों की कमी आदि।

छोटे स्तर पर पारंपरिक दूध की मिठाइयों के निर्माण के लिए, डेरी प्रसंस्करण इकाइयों के डिजाइन में लचीलापन होना चाहिए, जैसे कि कच्चे या ताजे दूध और उत्पादों की सुविधाजनक और स्वच्छ हैंडलिंग, प्रसंस्करण के सभी प्रक्रियाओं के दौरान निरीक्षण की सुविधा और बहु–प्रक्रिया क्षमता के लिए उत्पाद की गुणवत्ता पर नियंत्रण आदि। छोटे पैमाने के अनुप्रयोगों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है, घरेलू स्तर के लिए बहुत छोटे स्तर (4 –5 लीटर दूध के लिए) तथा छोटे वाणिज्यिक या हलवाई स्तर (50 लीटर दूध तक)। इनमें उत्पादों को ताजा बनाया जाता है और खपत ज्यादातर एक–दो दिन में होती है।

छोटे स्तर के डेरी प्रसंस्करण इकाई हेतु कुछ महत्वपूर्ण डेरी उपकरण निम्नानुसार वर्णित हैंः

चित्र–1 : कड़ाही

कड़ाही

यह एक दो हैंडल वाला कटोरानुमा उपकरण है (चित्र–1)। आमतौर पर खोआ बनाने के लिए, एक कड़ाही में दूध, खोआ बनने में 20 से 25 प्रतिशत तक कम हो जाता है। कड़ाही में खोआ बनाने हेतु 5 प्रतिशत वसा युक्त भैंस के दूध तथा 4 प्रतिशत वसा युक्त गाय के दूध से 21 प्रतिशत और 13.5 प्रतिशत उत्पादन, क्रमशः प्राप्त किया जा सकता है।

खोआ व्यापक रूप से भारत और पड़ोसी देशों में पेड़ा, बर्फी, गुलाबजामुन, कलाकंद, आदि जैसे कई मिठाईयों को बनाने के लिए आधार सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है। कड़ाही का उपयोग अन्य डेरी उत्पादों को बनाने के लिए भी किया जा सकता है।

घूर्णन टब

इस मशीन (चित्र 2–3) में, एक टब (60–290 लीटर की क्षमता) थ्रस्ट बेयरिंग और बॉल बेयरिंग के साथ जुड़ा होता है। टब गियर–युक्त मोटर से चलता है। इसमें शाफ्ट एक विशेष रूप से बनाया गया है जिससे टब आसानी से बाहर आ सकते हैं और स्क्रैपर शाफ्ट के साथ नहीं लगते हैं। विशेष युग्मन (कपलिंग), एक 2 एचपी मोटर के साथ, शाफ्ट के ऑटो संरेखण (अलाइनमेंट) के लिए बनाया जाता है। इसके अलावा युग्मन (कपलिंग) को इस तरह से बनाया जाता है कि टब मोटर के बंद होने पर भी घुमाया जा सके। यह टब नरम स्टील एवं स्टेनलेस स्टील (एस.एस. 304) में व्यावसायिक रूप से उपलब्ध है और इसे (1/4–1 एच.पी. मोटर, हवा ब्लोअर द्वारा संचालित दो डीजल प्रज्वलित बर्नर से नीचे से गर्म किया जा सकता है। अनुमानित

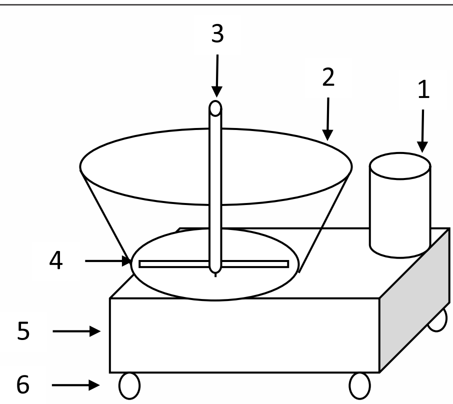

1 डीजल टैंक
2 घूर्णन टब
3 शाफ्ट
4 स्क्रैपर
5 मोटर, गियर और बर्नर के लिए आवास व्यवस्था
6 व्हील (पहिया)

चित्र 2 : घूर्णन टब का रेखाचित्र

चित्र 3 : घूर्णन टब प्रकार की मशीन

डीजल की खपत लगभग 3 से 4 लीटर/घंटा है। वैकल्पिक रूप से गैस, डीजल, दोहरी ईंधन गैस–डीजल या लकड़ी को गर्म करने के लिए ईंधन के रूप में उपयोग कर सकते हैं। इससे खोआ आदि दूध उत्पाद बनाया जा सकता है।

पनीर बनाने का उपकरण

पनीर भारतीय घरों में बहुत लोकप्रिय है। यह एक अम्लीय प्रसंस्करित दूध उत्पाद है। परंपरागत रूप से, यह एक मलमल के कपड़े में जमे हुए दूध के थक्के (कोएगुलम) को लटका कर, जल निकासी होने देने के साथ बचे हुए थक्के को दबा कर पनीर ब्लॉक का आकार देता है। यह इकाई प्रक्रिया कुछ हद तक अस्वास्थ्यकर है, जिसकी गुणवत्ता पर कम नियंत्रण है। पनीर बनाने से मट्ठा हटाने के दौरान लगातार तापमान समरूप बनाये रखना पड़ता है तथा एक समान बनावट के लिए जमे हुए थक्के को एक समान दबाव और दूध के ठोस पदार्थों के अत्यधिक नुकसान को रोकने के लिए एक उपयुक्त फिल्टर माध्यम का उपयोग करना होता है। घरेलू स्तर की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त 3 सेमी मोटी और लगभग 200 ग्राम वजन वाले पनीर ब्लॉक को ध्यान में रखते हुए, 1.5 से 3 लीटर दूध के लिए एक बैच प्रकार का पनीर भाकृअनुप–रा.डे.अनु.सं.,करनाल (चित्र 4) में बना है। इसका उपयोग घरेलु स्तर पर किया जा सकता है।

क्रीम विभाजक अनुलग्नक

डिस्क प्रकार सेंट्रीफ्यूज का उपयोग करके दूध से क्रीम पृथक्करण एक सदियों पुरानी प्रथा है। इसमें बाहर जाने वाले दूध से वसा को 0–1 प्रतिशत तक कम किया जाता है। उसी तकनीक का उपयोग करते हुए, भाकृअनुप–रा.डे.अनु.सं.,करनाल में एक छोटे पैमाने की इकाई विकसित की गयी है, जिसमें मापदंडों को लघु रूप करके इस तरह से बनाया गया है कि मिनी–बाउल और पैन एक अटैचमेंट यूनिट (अनुलग्नक) बनाते (चित्र 5) हैं। यह पृथक्करण

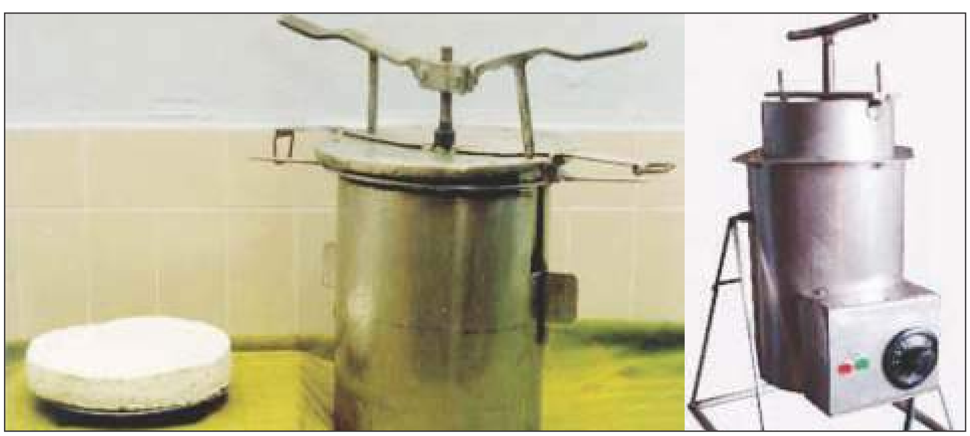

चित्र 4 : पनीर बनाने वाला उपकरण

चित्र 5 : क्रीम सेपरेटर अनुलग्नक

चित्र 6 : स्टीम जैकेटेड केतली

दक्षता को थोड़ा कम करता है। हालांकि पुनः प्रसंस्करण करके इसकी भरपाई की जा सकती है। इस अनुलग्नक में लगभग 30 लीटर दूध प्रति घंटे की दर से क्रीम को अलग करने की क्षमता है।

स्टीम जैकेटेड केतली

स्टीम जैकेटेड केतली एक वाष्पित करने वाला उपकरण है। यह भाप से उष्मीय प्रसंस्करण करने हेतु स्टेनलेस स्टील जैकेटेड केतली है (चित्र–6)। इसका निर्माण एक गोल आकार में किया जाता है, जो स्टेनलेस स्टील से बना होता है। इसमें एक आंतरिक पैन या 'केतली' और एक बाहरी पैन या 'जैकेट' शामिल होता है। इसका उपयोग जलीय तरल पदार्थों (जैसे कि दूध) से पानी के वाष्पीकरण के लिए किया जा सकता है। दूध के विभिन्न उत्पादों को तैयार करने के लिए दूध को गर्म करने के लिए स्टीम जैकेटेड केतली (क्षमताः 25 लीटर) का उपयोग किया जा सकता है। भाप का उपयोग ऊष्मा हस्तांतरण माध्यम के रूप में किया जाता है।

निष्कर्ष

घरेलु और कुटीर स्तर (हलवाई या मिठाई बनाने वाला) पर छोटे स्तर के डेरी प्रसंस्करण उपकरणों की आवश्यकता होती है। यह दूध और दूध उत्पादों के रखरखाव अवधि (शेल्फ जीवन) को बढ़ाने में उपयोगी होता है। छोटे पैमाने पर विभिन्न डेरी उपकरण कड़ाही, घूर्णन टब प्रकार की मशीन, पनीर बनाने का उपकरण, क्रीम विभाजक अनुलग्नक, स्टीम जैकेटेड केतली आदि हैं। इन छोटे पैमाने के उपकरणों को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार संशोधित किया जा सकता है।

बकरी का दूधः एक स्वास्थ्य वर्धक पेय

सोनिया सांगवान, रमन सेठ एवं वांगदरे सचिन सुभाष
डेरी रसायन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

24

बकरी के दूध के फायदे

बकरी के दूध के फायदे और गाय के दूध के फायदे में अक्सर तुलना की जाती है। दोनों ही दूध स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होते हैं, लेकिन किसका उपयोग किया जाए यह जानना सभी की जिज्ञासा होती है। यह सच है कि गाय का दूध बहुत ही फायदेमंद होता है, लेकिन बकरी के दूध के फायदे भी कम नहीं हैं। बकरी का दूध वजन कम करने, पाचन को ठीक करने, बहुत से पोषक तत्त्व दिलाने, प्रतिरक्षा बढ़ाने, हड्डियों को मजबूत करने जैसे फायदे दिलाने के लिए उपयोग किया जाता है। बकरी के दूध का नियमित सेवन व्यस्कों और बच्चों दोनों के लिए लाभदायक होता है। इस लेख में बकरी के दूध को पीने से फायदे और नुकसान की जानकारी दी जा रही है।

अपने स्वास्थ्य गुणों के कारण बीते कुछ समय से बकरी का दूध बहुत ही लोकप्रिय हो रहा है। बकरी के दूध में बहुत से पोषक तत्त्व होते हैं, जो हमारे स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त होते हैं। बकरी के दूध में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, शर्करा और सोडियम आदि शामिल होते हैं। इस स्वास्थ्य वर्धक दूध में कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम, तांबा, और जिंक जैसे खनिज पदार्थ भी काफी प्रचूर मात्रा में होते हैं। इनके अलावा बकरी के दूध में विटामिन ए, विटामिन बी और विटामिन सी की प्रचूर मात्रा होती है।

हृदय के लिए बकरी के दूध के फायदे

बकरी के दूध में मैग्नीशियम खनिज की प्रचूर मात्रा रहती है। यह खनिज दिल के लिए बहुत ही फायदेमंद होता है। मैग्नीशियम का सेवन करने से दिल की धड़कन को नियमित बनाए रखने में मदद मिलती है। मैग्नीशियम का एक और लाभ यह है कि यह रक्त के थक्के और कोलेस्ट्रॉल को बढ़ने से रोकता है। मैग्नीशियम विटामिन डी के साथ मिलकर हृदय को स्वस्थ रखता है।

बकरी के दूध में मध्यम–चेन फैटीएसिड भी होते हैं जो वास्तव में गाय के दूध की अपेक्षा अधिक होते हैं। ये फैटी एसिड कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करते हैं। बकरी के दूध का नियमित सेवन करने से यह अच्छे कोलेस्ट्रॉल के स्तर को भी बढ़ा सकता है।

चयापचय (मेटाबॉलिज्म) में बकरी के दूध के लाभ

शरीर की चयापचय क्षमता को बढ़ाने में बकरी का दूध मददगार है। ऐसा इसलिए है क्योंकि बकरी के दूध में आयरन, कैल्शियम, फास्फोरस और मैग्नीशियम जैसे खनिज अच्छी मात्रा में होते हैं, जो चयापचय को बढ़ावा देते हैं। चयापचय प्रक्रिया मानव शरीर में पर्याप्त पोषण तत्वों को उपलब्ध कराने में मदद करती है।

प्रतिरक्षा में बकरी के दूध के लाभ

मानव शरीर की प्रतिरक्षा शक्ति को बढ़ाने के लिए बकरी के दूध का उपयोग बहुत ही असरदार होता है। गाय के दूध में सेलेनियम की बहुत कम मात्रा होती है, लेकिन बकरी के दूध में इसकी मात्रा बहुत अधिक होती है। यह दुर्लभ खनिज प्रतिरक्षा प्रणाली की कार्य क्षमता में एक महत्वपूर्ण घटक है, जो हमें बहुत सी बीमारियों और संक्रमण से बचाता है।

संपूर्ण विकास के लिए बकरी के दूध का उपयोग

शरीर के संपूर्ण विकास के लिए प्रोटीन की आवश्यकता होती है। बकरी के दूध में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन होता है, जो समग्र विकास में मदद करता है। प्रोटीन हमारे शरीर में कोशिकाओं, ऊतकों, हड्डियों और मांसपेशियों के निर्माण में मदद करता है। बकरी के दूध का प्रयोग करके आप प्रोटीन की कमी को पूरा कर सकते हैं, जो आपके संपूर्ण स्वास्थ और विकास को बढ़ावा देने में मदद कर सकता है।

हड्डियों को मजबूत करने में बकरी के दूध के गुण

कैल्शियम की प्रचूर मात्रा बकरी के दूध में होती है। कैल्शियम के साथ बकरी के दूध में एमिनों एसिड ट्रिप्टोफेन भी अच्छी मात्रा में होते हैं जो हमारी हड्डियों और दांतों को मजबूत करते हैं। ऑस्टियोपोरोसिस और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं से बचने के लिए बकरी के दूध का सेवन किया जा सकता है।

गर्भावस्था में बकरी के दूध के फायदे

गर्भावस्था के दौरान बकरी का दूध विशेष रूप से अच्छा माना जाता है। इसमें मौजूद पोषक तत्त्व गर्भवती महिला और उसके बच्चे के संपूर्ण स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में मदद करते हैं। मां के लिए पौष्टिक होने के साथ ही यह शिशुओं के लिए भी फायदेमंद होता है। बकरी के दूध में A2 बीटा–केसिन होता है जो A1 बीटा–केसिन से अधिक स्वास्थ्यवर्धक होता है जोकि गाय के दूध मे होता है। बकरी के दूध में A2 बीटा–केसिन मौजूद पोषक तत्व मां के दूध के बराबर होते हैं। इसलिए ऐसा माना जाता है कि यह मानव स्वास्थ्य के लिए सबसे अच्छा होता है। अध्ययन बताते हैं कि स्तनपान अवधि के बाद बच्चों को इसके सेवन से कम एलर्जी होती है। लेकिन हमेशा बकरी के उबले हुए दूध का ही सेवन किया जाना चाहिए। कच्चे दूध का उपयोग करने से बचना चाहिए।

पाचन में बकरी के दूध के लाभ

गाय के दूध की अपेक्षा बकरी का दूध आसानी से पचाया जा सकता है। इसका मतलब यह है कि बकरी का दूध छोटे बच्चों के लिए बहुत ही फायदेमंद होता है। बकरी के दूध में वसा ग्लोब्यूल की कम मात्रा मौजूद रहती है जो दूध को आसानी से पचाने में मदद करती है। पेट में जाने के बाद बकरी के दूध में मौजूद प्रोटीन एक नरम दही बनाता है। बकरी के दूध का सेवन करने से, यह जलन को भी कम करता है। यदि गाय का दूध पचाने में दिक्कत हो रही हो तो बकरी का दूध एक अच्छा विकल्प हो सकता है।

मस्तिष्क स्वास्थ्य के लिए बकरी के दूध का फायदा

अध्ययनों से पता चलता है कि बकरी के दूध में मौजूद लिपिड चिंता को कम कर सकते हैं। बकरी के दूध में संयुग्मित लिनोलेइक एसिड भी होता है जो मस्तिष्क के विकास को बढ़ावा देने में मदद करता है।

त्वचा के स्वास्थ्य में बकरी दूध के फायदे

फैटी एसिड और ट्राइग्लिसराइड्स की अच्छी मात्रा मौजूद होने के कारण बकरी का दूध त्वचा के लिए लाभकारी होता है। यह इसलिए भी संभव है क्योंकि बकरी का दूध क्षारीय होता है जो त्वचा को नुकसान नहीं पहुंचाता है। इसके अलावा बकरी के दूध में विटामिन ए भी अच्छी मात्रा में होता है, जो त्वचा के लिए महत्वपूर्ण घटक होता है। इस दूध में मौजूद लैक्टिक एसिड त्वचा को हाइड्रेट रखता है और इसकी चमक को बढ़ाता है। सुबह चेहरे को धोने के लिए बकरी के दूध का उपयोग किया जा सकता है। यह त्वचा को अतिरिक्त पोषण दिलाने में मदद करता है।

बालों के स्वास्थ्य के लिए बकरी के दूध का उपयोग

बालों का स्वस्थय शरीर के संतुलित pH पर निर्भर करता है। बकरी के दूध का नियमित सेवन करने से यह

आपके शरीर के pH मान को संतुलित करता है। यही कारण है कि बकरी का दूध बालों के विकास के लिए फायदेमंद होता है। आप अपने बालों को धोने के लिए भी बकरी के दूध का उपयोग कर सकते हैं। ऐसा करने से आपके बालो के स्वास्थ्य में सुधार होगा। आप अपने बालों पर शैम्पू करने की अपेक्षा बकरी के दूध का उपयोग करने की कोशिश करें। सिर धोने के बाद आप अपने पसंदीदा कंडीशनर का उपयोग कर सकते हैं।

खून की कमी दूर करने मे बकरी के दूध के फायदे

गाय और बकरी के दूध में समान गुण हो सकते हैं फिर भी बकरी का दूध अधिक फायदेमंद माना जाता है। शोधकर्ताओं के अनुसार एनीमिया और ऑस्टियोपोरोसिस से ग्रसित रोगीयों को नियमित रूप से बकरी के दूध का सेवन करना चाहिए। अध्ययनों से पता चलता है कि बकरी के दूध में कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम और फॉस्फोरस आदि पोषक तत्वों की उपस्थिति के कारण यह शरीर के लिए बहुत ही फायदेमंद होता है। इसमें मौजूद आयरन की अधिक मात्रा शरीर में लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन को बढ़ावा देती है। जिससे ऑस्टियोपोरोसिस और एनीमिया जैसी समस्याओं से निपटने में मदद मिलती है। आप इस प्रकार की समस्याओं से बचने के लिए बकरी के दूध का उपयोग कर सकते हैं।

बकरी के दूध का उपयोग कैसे करेंः जिस तरह से आप गाय के दूध का उपयोग करते हैं, उसी तरह से आप बकरी के दूध का भी उपयोग कर सकते हैं। लेकिन, यदि आप बकरी के दूध को कुछ घंटों बाद उपयोग करते हैं या फिर आप बाजार से पैक्ड बकरी का दूध लाते हैं, तो इसे उबाल कर पीने की सलाह दी जाती है। आप बकरी के दूध को सुबह शाम पी सकते हैं। इसे और अधिक प्रभावी बनाने के लिए गाय के दूध में मिलाए जाने वाली जड़ी–बूटीयों आदि को भी मिलाया जा सकता है। जिन लोगों को बकरी के दूध का सेवन करने में गंध की वजह से परेशानी होती है, वे पहले दूध को उबाल लें और फिर इसे ठंडा करने के बाद पीये। इससे बकरी के दूध की गंध कम हो सकती है।

गाय के दूध से बने दही की तरह भी बकरी के दूध से बने दही का उपयोग उन लोगों के लिए फायदेमंद होता है, जो दूध को सीधे नहीं पी सकते हैं। आप बकरी के दूध का उपयोग कर पनीर, मिठाई और अन्य खाद्य पदार्थ भी बना सकते हैं ।

बकरी के दूध के नुकसानः दुनिया में मौजूद सभी चीजें अच्छी और बुरी दोनों ही होती है। इसी तरह बकरी का दूध बहुत ही फायदेमंद होता है, लेकिन कुछ लोगों के लिए यह नुकसानदायक भी हो सकता है।

बकरी के दूध के नुकसान क्या हैं

1. बच्चों को स्तन पान बंद कराने के तुरंत बाद बकरी के दूध का सेवन नहीं कराया जाना चाहिए।
2. यह दूध पौष्टिक होता है लेकिन शुरुआती समय में गाय के दूध का ही सेवन कराया जाना चाहिए।
3. कुछ लोगों को बकरी के दूध से एलर्जी हो सकती है।
4. अधिक मात्रा में बकरी का दूध लेने पर आपको पेट दर्द और दस्त जैसी समस्याएं हो सकती हैं।

निष्कर्ष

अतः, हम कह सकते हैं कि बकरी का दूध मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभदायक हैं, लेकिन इसके साथ ही कुछ नकारात्मकता भी देखने को मिलती है। फिर भी, हम यही कहेंगे कि बकरी के दूध का सेवन मानव स्वास्थ्य के लिए अपने महत्वपूर्ण गुणों के कारण एक उत्तम औषधि हैं।

25 खरीफ में उगाए जाने वाले दलहनी चारे

सूर्यकांता कश्यप, संदीप कुमार, राकेश कुमार, बिश्वरंजिता बिश्वाल, हरदेव राम एवं उत्तम कुमार
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

हमारे देश में पशुओं के लिए हरे चारे की 35.6 प्रतिशत और सूखे चारे की 11 प्रतिशत कमी आंकी गयी है जिसकी वजह से हम पशुओं को पौष्टिक आहार प्रदान नहीं कर पाते है। इस आवश्यक पौष्टिक आहार की कमी को पूरा करने के लिए दलहनी फसलों को चारे के रूप में उपयोग किया जा सकता है। दलहनी फसलों में प्रोटीन की मात्रा 15 प्रतिशत पाई जाती हे जो अन्य फसलों की अपेक्षा यह 2–3 गुना अधिक होती हे। प्रोटीन की साथ साथ अन्य पौष्टिक तत्व जैसे खनिज पदार्थ, विटामिन व अन्य पौष्टिक तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। खरीफ में उगाये जाने वाले दलहनी चारे में लोबिया और ग्वार पशुओं के लिए उपयोगी पाया गया है।

1. लोबिया

लोबिया का चारा, हरी खाद, सब्जी और अन्य बहुआयामी उपयोग है। लोबिया पशुधन चारे का सस्ता स्रोत है तथा इसका दाना मानव आहार का भी पौष्टिक घटक है। इसके दाने में 22–24 प्रतिशत प्रोटीन, 55–66 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट,0.08–0.11 प्रतिशत कैल्शियम और 0.005 प्रतिशत आयरन होता है। इसके अलावा इसमें आवश्यक एमिनो अम्ल जैसे लाइसिन, लीयूसीन, फिनाइलएलनिन भी पाया जाता है।

जलवायु एवं भूमि

लोबिया की खेती गरम मौसम और अर्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इस फसल के लिए तापमान 20–30 डिग्री सेल्सियस के बीच आवश्यक है। यह ठंड के प्रति संवेदनशील है एवं 15 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान से पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अच्छे जल निकास, प्रचुर रूप से कार्बनिक पदार्थ कम लवणीय या क्षारीय मृदा इसके लिये विशेष रूप से उपयुक्त है। ये फसल लगभग सभी प्रकार की भूमि में प्रबंधन के साथ उगाई जा सकती है। यद्यपि लोबिया की फसल मटियार या रेतीली दोमट भूमि में अच्छी होती है। भूमि को अच्छी तरह तैयार करने के लिये दो बार जुताई करे।

उन्नत किस्में

लोबिया–74, एच एफ सी –42–1(हरा लोबिया), टाइप–21, जी एफ सी–1,2,3,4, यूपीसी–5286, सी –5, यूपीसी –5287,यूपीसी –287,लोबिया–88, बुन्देल लोबिया–1,2 व सी एस–88

बुवाई का समय

हरे चारे की अधिक पैदावार के लिये सिंचित इलाकों में मई के पहले सप्ताह और वर्षा पर निर्भर इलाकों में बरसात शुरू होते ही बीज देना चाहिए।

बीज दर एवं बीज उपचार

आमतौर पर चारे एवं हरी खाद के लिये 30–35 किलोग्राम प्रति हेक्टर बीज दर की आवश्यकता होती है। कतार से कतार की दूरी 30 सेमी रखकर बोये या ड्रिल द्वारा बिजाई करे। बीज को बुवाई से पहले थीरम 2

लोबिया

ग्वार

ग्राम +कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से शोधित करे। इसके बाद लोबिया को विशिष्ट राइजोबियम कल्चर 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करके बुवाई करना चाहिए।

खाद

दाल वाली फसल होने के कारण इसे नाइट्रोजन की आवश्यकता कम पड़ती है। 10 किलोग्राम नाइट्रोजन तथा 25 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हेक्टर के हिसाब से पहले लाइनों में ड्रिल कर देना चाहिए।

सिंचाई

खरीफ की फसलों में सिंचाई की अपेक्षा जल निकास करना अधिक जरुरी होता है। मई में बोई जाने वाली लोबिया की फसल में मानसून आने तक हर 15 दिन बाद सिंचाई की जरुरत होती है। कुल मिलकर 4–5 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

कटाई

लोबिया से हम दो कटाई ले सकते है। पहली कटाई बिजाई के 55 दिन बाद व दूसरी कटाई फसल में फूल आने से पूर्व। इसी प्रकार से गर्मियों में हरा चारा मिलता रहेगा साथ ही चारे की पैदावार भी सामान्य वधि की मुकाबले अधिक मिलेगी। लोबिया की फसल से 250–350 क्विंटल हरा चारा प्रति हेक्टर प्राप्त हो जाता है।

2. ग्वार

ग्वार शुष्क को सहन कर सकता है इसी कारण वर्षा पर निर्भर इलाकों में एक मूल्यवान चारे की फसल है। ग्वार के दाने में लगभग 37–45 प्रतिशत प्रोटीन, 1.4–1.8 प्रतिशत पोटेशियम, 0.40–0.80 प्रतिशत कैल्सियम और 0.15–0.20 प्रतिशत मैग्नीशियम पाया जाता है। इसके दानों का 14–17 प्रतिशत छिलका तथा 35–42 प्रतिशत भूणपोष होता है। इसके दाने में 30–33 प्रतिशत गोंद पाया जाता है।

जलवायु एवं भूमि

यह चारा फसल 30–40 सेमी बारिश होने वाले इलाकों में आसानी से उगाया जा सकता है। 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान ग्वार के लिये आवश्यक है। यह फसल अत्यधिक बरसात व ठण्ड को सहन नही कर पाती है। शुष्क और अर्ध शुष्क दशाओं में इसकी खेती आसानी से की जा सकती है। यह फसल 45–46 डिग्री सेल्सियम तापमान को सहन कर सकती है।

उचित जल निकास वाली दोमट व बलुई दोमट मिट्टी ग्वार के लिये सर्वोत्तम है। सिंचित एवं असिंचित दोनों क्षेत्रों में यह फसल सफलता पूर्व उगाई जा सकती है। मध्यम से हल्की भूमि जिसकी पी एच मान 7.0–8.5

तक को ग्वार की खेती के लिये सर्वोत्तम माना जाता है। अधिक नमी वाले क्षेत्रों में इस फसल की वृद्धि रुक जाती है।

उन्नत किस्में

दुर्गाजय , दुर्गापुरा सफेदा, अगेता ग्वार –111, एफ एस –277, एच जी–75, ग्वार–80, एच जी–182, बुन्देल ग्वार–1,2,3, ग्वार क्रांति

बुवाई की समय

ग्वार की फसल की बुवाई अप्रैल से लेकर मध्य जुलाई तक कर सकते है।

बीज दर एवं बीज उपचार

चारे के लिये 40–45 किलोग्राम प्रति हेक्टर बीज दर की आवश्यकता होती है। कतार से कतार 30 से॰मी॰ रखकर पोरें या ड्रिल द्वारा बीजाई करे। बीज को बुवाई से पहले थीरम 2 ग्राम +कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से शोधित करे। इसके बाद ग्वार को विशिष्ट राइजोबियम कल्चर 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करके बुवाई करना चाहिए।

खाद

दाल वाली फसल होने के कारण इसे नाइट्रोजन की आवश्यकता कम पड़ती है। 10 किलोग्राम नाइट्रोजन तथा 25 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हेक्टर के हिसाब से बुवाई से पहले लाइनों में ड्रिल कर देना चाहिए।

सिंचाई

ग्वार खेत में भरे पानी को सहन नहीं कर पाती है इसलिए अधिक वर्षा होने पर जल निकास करना जरुरी है। कुल मिलकर 4–5 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

कटाई

चारे के लिये ग्वार को फूल आने पर या फलियाँ बनने के पूर्व ही (बुवाई के 50–55 दिन बाद) काटना चाहिए। ग्वार की फसल से 250–300 क्विंटल हरा चारा प्रति हेक्टर प्राप्त हो जाता है।

ढैंचा-हरी खाद का उत्तम विकल्प

बिश्वरंजिता बिश्वाल, सूर्यकांता कश्यप, राकेश कुमार, राजेश कुमार मीणा, हरदेव राम एवं उत्तम कुमार
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

26

बढ़ती आबादी की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु प्रति क्षेत्रफल अधिक उत्पादन के दबाव के कारण मिट्टी की उत्पादन शक्ति कम होती जा रही है। भारत के विभिन्न क्षेत्रो से मिट्टी की नमूना परिक्षण से यह पता चला है की मिट्टी में जैविक कार्बन के मात्रा कम हो गयी है। जैविक कार्बन की विशेषता यह है की मिट्टी में पानी और पोषक तत्वों को अधिक समय तक बांध कर रखती है। यह मिट्टी को एक साथ चिपकाने में मदद करता है, जो सूक्ष्म जीवाणु द्वारा मिट्टी में मिलाये गये पौधों को सड़ने में सहायता करती है। अतः मिट्टी की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने के लिए मिट्टी मे जैविक कार्बन की मात्रा को बढ़ाना आवश्यक है। मिट्टी मे जैविक कार्बन और पोषक तत्वों की मात्रा बढाने के लिए देसी खाद का उपयोग रसायनिक उर्वरक से बेहतर माना जाता है। रसायनिक उर्वरकों का मृदा स्वास्थ्य, माइक्रोबियल जनसंख्या, मिट्टी संरचना और उर्वरा शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दूसरी तरफ इतनी भारी मात्रा में देसी खाद का मिलना भी मुश्किल है। इसलिए, हरी खाद (ग्रीन मन्योरिंग), देशी खाद (कम्पोस्ट या गोबर खाद) की कमी की मात्रा को पूरा कर सकती है। हरी खाद का अर्थ है हरी फसलों को फूलों की अवस्था में मिट्टी में मिलाना। इस उद्देश्य के लिए उगाई जाने वाले फसलों को हरी खाद वाली फसल कहा जाता है। कुछ फसलों की जड़ों में गाठें होती है जिनमें राइजोबियम के सहजीवन द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण होता है जो मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाती है। इस तरह बाद में ऊगाई जाने वाली फसल के लिए आवश्यक उर्वरक का काम करती है। हरी खाद की फसलों के विविध उपयोग हैं, वे कवर फसलों के रूप में कार्य करती है और बारिश के मौसम में मिट्टी के कटाव को रोकती है। पशुओं के चारे के लिए और बाद में हरी खाद के रूप में फॉरेज लेग्यूम फसलों को जल्दी से काटा जा सकता है।

ढैंचा (सस्बेनिया एक्यूलेटा)

यह लेग्यूमिनेसी फैमिली का एक तेजी से बढ़ने वाला पेड़ है। ढैंचा को हम आमतौर पर हरी खाद की फसल के हिसाब से भारत में उगाते हैं। ढैंचा प्राचीन काल से भारत में पशुओं का चारा और मिट्टी में सुधार लाने के लिए उपयोग किया जाता है। यह एक आदर्श हरी खाद की फसल है क्योंकि यह कम नमी में भी तेजी से बढ़ती है। यह रसीला है और आसानी से विघटित हो जाती है। यह मिट्टी में जैविक नाइट्रोजन की मात्रा को अधिक बढ़ाता है। यह पशु चारा, जमीन को ढकने, जलाऊ इधंन और अन्य पारम्परिक कृषि प्रणालियों के लिए भी उगाया जाता है। यह 10 एम.एस./सी.एम. तक विद्युत् चालकता वाले खारे मिट्टी में उगाया जा सकता हे। इस फसल को हरी खाद के रूप से उपयोग करने से लवणीय और क्षारीय मिट्टी मे भी सुधार होता है। इसकी उत्पत्ति एशिया और उत्तरी अफ्रीका से हुई है। यह एक वार्षिक पौधा है जो आमतौर पर ऊंचाई में 1–2 मीटर तक होता है। इसकी अधिकतम ऊंचाई 7 मीटर तक होती है। इसका तना रेशेदार होता है और इसके फूलों का रंग पीला होता है।

ढैंचा

जलवायु एवं भूमि

ढैंचा विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में बोया जा सकता है। हरी खाद की फसल के लिए इसे जुलाई–अगस्त में बोया जाता है। इसे उसके फूल आने की अवस्था में 45 दिन के बाद मिट्टी में मिला दिया जाता है। यह फसल एक महीने के बाद भूमि में विघटित (डिकम्पोज) हो जाती है, इसके बाद अगली फसल बोई जा

सकती है। इसे मिश्रित फसल के रूप में भी उगाया जा सकता है। पहली निराई के समय फसल की कतारों के बीच ढैंचा के बीज की बुवाई कि जा सकती है। फूल आने की अवस्था में इसे काट कर खेत में छोड़ दिया जाता है और मिट्टी में मिला दिया जाता है। यह केवल चौड़ी लाइनों में बोए जाने वाली मुख्य फसलों में संभव है। यह फसल 9.5 ज्यादा पी.एच. वाली मिट्टी के साथ–साथ खारी मिट्टी में भी उगाई जा सकती है।

बीज दर, बुआई और बीज उपचार

फसल का बीज हमेशा प्रमाणित स्रोत से ही खरीदना चाहिए। हरी खाद के लिए 50 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। इसकी बुवाई बीज को खेत में छिड़क कर (ब्रॉडकास्ट) व लाइन मे भी कि जा सकती है। बीज के उद्देश्य से बोई जाने वाली हरी खाद की फसलों के लिए 18–20 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की दर से लाइनो मे ही बोना आवश्यक है। बीज को विशेष प्रकार के राइजोबियम से 200 ग्राम की दर से प्रति 10 किलोग्राम के साथ मिश्रित करके बोना चाहिए। हरी खाद के उद्देश्य के लिए इसे छिड़काव विधि से (ब्रॉडकास्ट) किया जाता है और बीज के उद्देश्य से इसे 45 से॰मी॰ कतार से कतार व 20 सेमी पौधे से पौधे की दूर पर बोया जाता है।

सिंचाई

गर्मियों मे बोई गयी ढैंचा की फसल के लिए प्रत्येक 10 दिनों के अंतराल पर कुल 4 सिंचाई 45 दिनों तक करना आवश्यक होता है।

उपज

45 दिन मे यह फसल 25 टन हरा बायोमास का उत्पादन देती है। बीज की उपज 500 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

दलहनी हरी खाद की फसलें

दलहनीय हरी खाद को दूसरे हरी खाद के तुलना से बेहतर माना जाता है। ढैंचा के अलावा मूंग, लोबिआ, ग्वार, उडद, अजोला, मटर, मसूर इत्यादि को भी हरी खाद के लिए उगाया जा सकता है।

हरी पत्ती की खाद

नीम, ग्लेयरीसेडिया, कैसिया तोरा, जेट्रोफा, टेफरोसिया आदि पेड़ों की हरी पत्ती को भी उपयोग मे लिया जा सकता है। पेड़ों की पत्तियों को अधिक मात्रा में संग्रह करके फसल बोने के एक महीने बाद या जब खेत खाली हो तब मिट्टी में मिलाया जा सकता है।

हरी खाद की नाइट्रोजन जमा करने की क्षमता (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)

ढैंचा	–70–80
उडद व मूंग	–35–38
लोबिया	–57 –60
मटर	–70–80

गर्मी के तनाव से आण्विक स्तर पर परिवर्तन के कारण मवेशियों के स्वास्थ्य और दूध उत्पादन में कमी

27

दीपक चौरसिया[1], अंजली अग्रवाल[2] एवं गौतम कौल[1]

[1]पशु जैव रसायन प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

[2]पशु शरीर क्रिया अनुभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

पर्यावरण एक बहुत महत्वपूर्ण कारक है जो की मवेशियों में उत्पादकता तथा विकास को प्रभावित करता है। पर्यावरण के कई जैविक और अजैविक कारक है जो मवेशियों के विकास और उत्पादकता पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव डालते हैं जिसमे उष्मागत तनाव एक महत्वपूर्ण अजैविक कारक है। उष्मागत तनाव एक ऐसी अवस्था है जो अत्यधिक गर्मी के संपर्क में आने के कारण हो जाती है। यह अवस्था तब आती है जब शरीर गर्म वातावरण की प्रतिक्रिया में स्वस्थ तापमान (सामान्य) बनाए रखने में असमर्थ हो जाता है जो कि एक अस्थायी अवस्था है और मवेशियो में दुग्ध उत्पादन, विकास तथा स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। वैश्विक तापमान के कारण दिन प्रतिदिन पर्यावरण का तापमान बढता जा रहा है जो उष्मागत तनाव पर सकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। इसके असर को मवेशियों के शरीर के तापमान, उपापचय दर तथा दुग्ध उत्पादकता से मापा जा सकता है और यह मवेशियों के यौन स्वास्थ्य में गिरावट का एक प्रमुख कारण भी है तथा ये मवेशियों के उपापचय विकार तथा दुग्ध उत्पादन के गिरावट मे पूर्ण रूप से भाग लेता है। उष्मागत तनाव से मवेशियों के शरीर के तापमान में वृद्धि, विकास में अवरोध, उपापचय दर में परिवर्तन, दूध उत्पादन और संगठन में कमी, प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया में कमी तथा यौन स्वास्थ्य में गिरावट होती है। मवेशियों में आयी इस कमी का मुख्य कारण भौतिक, रासायनिक, कोशिकीय तथा आणविक स्तर में होने वाले परिवर्तन है। आणविक स्तर पर उष्मागत तनाव से राइबोन्यूक्लिक एसिड (संकेतीकरण और छोटे), प्रोटीन, वसा, विटामिन्स, हॉर्मोन्स तथा कार्बोहाइड्रेट्स के संश्लेषण में कमी आती है जो मवेशियों में विकास तथा दुग्ध उत्पादन के महत्वपूर्ण अणु है तथा रासायनिक रूप से तनाव के कारण मवेशियों में मुक्त मूलक तथा एंटीऑक्सीडेंट के उत्पादन में महत्वपूर्ण परिवर्तन आते है जो कोशिकीय मृत्यु तथा स्वपोषी के कारक होते है जिसके कारण स्तन ग्रंथि के विकास तथा स्वास्थ्य में अवरोध उत्पन्न होता है जिससे डेरी उत्पादन के क्षेत्र में भारी कमी आती है।

ऊष्मागत तनाव का मवेशियों पर प्रभाव

1. **शरीर के तापमान में वृद्धिः–** उष्मागत तनाव एक बहुत बड़ी समस्या है जो पशुओ की उत्पादकता पर नकारात्मक असर डालता है। उष्मागत तनाव से भोजन (पोषण) ग्रहण करने तथा उत्पादकता में कमी और मलाशय का तापमान तथा श्वसन दर में बढ़ोत्तरी होती है। खाद पदार्थ के अवशोसन में आयी कमी की वजह से दुग्ध उत्पादन बाधित होता है। उष्मागत तनाव दुग्ध उत्पादकता, दुग्ध में वसा, प्रोटीन तथा लैक्टोज में कमी करता है। मवेशियों में एक डिग्री तापमान में वृद्धि से 0.85 कि.ग्रा. भोजन ग्रहण करने में कमी आती है जिससे 36 प्रतिशत तक दुग्ध उत्पादन घटता हैं।

2. **मवेशियों के विकास में अवरोधः–** मवेशियों के विकास तथा उत्पादकता के लिए उपयुक्त पर्यावरण तथा पोषण की जरुरत होती है जो उनके विकास पर सकारात्मक असर डालते है लेकिन उष्मागत तनाव से कई ऐसे उतार–चढ़ाव आते है जो मवेशियो के विकास में अवरोध उत्पन्न होता है, जिनमे भोजन ग्रहण करना, प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा हॉर्मोन्स का संश्लेषण प्रमुख है। हॉर्मोन्स विकास के लिए एक अहम् कारक है, पर बढे हुए तापमान की वजह से इनके संश्लेषण में विध्न आता है जिससे इनका विकास बाधित होता है।

3. **दूध उत्पादन और संगठन में कमीः–** विश्व में पशुधन से बहुत सारी जरूरते पुरी होती है जिनमे पोषण तथा कृषि प्रमुख है। पोषण की जरूरते मवेशियों के दुग्ध तथा घी से पूरी होती है। इनके सही संश्लेषण के लिए पशुओ को भरपूर आहार तथा पर्यावरण की जरुरत होती है परंतु उष्मागत तनाव की वजह से परिस्थितियां पूरी नही हो पाती है जो मवेशियो में विकास तथा उत्पादकता में कमी की मुख्य वजह है (चित्र 1)।

4. **प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया में कमीः–** उष्मागत तनाव विभिन्न तरह से मवेशियों के थन पर प्रभाव डालता है। गाये गर्मी के दिनों में थनैला और एंडोमेट्राइटिस रोग के लिए ज्यादा प्रवृत्त होती है। उष्मागत तनाव सूखे के दिनों में स्तन ग्रंथि पर नकारात्मक असर करता है जिससे स्तन ग्रंथि के विकास तथा दुग्ध उत्पादन में कमी आती है। इस कमी का मुख्य कारण उष्मागत तनाव से स्तन ग्रंथि की कोशिकाओ की मृत्यु और स्तन ग्रंथि स्वपोषी होना है।

5. **यौन स्वास्थ्य में गिरावटः–** उष्मागत तनाव विभिन्न प्रकार के जैव अणूओ के संश्लेषण को बाधित करता है जिनमे राइबोन्यूक्लिक एसिड (संकेतीकरण और छोटे), प्रोटीन,वसा, विटामिन्स, हॉर्मोन्स तथा कार्बोहाइड्रेट्स प्रमुख है। लैक्टोज शुकाणुओ के लिए उर्जा का मुख्य स्रोत है। उष्मागत तनाव से लैक्टोस के संश्लेषण में कमी के कारण शुकाणुओ में उर्जा की क्षति होती है जो शुकाणुओ की मृत्यु का मुख्य कारण होता है। लैक्टोज की कमी के कारण शुकाणुओ की संख्या में भी कमी आती है, जो मवेशियों की प्रजनन क्षमता को बाधित करता है।

उष्मागत तनाव से आणविक स्तर पर बदलाव और उसका मवेशियों के स्वास्थ्य तथा दुग्ध उत्पादन पर असर

विश्व में पशुधन आय का एक मुख्य साधन है जो आय के साथ साथ पोषण की जरूरतों को पूरा करता है। पशुधन से दुग्ध के अलावा खाल, हड्डीयाँ, सींग तथा खाद प्राप्त होता है। बढ़ती हुई जनसंख्या तथा शहरीकरण के कारण पोषण की जरूरतों को पशुधन से ही पूरा किया जा सकता है। बढ़े हुए तापमान तथा आर्द्रता परिवर्तन पशुओ में भोजन ग्रहण करने की क्षमता को कम कर देता है जो दुग्ध उत्पादन तथा उनके विकास में भारी कमी का कारण है। निम्न आण्विक परिवर्तनों की वजह से मवेशियो में गर्मी के दौरान दुग्ध उत्पादन तथा विकास में कमी आती है (चित्र 2) :–

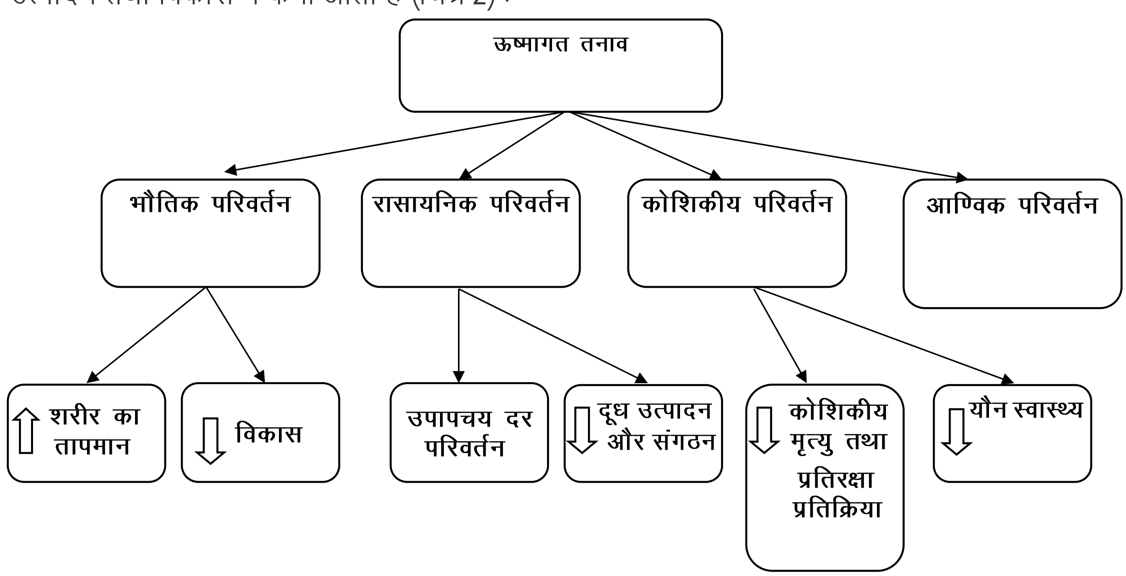

चित्र 1 : उष्मागत तनाव से मवेशियों में होने वाले परिवर्तन

1. **राइबोन्यूक्लिक एसिड संश्लेषण में कमीः—** न्यूक्लिक एसिड एक महत्वपूर्ण जैव अणु है जो एक पीढ़ी से दुसरी पीढ़ी में अनुवांशिक गुणों के सन्देश पहुचने तथा प्रोटीन संश्लेषण में अहम् भूमिका निभाते है। इनमे डीओक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड एक महत्वपूर्ण अणु है जो एक पीढ़ी से दुसरी पीढ़ी में अनुवांशिक गुणों के सन्देश पहुचाते है तथा राइबोन्यूक्लिक एसिड एक दूसरा महत्वपूर्ण जैव अणु है जो प्रोटीन संश्लेषण तथा विभिन्न जैवअणु संश्लेषण में भाग लेता है। उष्मागत तनाव से मुख्य रूप से राइबोन्यूक्लिक एसिड के संश्लेषण में परिवर्तन/अवरोध उत्पन्न होता है, जिससे सभी जैविक प्रक्रम बाधित होते है, और विभिन्न जैव अणु का संश्लेषण विकृत हो जाता है। राइबोन्यूक्लिक एसिड में

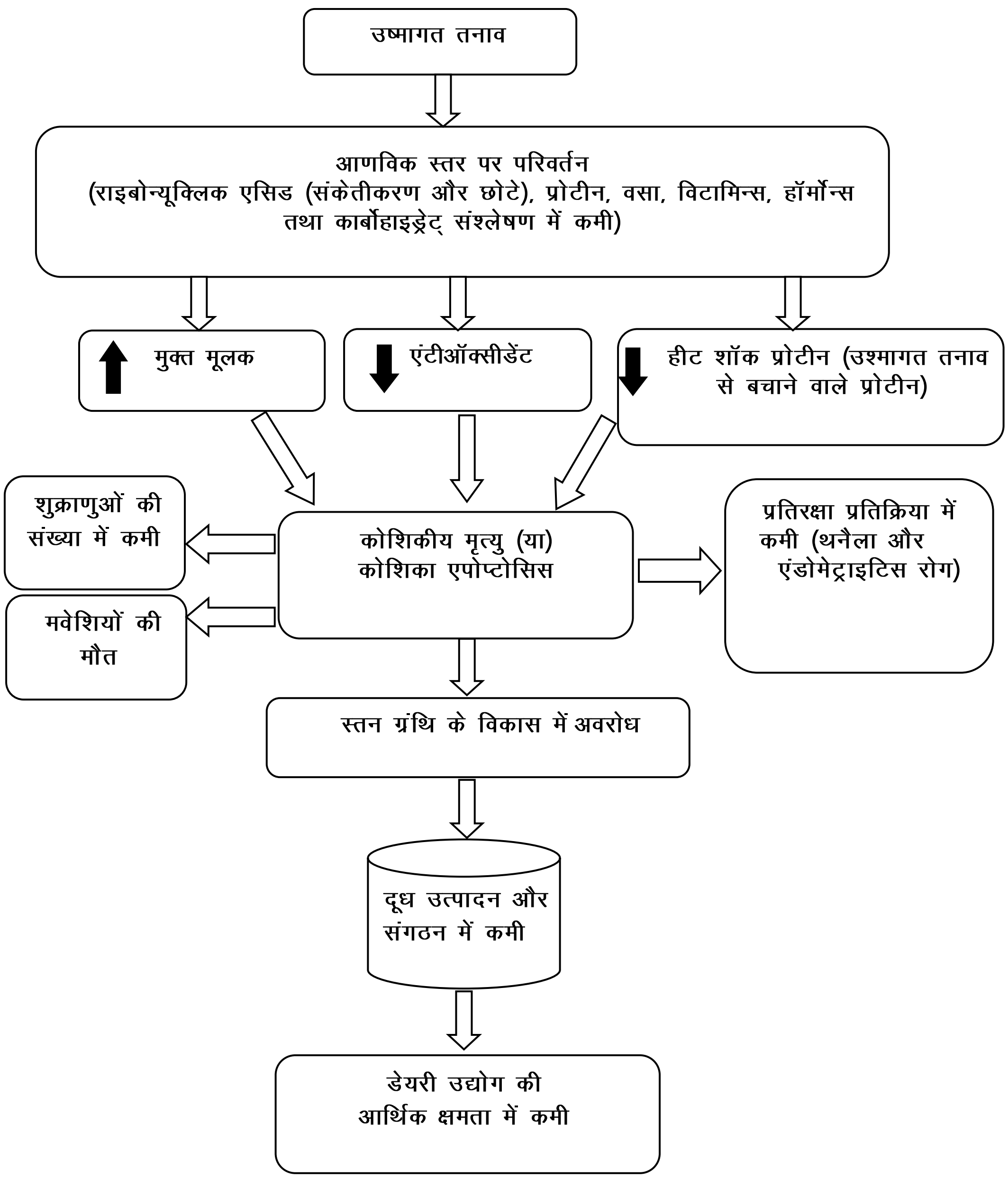

चित्र 2 : उष्मागत तनाव से मवेशियों में आणविक स्तर पर होने वाले परिवर्तन का मवेशियों के शारीरिक तथा जैविक प्रक्रम पर असर

उष्मागत तनाव से आई कमी के कारण प्रोटीन संश्लेषण में कमी आती है जो मवेशियों में विकास तथा उत्पादन को कम करता है तथा उनकी मृत्यु का मुख्य कारण बनता है।

2. **प्रोटीन संश्लेषण में कमीः–** प्रोटीन दुग्ध का एक महत्वपूर्ण घटक है जो दुग्ध की पोषकता को बढाता है। दुग्ध प्रोटीन मवेशियों तथा मानव के शिशुओं के विकास के लिए भी प्रभावशाली योगदान करता है तथा इनमे प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को बढ़ाता है। उष्मागत तनाव से राइबोन्यूक्लिक एसिड संश्लेषण की कमी के कारण प्रोटीन संश्लेषण में भी कमी आती है जिससे दुग्ध में प्रोटीन की कमी हो जाती है इसी के कारण ऊष्ण आघात प्रोटीन या ऊष्ण आघात कारक (उष्मागत तनाव से बचाने वाले प्रोटीन) के संश्लेषण में भी कमी आती है।

3. **वसाः–** प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के अतिरिक्त दुग्ध वसा का एक अच्छा स्रोत है। उष्मागत तनाव से दुग्ध उत्पादकता के साथ–साथ उसके संगठन में भी कमी आती है। गर्मी के कारण दुग्ध में प्रोटीन, वसा तथा लघु श्रृंखला फैटी एसिड की मात्रा में कमी जबकी लंबी श्रृंखला वाले वसीय अम्ल में बढ़ात्तरी होती है।

4. **विटामिन्स संश्लेषण में कमीः–** दुग्ध कुछ प्रमुख विटामिन्स का स्रोत है जिनमे वसा में घुलित विटामिन्स प्रमुख है जिनमे विटामिन–बी समूह महत्वपूर्ण योगदान करता है। जनसँख्या वृद्धि के कारण दिन प्रतिदिन पोषणाहार में कमी आ रही है। उच्च पोषण स्तर के कारण दुग्ध का उपयोग पुरे विश्व में होता है। पर्यावरण प्रदुषण के कारण प्रतिदिन पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है जो उष्मागत तनाव बढ़ाने का एक प्रमुख कारण है, जो मानवीय तथा पशुओ के विकास को बाधित करता है। विकास में हुई इस कमी का मुख्य कारण रासायनिक तथा आणविक स्तर से होने वाले परिवर्तन है जिसकी वजह उष्मागत तनाव है।

5. **हॉर्मोन्स संश्लेषण में कमीः–** हॉर्मोन्स एक जैविक अणु है जिनका संश्लेषण ग्रंथियों में होता है जो दुग्ध संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है जिनमे प्रोलेक्टिन, ओक्सीटोसिन, एस्ट्रोजन, टी.अच.एस., टी3 तथा टी4 प्रमुख है जो दुग्ध में प्रोटीन संश्लेषण में सकारात्मक रूप से भाग लेते है। उष्मागत तनाव के कारण हॉर्मोन्स का संश्लेषण बाधित (संश्लेषण मे कमी)होता है जिससे दुग्ध उत्पादन में भारी गिरावट आती है। इसके अलावा ग्रोथ हॉर्मोंस, प्रोजेस्ट्रोन तथा ग्लुकोकोर्टीकोइड दुसरे महत्वपूर्ण हॉर्मोन्स है जो दुग्ध में प्रोटीन संश्लेषण पर नकारात्मक प्रभाव डालते है, पर उष्मागत तनाव से इनके बनने में बढ़ोत्तरी होती है जिससे दुग्ध संगठन तथा उत्पादन में भारी गिरावट आती है

6. **कार्बोहाइड्रेट्स संश्लेषण में कमीः–** प्रोटीन तथा वसा के अलावा दुग्ध कार्बोहाइड्रेट का भी एक अच्छा स्रोत है। लैक्टोज दुग्ध में मिलने वाला एक डाईसैकेराइड कार्बोहाइड्रेट है जो उसके मीठेपन का मुख्य स्रोत है। उष्मागत तनाव से लैक्टोज संश्लेषण में भाग लेने वाले मार्ग बाधित होते है जिससे दुग्ध की पोषण क्षमता कम होती है तथा दुग्ध उत्पादन घटता है। लैक्टोज संश्लेषण में भाग लेने वाले मार्ग बाधित का मुख्य कारण आणविक स्तर में होने वाले परिवर्तन है जिनमे लघु और सूक्ष्म राइबोन्यूक्लिक एसिड का संश्लेषण मुख्य प्रोसेस है जो आगे चलकर प्रोटीन संश्लेषण करता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त कारणों की वजह से गर्मी के दिनों में दुग्ध उत्पादन तथा मवेशियों के विकास में कमी आती है जिनमे मुख्य रुप से आण्विक स्तर पर होने वाले परिवर्तन है जिसके अंतगर्त राइबोन्यूक्लिक एसिड(संकेतीकरण और छोटे), प्रोटीन, वसा, विटामिन्स, हॉर्मोन्स तथा कार्बोहाइड्रेट्स संश्लेषण में कमी आते है। इनकी कमी को कुछ हद तक सही पोषण तथा उपयुक्त पर्यावरण (रख रखाव, खानपान) देकर कम किया जा सकता है और इसके प्रभाव को पुरी तरह से कम करने के लिए आण्विक स्तर पर और अध्ययन की आवश्यकता है।

मोलिब्डेनमः एक महत्त्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्व

28

बलजीत, संजीव कुमार, सौरभ कुमार एवं मगन सिंह
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

सूक्ष्म पोषक तत्व शब्द आवश्यक पोषक तत्वों का प्रतिनिधित्व करता है जिनकी आवश्यकता पौधे तथा सूक्ष्मजीवों के विकास के लिए बहुत कम मात्रा (अर्थात <1ppm) में होती है। पौधों के लिए विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों में मोलिब्डेनम की आवश्यकता सबसे कम मात्रा में होती है। सन 1930 में बॉर्टेल्स नाम के वैज्ञानिक ने मोलिब्डेनम के जैविक महत्व के बारे में दुनिया को बतलाया था। उन्होंने जानकारी दी थी कि मोलिब्डेनम वायुमंडल के नाइट्रोजन को जीवाणु एजोटोबैक्टर कैरोकोकम की मदद से उपयोगी बनाते हैं। जबकि उच्च पौधों के लिए मोलिब्डेनम की अनिवार्यता सबसे पहले अर्नोन और स्टाउट द्वारा बतलाई गई थी। अधिकांश पौधों के ऊतकों में मोलिब्डेनम के मात्रा की सामान्य सीमा 0.3–1.5 पीपीएम के बीच होती है। मोलिब्डेनम दर्जनों एंजाइमों में सहायक कारक के रूप में कार्य करता है। इन महत्वपूर्ण एंजाइमों में से एक नाइट्रोजिनेज एंजाइम है, जो वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन को उपयोग में लेकर बैक्टीरिया और पौधों को प्रोभूजिन (प्रोटीन) का संश्लेषण और उपयोग करने में मदद करता है।

भारतीय मिट्टी में मोलिब्डेनम की स्थिति

मोलिब्डेनम भूमंडल का सबसे सूक्ष्म पोषक तत्व है। भारतीय मिट्टी में मोलिब्डेनम की कुल मात्रा 0.4 और 14. 5 मिली. प्रति किलो. के बीच मौजूद है जबकि उपलब्ध मोलिब्डेनम की मात्रा 0.07 और 2.67 मिली. प्रति किग्रा. के बीच मिट्टी में है जो कि अमोनियम ऑक्सालेट (pH–3.3) के द्वारा निकाली जाती है द्य भारतीय मिट्टी में मोलिब्डेनम की कमी सामान्यतः नहीं होती है। हालाकि भारत के विभिन्न राज्यों में इसकी कमी अलग–अलग बतलाई गयी है, जैसे कि आंध्र प्रदेश में लगभग 49%, गुजरात में 10%, हरियाणा में 28%, मध्य प्रदेश में 18% मिट्टी में मोलिब्डेनम की कमी पाई गई है। औसतन मोलिब्डेनम की उपलब्धता भारत में 11% मिट्टी में कम है। मोलिब्डेनम की कमी शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों की क्षारीय मिट्टी में नही होती है, क्योंकि इन क्षेत्रों में मोलिब्डेनम अधिक मात्रा में उपलब्ध है। जैविक खाद और फास्फोरस उर्वरकों के उपयोग से मोलिब्डेनम की उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है। मिट्टी में उपलब्ध मोलिब्डेनम विभिन्न तरह के रूपों में पाए जाते है जो वहाँ के भूमंडल के वातावरण पर निर्भर करता है। मिट्टी में मोलिब्डेनम पांच संभावित रूपों में पाया जाता है जो इस प्रकार है:

1. प्राथमिक क्रिस्टलीय पदार्थ {मोलिब्डेनइट ($MoS2$), वॉलफेनाइट ($PbMo04$) और फेरिमोलीबडाइट ($Fe2 (MoO4)$)
2. मिट्टी में जल घुलनशील मोलिब्डेट्स –($MoO4–2$) ।
3. संगठित रूप से जटिल कार्बनिक मोलिब्डेनम ।
4. अधिशोषण रूप धनायनों की सतहों पर यानी धातु ऑक्साइड (Fe, Al एवं Mn) पर ।

पौधों के लिए मोलिब्डेनम की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कुछ कारक है – मृदा पीएच, मृदा संरचना, कार्बनिक पदार्थ, जलनिकास, पोषक तत्वों की परस्पर क्रिया द्य

1. मृदा पीएच– मृदा पीएच पौधों को मोलिब्डेनम की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण

कारकों में से एक है। मृदा पीएच की प्रत्येक इकाई की वृद्धि से मोलिब्डेनम की मात्रा 100 गुना तक बढ़ जाती है। मोलिब्डेट आयन भी फोसफेट एवं सल्फेट आयन की तरह कम मृदा पीएच पर लोहे और एल्युमिनियम के आक्साइड द्वारा दृढ़ता से सोख लिया जाते है। इसलिए अम्लीय मिट्टी में मोलिब्डेनम की उपलब्धता की कमी पाई जाती है।

2. मृदा संरचना – रेतीली मिट्टी की तुलना में चिकनी मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ कम होता है और मोलिब्डेनम प्रतिधारण की क्षमता कम होती है, जिसके कारण मोलिब्डेनम की कमी की संभावना चिकनी मिट्टी में बढ़ जाती है।

3. कार्बनिक पदार्थ– मोलिब्डेनम की मात्रा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा के साथ काफी सहसंबद्ध है। मोलिब्डेनम कार्बनिक पदार्थ के साथ जटिल मिश्रण बनाता है जिसे थोड़े समय के लिए पौधे ग्रहण नही कर पाते है, लेकिन यह खनिजीकरण के माध्यम से पौधों को उपलब्ध हो जाता है।

4. जलनिकास– मिट्टी का गीलापन मोलिब्डेनम की उपलब्धता को प्रभावित करता है। गीली मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ अधिक होता हैं और इनमें मोलिब्डेनम की मात्रा भी अधिक होती है जिससे इसकी उपलब्ध पौधों को आसानी से हो जाती है। खराब रूप से सुखी मिट्टी में अधिक मोलिब्डेनम जमा होती है और उन पर उगने वाले पौधे अधिक मोलिब्डेनम का कारण जानवरों के लिए विषैले हो जाते हैं।

5. पोषक तत्वों की परस्पर क्रिया– घुलनशील फॉस्फोरस का मोलिब्डेनम के साथ फॉस्फोमोलीबडेट मिश्रण बनता है जो कि पौधों के द्वारा अधिक आसानी से अवशोषित किया जाता हैं। लेकिन उपलब्ध सल्फर मुख्य रूप से अवशोषण की प्रक्रिया के दौरान मोलिब्डेनम को कम कर देती है। कॉपर–मोलिब्डेनम एक दूसरे के विपरीत काम करने वाले है। पौधों में अधिक मोलिब्डेनम के कारण होने वाली विषैलापन को मिट्टी में कॉपर को डालने से कम किया जा सकता है। जिन मृदाओं में फेर्रिक आक्साइड की मात्रा ज्यादा होती है वहां पर अक्सर मोलिब्डेनम की कमी हो जाती है।

पौधों, जानवरों और मानव में मोलिब्डेनम के कार्य

मोलिब्डेनम नाइट्रेट रिडक्टेस, जेन्थीन ऑक्सीडेज, एल्डिहाइड ऑक्सीडेज और सल्फेट ऑक्सीडेज सहित कई एंजाइम प्रणालियों में शामिल है। इन एंजाइमों की क्रिया में सहकारक होने के कारण मोलिब्डेनम सल्फर युक्त अमीनो एसिड, प्यूरीन, पिरामिडिन और एल्डीहाइड्स के ऑक्सीकरण और उपापचय व अभिक्रिया को उत्प्रेरित करने में सहायता करता है। जेन्थीन ऑक्सीडेज या जेन्थीन डीहाइड्रोजिनेज व्यापक रूप से जानवरों में पाया जाता है जो विशेष रूप से एडेनिन (एक न्यूक्लियोटाइड) को जेनथाइन में बदल देता है जो बाद में यूरिक एसिड बनता है ओर एक एंटीऑक्सिडेंट के रूप में कार्य करता है। एल्डिहाइड ऑक्सीडेज कई दवाओं सहित विभिन्न प्रकार के विषैले पदार्थो के प्रभावों को कम करता है। सल्फेट ऑक्सीडेज जोकि मनुष्य में पाया जाता है ओर सल्फाइट को सल्फेट में बदलता है। मोलिब्डेनम की अनुपस्थिति में सल्फाइट हमारे शरीर में जमा होने लगता है। मोलिब्डेनम पौधों में पाये जाने वाले एंजाइम नाइट्रेट रिडक्टेस के वातावरण में उपस्थित नाइट्रोजन को पौधों के प्राप्त करने में सहायक होता है। जिससे हमारी अकार्बनिक रसायनो पर निर्भरता कम हो जाती है।

मोलिब्डेनम की कमी के लक्षण

मोलिब्डेनम की कमी सामान्यतः एसिड, रेतीले और अत्यधिक अपक्षय मिट्टी में होती है। मोलिब्डेनम की कमी के साथ जुड़े लक्षण नाइट्रोजन की उपयोगिता से जुड़े हैं। नाइट्रेट रिडक्टेस की गतिविधि के लिए मोलिब्डेनम आवश्यक होता है, इसकी कमी से नाइट्रोजन की उपयोगिता कम हो जाती है। इससे पौधों में प्रोभूजिन की कमी हो जाती है। चारे वाली फसलों जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, ओट इत्यादि में कमी के कारण

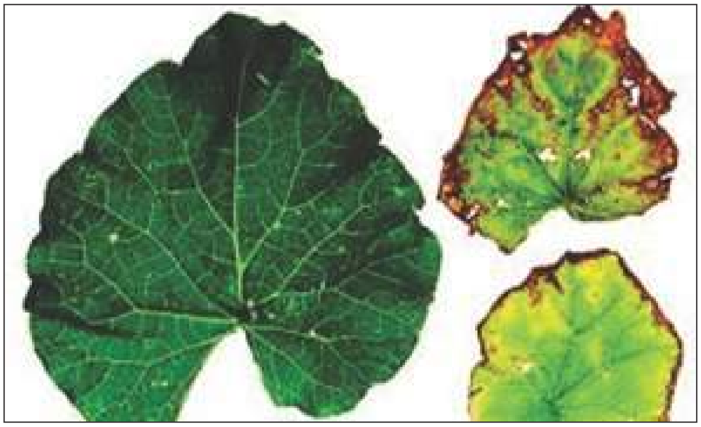

मोलिब्डेनम की कमी पौधों में
(सौजन्य https@hortfreshjournal.com)

मोलिब्डेनम की कमी जानवरों में
(सौजन्यः vro-agriculture.vic.gov.au)

तालिका 1. मोलिब्डेनम के स्त्रोत

प्रमुख स्त्रोत	फार्मुला	मोलिब्डेनम की मात्रा (%)
सोडियम मोलिब्डेट	$NaMoO_4 2H_2O$	39
अमोनियम मोलिब्डेट	$(NH_4)_6Mo_7O_{24}4H_2O$	54
मोलिब्डेनम टऱाईओक्साइड	MoO_3	66
मोलिब्डिनाइट	MoS_2	60
मोलिब्डेनम फ्रिटस .	–	2.3

पुराणी पत्तियों के शीर्ष और किनारों पर सुनहरे पीले रंग के धब्बे हो जाते है और उत्तको में स्थानीय परिगलन देखने को मिलता है। मक्के मे टेसलिंग कम हो जाती है।

मोलिब्डेनम की कमी के कारण भेड़ के बच्चे के गुर्दो में पथरी बनने लगती है। यह पथरी मुख्य रूप से जैंथिन के कमी के कारण बनती है इसी कारण से इसे जैंथिन बीमारी के नाम से जाना जाता है। बकरियों में मोलिब्डेनम की कमी के कारण आहार की खपत में कमी देखने को मिलती है, जिसके कारण उनका वजन कम होने लगता है। मोलिब्डेनम की कमी के कारण जानवरों में गर्भाधारण की दर में कमी और उनकी सन्तानो की मृत्यु दर ज्यादा देखने को मिलती है। मुर्गीयों तथा पक्षियों में पंखों को नुकसान, लंबी हड्डियों के अस्थि–भंग में विकार जैसे कई लक्षण देखने को मिलते है। मनुष्यो में मोलिब्डेनम की कमी के कारण रक्त में अधिक मिथयोनिन, रक्त में यूरिक एसिड की कमी, पेशाब में यूरिक एसिड तथा सलफेट की मात्रा में कमी हो जाती है।

मोलिब्डेनम की कमी के उपचार

मोलिब्डेनम की कमी को निम्न प्रकार से ठीक किया जा सकता हैः

1. बीज उपचार– मोलिब्डेनम की पुर्ति के लिये मोलिब्डेनम लवण घोल 50 से 100 ग्राम मी. हेक्टेयर बीज दर के हिसाब से बीज उपचार कर सकते है ।
2. मिट्टी में डालकरः मिट्टी में 100 से 500 ग्राम प्रति हेक्टेयर उपयोग करके मोलिब्डेनम की कमी को दूर किया जा सकता है।

3. पत्ते पर छिड़काव के रूप में: पौधों में मोलिब्डेनम की कमी को ठीक करने के लिए पतों पर 0–1% से 0–5% की दर से छिड़काव करने से इसकी कमी को पुरा किया जा सकता है।

4. चूना डालकरः अम्लीय मिट्टी में पी एच बढने से मोलिब्डेनम की उपलब्धता बढ़ जाती है। इसलिए अम्लीय मिट्टी में गुणवत्ता सुधार तथा मोलिब्डेनम की उपलब्धता बढाने के लिए चुने का उपयोग करना चाहिए।

मोलिब्डेनम विषैलापन और अंतर्संबंध मोलिब्डेनम– कॉपर –सल्फर जानवरों में

चारा फसलों में मोलिब्डेनम की मात्रा बदलती रहती है। यह मिट्टी के पीएच, नमी की मात्रा और मोलिब्डेनम की मात्रा पर निर्भर करती है। क्षारीय वातावरण का पीएच पौधों के लिए मोलिब्डेनम की उपलब्धता को बहुत बढ़ाता है, और इस तरह चरने वाले पशुओं में मोलिब्डेनम की अधिक होने से विषैलेपन की संभावना बढ़ जाती है। मोलिब्डेनम स्वयं विषैला नहीं होता, लेकिन जब सल्फर के साथ संयोजित रूप में होता है तो थिओमोलीबडेट बनाता है जो कि चरने वाले पशुओ के शरीर में कॉपर की कमी का कारण बन जाता है। यदि कॉपरःमोलिब्डेनम अनुपात दो से कम है तो कॉपर की कमी और अधिक मोलिब्डेनम के कारण बीमारी होने का खतरा होता है जिसे मोलिब्डेनोसिस कहते है। मोलिब्डेनोसिस को ''आंसू'' या ''पीट स्कोर्स'' के रूप में भी जाना जाता है। कभी–कभी इसी वजह से जानवरो की मौत भी हो जाती है। कई देशों के मवेशियों में मोलिब्डेनोसिस एक गंभीर बीमारी होती है। मवेशियों और भेड़ों में 20–100 पीपीएम मोलिब्डेनम की मात्रा होने से मोलिब्डेनोसिस होता है। सभी मवेशी मोलिब्डेनोसिस के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं, दुधारू गायों और युवा स्टॉक को सबसे अधिक पीड़ित हैं, जबकि घोड़े और सूअर मोलिब्डेनोसिस के लिए अधिक सहनशील कृषि पशुधन हैं।

मोलिब्डेनम के विषैलापन का इलाज

यदि मोलिब्डेनम विषैलापन मौजूद है तो कॉपर का सेवन बढ़ाने से मोलिब्डेनम की अधिकता को रोका जा सकता है और इसके विषैलापन को रोका जा सकता है। यदि मोलिब्डेनम के विषैलापन का जोखिम कम नहीं होता है, तो दूध में मोलिब्डेनम की अधिकता से बछड़ों में विषैलापन हो सकता है। कॉपर सल्फेट आहार के साथ सेवन करने पर आंतों में मोलिब्डेनम की जैव उपलब्धता को कम करता है। अंततः मोलिब्डेनम अवशोषण को कम करेगा और मलोत्सर्जन में वृद्धि करेगा। यदि आहार में मोलिब्डेनम की मात्रा 5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम से अधिक है तो आहार में 1% कॉपर सल्फेट मिलाकर मोलिब्डेनम की विषैलापन को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष

मोलिब्डेनम एक सूक्ष्म पोषक तत्व है जो पौधों द्वारा न्यूनतम मात्रा में आवश्यक होता है। पौधों में इसे मुख्य से मोलिब्डेट आयन के रूप अवशोषित किया जाता है। मोलिब्डेनम नाइट्रोजिनस एंजाइम का सहायक बनकर बैक्टीरिया और पौधों को वायुमंडल में नाइट्रोजन का उपयोग करके प्रोटीन को संश्लेषित करके उपयोग करने में मदद करता है। मोलिब्डेनम की कमी के कारण की नाइट्रेट रिडक्टेस की गतिविधि कम हो जाती है जिससे फलिय चारे में प्रोटीन की कमी हो जाती है। मानव शरीर में प्रति किलोग्राम शरीर के वजन का लगभग 0.07 मिलीग्राम मोलिब्डेनम होता है जो ऊर्जा उत्पादन में मदद करता है। यह कुछ अमीनो एसिड को तोड़कर है, एंटीऑक्सिडेंट को सक्रिय करके कोशिका संरक्षण में सहायता करता है और मूत्र में विषैले पदार्थों को उत्सर्जित करके खत्म करने में भी मदद करता है। मोलिब्डेनम की कमी के कारण इन सभी उपापचय कार्यों में बाधा होगी। इसलिए मोलिब्डेनम पौधों, जानवरों और मनुष्यों के लिए अत्यधिक आवश्यक है, इसका उपयोग सही मात्रा में किया जाना चाहिए।

देसी डेयरी नस्लों की पुनरुद्धृति-साहिवाल के प्रसंग में

29

गुंजन भण्डारी एवं बी. एस. चंदेल

डेरी अर्थशास्त्र, सांख्यिकी एवं प्रबंधन प्रभाग

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत पशु जैव विविधता में बेहद समृद्ध है। विश्व में गोवंश के संपूर्ण आनुवंशिक धन का 16 प्रतिशत हिस्सा हमारे देश के पास है। हमारे पास गाय की 43 विशिष्ट नस्ल है जो देश की कुल गाय की आबादी का 18 प्रतिशत है, जबकि शेष 82 प्रतिशत वर्णनातीत है। इन 43 नस्लों में से कुछ नस्ल, जैसे साहिवाल, गिर, थारपारकर, राठी, लाल सिंधी आदि दूध की अधिक उत्पादकता के लिए जानी जाती हैं, वहीं कंकरेज, हरियाणा और ओंगोल दूध के साथ–साथ ही खेती के लिए भी काम में आती हैं। बाकी नस्ल मुख्यतः कृषि कार्यों में ही सहायक है। ये नस्लें अपने प्रजनन क्षेत्र में सदियों से विकसित होती आई है, इसलिए इन्होंने स्वयं को स्थानीय स्थितियों के अनुकूल बना लिया है। यह नस्लें अत्यधिक प्रबल है और साथ ही इनमें गर्मी सहन करने और रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक हैं। इन्हें संकर गायों की तुलना में कम आहार की आवश्यकता होती है, साथ ही ये स्वभाव से भी शांत होती है। अपनी इन्हीं विशेषताओं की वजह से दुनिया के विभिन्न देशों में जैसे की ऑस्ट्रेलिया, केन्या, साउथ अफ्रीका और अमेरिका में इन्हें आज अन्य नस्लों के संवर्धन के लिए प्रयोग किया जा रहा है। भारत में भी विदेशी नस्लों को स्थानीय जलवायु के अनुकूल बनाने के लिए इनका प्रयोग हुआ है।

हालांकि, पिछले कुछ समय से केवल दूध उत्पादन की वृद्धि में विशेष ध्यान होने की वजह से ये अपने ही देश में उपेक्षा का शिकार हुई हैं, परन्तु परिवर्तित होती जलवायु में डेयरी व्यवसाय की स्थिरता और स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता की वजह से ये पुनः अपनी ओर ध्यान केंद्रित करवाने में सफल रही हैं। बदलते परिवेश में देसी नस्लों के महत्त्व को देखते हुए भारत सरकार ने वर्ष 2014 में इनके संरक्षण और विकास के लिए राष्ट्रव्यापी राष्ट्रीय गोकुल मिशन की शुरुआत की। इसके उपरांत 2019 के बजट में भी इस योजना के लिए आवंटित राशि को बढ़ा दिया गया। इस परियोजना का लक्ष्य स्वदेशी गायों के नस्ल सुधार के साथ ही उनकी दूध उत्पादकता को बढ़ाना है। इसके तहत स्वदेशी गाय पालने वाले किसानों को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है ।

साहिवाल गाय

साहिवाल गाय की सर्वश्रेष्ठ देसी नस्लों में से एक है। इसे लोला, लम्बी बार, मोंट्गोमेरी, मुल्तानी और तेली नाम से भी जाना जाता है। इसकी उत्पत्ति भारत–पाक सीमा के समीपवर्ती क्षेत्रों में हुई। वर्तमान भारत में इसके मूल प्रजनन स्थल का भाग–पंजाब के फाजिल्का जिला, राजस्थान का श्री गंगानगर जिला और हरियाणा के सिरसा जिले में है। इन जिलों में साहिवाल मुख्यतः फाजिलका और अबोहर (फाजिल्का जिला), सूरतगढ़ (गंगानगर जिला), रानीया और नाथुसारी (सिरसा जिला) में है।

ढीली चमड़ी, छोटा मस्तक और छोटे सींग साहिवाल की विशेषताएँ है। यह अकसर लाल और गहरे भूरे रंग की होती है। कभी–कभी इनके शरीर पर सफेद चमकदार धब्बे भी होते हैं। एक दुग्धकाल के दौरान यह औसतन 2300–3500 लीटर दूध देती है जिसमें वसा की मात्रा 4.5 से 5.0 प्रतिशत तक होती है। उचित प्रबंधन होने पर ये 4500 लीटर दूध या इससे अधिक भी देने में समर्थ है। इसकी प्रथम प्रजननं की औसतन उम्र– 36 से 40 महीने है और इसकी प्रजनन की अवधि में लगभग 15 महीने का अंतराल रहता है। इसकी अन्य प्रमुख विशेषताओं में चिचड़ और परजीवों के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता, अधिक तापमान के प्रति

सहनशीलता, उल्लेखनीय रोग प्रतिरोधक क्षमता, आसान रख–रखाव, स्थिर उत्पादकता, ब्यांत में सुगमता, सूखा सहन करने की क्षमता, शांत स्वभाव आदि सम्मिलित है (गलास और अन्य, 2002; श्रीधर और अन्य, 2011; साइलो और अन्य., 2015; वर्मा और अन्य, 2016 तथा रैना और अन्य, 2016)। अपनी इन्हीं खूबियों की वजह से साहिवाल का प्रयोग गाय की नयी नस्लें जैसे कि– करन स्विस और फ्रीसवाल बनाने के लिए भी किया गया है। मिश्रा और अन्य (2001) ने अपने शोध में पाया कि साहिवाल के दूध में 'ए2' प्रोटीन मिलता है, जिसकी अभी बाजार में काफी मांग है। हालांकि अभी वैज्ञानिक रूप से ये पूर्णतः प्रमाणित नहीं हुआ है की ए1 प्रोटीन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, परंतु फिर भी ए2 प्रोटीन की मौजूदगी साहिवाल के दूध को वर्तमान समय में तरजीह दिला रही है। यह भी एक तथ्य है कि ए1–ए2 की जानकारी के बिना भी स्थानीय लोग संकर गाय की तुलना में साहिवाल का दूध अधिक पसंद करते आये है। विशेषकर साहिवाल का घी जो अपने स्वाद और महक के कारण काफी लोकप्रिय है (रैना और अन्य, 2016 डे, 2018 तथा भंडारी, 2020)।

साहिवाल पालकों के अनुभव

हाल फिलहाल में पशुपालकों का देसी नस्लों के प्रति रुझान बढ़ा है। न केवल छोटे किसान बल्कि कई व्यावसायिक डेरी किसान भी देसी नस्ल पालने लगे है। साथ ही ऐसे भी किसान है जो पीढ़ियों से देसी नस्लों को पालते आये है और आज भी पाल रहे है। ऐसे ही कुछ साहिवाल पालकों ने फील्ड सर्वे के दौरान अपने अनुभव साझा किये, जिसका सारांश और मुख्य बिंदु निम्नलिखित है।

फाजिल्का, सूरतगढ़ और सिरसा के सर्वे के दौरान हमने पाया कि जहाँ एक तरफ फाजिल्का और सूरतगढ़ में अधिकतर किसान परंपरागत रूप से साहिवाल को पालते आये है वहीं सिरसा में साहिवाल की ओर पशुपालकों का रुझान पिछले कुछ वर्षो में अधिक बढ़ा है। कई पीढ़ियों से साहिवाल को पालने के कारण सूरतगढ़ और फाजिल्का के किसानों को काफी अनुभव है और इतने लम्बे समय से साथ रहने की वजह से इस नस्ल से एक विशेष जुड़ाव भी है। यहाँ के पशुपालक सामान्यतः गायों को बड़े झुण्ड में पालते है। एक पशुपालक के पास 50–150 तक गायें आसानी से मिल जाती है जिसमें साहिवाल के साथ राठी नस्ल की गाय भी होती है। फाजिल्का के पशुपालकों के अनुसार साहिवाल गाय कम खर्च में ज्यादा आमदनी देने में कारगर है। साहिवाल के दूध और घी की अच्छी मांग होने के कारण उन्हें एक किलो दूध की आसानी से 50 से 70 रूपये तक कीमत मिल रही थी, वहीं घी की कीमत भी विदेशी गाय कि तुलना में 200–300 रूपये अधिक थी। इसके अलावा हाल फिलहाल में इस नस्ल की मांग बढ़ने के कारण वे पशु बेचकर भी मुनाफा कमा रहे थे।

सूरतगढ़ के पशुपालक भी साहिवाल काफी वर्षो से पालते आये है। वे मानते है कि विशेषकर गर्मियों में जब तापमान काफी बढ़ जाता है तब विदेशी गायों कि तुलना में इसका प्रबंधन आसान और किफायती रहता है। यहाँ पर कुछ पशुपालक साहिवाल गाय से एक दिन में 15 से 20 किलो दूध भी ले रहे थे। कुछ वर्ष पहले

सहिवाल पालन के आर्थिक पहलू

क्र.सं.	विवरण	माप
1.	साहिवाल गाय की औसतन कीमत (रु. प्रति गाय)	60,000 – 1,00,000
2.	एक गाय पर खर्चा (रु. प्रतिदिन)	200–250
3.	दूध उत्पादन (लीटर प्रतिदिन प्रति गाय)	8–10
4.	दूध की किसानों को मिल रही कीमत (रु. प्रति लीटर)	उप शहरी इलाका– 40–45 और शहरी इलाका– 60–70
5.	घी की कीमत (रु. प्रति किलो)	800–1000

अन्य जगहों के समान यहाँ भी साहिवाल के जगह पशुपालक संकर गायों को पालने लगे थे लेकिन अब वे वापस साहिवाल को पसंद करने लगे है जिसमें सरस डेरी का काफी योगदान रहा है। सरस डेरी द्वारा शुरू किये गए साहिवाल ब्रीड इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट के तहत साहिवाल दूध का विक्रय अलग से शुरू किया गया। साहिवाल के दूध की मांग अधिक होने के कारण साहिवाल किसानों को अन्य किसानों की तुलना में प्रति लीटर 5–10 रूपये अधिक मिलने लगे। इसके साथ ही सरस डेरी ने साहिवाल के लिए निःशुल्क कृत्रिम गर्भाधान की भी सुविधा प्रदान की जिससे किसान साहिवाल पालने के लिए प्रोत्साहित हुए।

सिरसा में अधिकतर किसानों ने साहिवाल गाय का पालन कुछ वर्षो पहले ही शुरू किया है। इन में से कुछ ने साहिवाल के दूध की गुणवत्ता देखते हुए पहले सिर्फ घर में प्रयोग होने वाले दूध के लिए साहिवाल पालना शुरू किया और बाद में बाजार में मांग बढ़ने पर साहिवाल के और पशु रखने शुरू किये। हरियाणा सरकार द्वारा दी गई सब्सिडी की सहायता से भी कुछ किसानों ने साहिवाल पालन शुरू किया। इन में से एक किसान की साहिवाल गाय ने उचित प्रबंधन से एक दिन में 12 किलो दूध दिया जिसके लिए उसे हरियाणा सरकार द्वारा सम्मानित भी किया गया। ज्यादातर पशुपालकों ने साहिवाल की दूध की गुणवत्ता, रोग और चिचड़ प्रतिरोधक क्षमता को सराहा परंतु जिन जगहों में साहिवाल के दूध की मार्केटिंग अलग से नहीं हो रही थी वहाँ किसानों को ज्यादा मुनाफा नहीं मिल पा रहा था।

वहीं फरीदाबाद में 70 साहिवाल गायों का एक व्यावसायिक डेरी फार्म साहिवाल का दूध 100 रूपये प्रति लीटर और घी 1000 रूपये प्रति किलो में बेच रहा है। फार्म की मालकिन बताती है कैसे उन्होंने शुरुआत में संभावित ग्राहकों से साहिवाल का दूध कुछ समय के लिए प्रयोग करने का आग्रह किया और पसंद आने पर ग्राहकों ने स्वयं मांग देना प्रारम्भ कर दिया। अब वो दूध की गुणवत्ता बनाये रखने पर खास ध्यान देती है और मौजूदा ग्राहकों के अच्छे फीडबैक से दूध की मार्केटिंग अपने आप हो जाती है।

उपरोक्त सभी विवरणों से ये स्पष्ट है कि साहिवाल गाय के दूध की मांग बाजार में बढ़ी है, कई ग्राहक उसकी अच्छी कीमत देने को भी तैयार है जिससे सही मार्केटिंग रणनीति अपनाने वाले किसानों को मुनाफा भी हो रहा है ।

साहिवाल पालन में बाध्यताएं

पशुपालकों के अनुसार अगर कोई डेरी फार्मर साहिवाल पालन शुरू करना चाहता है तो सबसे मुख्य परेशानी एक शुद्ध साहिवाल गाय ढूढ़ने में आती है। यह परेशानी उन क्षेत्रों में अधिक है जहाँ परम्परागत तरीके से साहिवाल पालन बंद हो चुका था। अधिकतर किसान नए पशु के लिए पशु व्यापारियों पर निर्भर करते हैं जो फाजिल्का और सूरतगढ़ से साहिवाल खरीद कर किसानों की मांग की आपूर्ति करते हैं, परंतु कई बार अधिक कीमत अदा कर के भी सही नस्ल की गाय ना मिलने पर किसानों को दोहरा नुकसान उठाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त मुनाफे के लिए साहिवाल के दूध का बेहतर विक्रय मूल्य मिलना भी आवश्यक है जोकि कई बार साहिवाल के दूध की अलग विक्रय व्यवस्था नहीं होने पर मिल नहीं पाता। इस के अलावा कृत्रिम गर्भाधान के लिए शुद्ध जर्मप्लास्म की उपलब्धता भी जरूरी है।

संदर्भ

गलास इ.जे., गिरे, के., स्प्रिंगबेट, ए., ब्लैक, ए., क्राइमिले, एस., ऐस्केर्सल, पी.डी., प्रेस्टन, पी.एम., एवं ब्राउन, सी.जी.डी. (2002). ब्रीड डिफरेंसेस इन रेजिस्टेंस टु ए ट्रॉपिकल प्रोटोजोन पैरासाइट, थैलेरिअ अनुलता. इनः सेकंड इंटरनेशनल सिम्पोजियम ऑन कैंडिडेट जीन्स फॉर एनिमल हेल्थ (सी.जी.ए.एच.), मोंत्पेल्लिएर, फ्रांस, अगस्त 16–18.

डे, डी. (2017). साहिवाल दृ ए पॉलिसी पॉइंटर इन इंडियन कॉन्टेक्स्ट. जर्नल ऑफ लाइवस्टॉक साइंस, 8, 88–91.

भंडारी, जी. (2020). इकनोमिक वैल्यूएशन ऑफ इंडिजेनस डेरी कैटल ब्रीड्स– ए केस ऑफ साहिवाल इन इंडिया. डाक्टरल थीसिस. आई.सी.ए.आर.– राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल.

मिश्रा, बी.पी., मनीषी मुकेश, बी प्रकाश, मोनिका सोढ़ी, आर कपिला, ए किशोर , आर आर कटारिया, बी के जोशी, वी भसीन, टी जे रसूल एवं के. एम. बजरबरुआह. (2009). स्टेटस ऑफ मिल्क प्रोटीन, बीटा–कैसिइन वैरिएंट्स अमंग इंडियन मिल्च एनिमल्स. इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेज,79: 722–725.

रैना,आर.एस. एवं डे, डी . (2016). द वैल्यूएशन कुंडरूम बायोडायवर्सिटी एंड साइंसदृपालिसी इंटरफेस इन इंडियाज लाइवस्टॉक सेक्टर, इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 47.

वर्मा, एन, गुप्ता, आई.डी., वर्मा, ए., कुमार, आर., दास, आर. एवं विनीत, एम.आर. (2016). नोवेल SNPs इन HSPB8 जीन एंड देयर एसोसिएशन विथ हीट टॉलरेंस ट्रेट्स इन साहिवाल इंडिजेनस कैटल. ट्रॉपिकल एनिमल हेल्थ एंड प्रोडक्शन, 48(1), 175–180.

साइलो, एल., गुप्ता, आई.डी., वर्मा, ए., दास, आर., चौधरी, एम.वी. एवं सिंह, एस. (2015). पोलीमॉरफिस्मस इन Hsp90ab1 जीन एंड देयेर एसोसिएशन विथ हीट टॉलरेंस इन साहिवाल एंड करण स्विस. इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल रिसर्च, 50 (6), 856–861.

श्रीधर, एस. (2011). अडाप्टेबिलिटी एंड परफॉरमेंस ऑफ साहिवाल एवं जर्सी X साहिवाल क्रॉसब्रीड काव्स इन ट्रॉपिकल कंडीशंस. डाक्टरल थीसिस. श्री वेंकटेस्वर वेटरनरी यूनिवर्सिटी, तिरुपति.

खाद्य पदार्थों में कृत्रिम के बदले प्राकृतिक रंग वर्णक के उपयोग की आवश्यकता

30

नीलम उपाध्याय एवं प्रिया यावले
डेरी प्रौद्योगिकी प्रभाग, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

खाद्य पदार्थ ठोस या तरल वस्तुएं होती हैं जोकि निगलने के बाद पाचन तंत्र के माध्यम से शरीर में अवशोषित होकर मनुष्य को रोगमुक्त एवं तन्दरुस्त रखती हैं। हालांकि, भोजन का सेवन तभी किया जाएगा जब यह उच्च सम्वेदी होगा। विभिन्न सम्वेदी विशेषताओं में स्वाद, रंग और रूप, बनावट एवं समग्र स्वीकार्यता शामिल है, परन्तु, इन सबमें सबसे महत्वपूर्ण है कि खाद्य पदार्थ दिखने में आकर्षक होने चाहिए। खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता को परिभाषित करने में रंग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रंग भोजन की पहली विशेषता है जिसे देखा जाता है और यह हमारी स्वाद और गुणवत्ता दोनों की ही अपेक्षा को निर्धारित करता है। भोजन का रंग अक्सर उत्पाद के स्वाद, सुरक्षा और पोषण मूल्यों से जुड़ा होता है। रंग खाद्य पदार्थों का एक संवेदी गुण है, जो अक्सर उत्पाद की बिक्री की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

खाद्य रंगों का महत्व

रंग वर्णक की संरचनात्मक विविधता और अत्यंत जटिल रासायनिक एवं भौतिक गुणों का ध्यान रखते हुए, यह एक अद्वितीय वर्ग है। रंग योजक वह घटक है जो किसी भोजन, दवा, कॉस्मेटिक अथवा यहाँ तक की मानव शरीर में भी पाए जाते हैं। खाद्य रंग, या रंग योजक, डाई, रंगद्रव्य या पदार्थ हैं जो भोजन या पेय में डाले जाने पर उसे रंग प्रदान करते हैं। रंगों का योजक के रूप में निम्नलिखित कारणों से खाद्य पदार्थों में उपयोग किया जाता है:

- प्रसंस्करण के दौरान उपस्थित रंग वर्णक में होने वाली क्षति को दूर करना और उत्पादित पदार्थों को संरक्षित करना
- खाद्य उत्पादों की रंग एकरूपता को सुनिश्चित करना जो स्वाभाविक रूप से रंग में भिन्न होते हैं
- निर्मित खाद्य पदार्थों के रंगों को तीव्र करना
- भंडारण के समय रंगों की तीव्रता में होने वाली क्षति को कम करना
- खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता बढाने में मदद करना
- रंगों के उपयोग से खाद्य पदार्थ को आकर्षित और अधिक स्वादिष्ट बनाना और खाद्य पदार्थो की बिक्री को बढ़ाना।

खाद्य रंगों का वर्गीकरण

खाद्य रंगों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है: (1) कृत्रिम, (2) प्राकृतिक, (3) प्रकृति–समान, और (4) अकार्बनिक रंग।

1) कृत्रिम रंग

कृत्रिम रंग मानव निर्मित रंग हैं, जो प्रकृति में नहीं पाए जाते हैं– ये अकसर ऐजो–डाईज होते हैं। खाद्य सुरक्षा और मानक नियम, 2011 के अनुसार, भारत में आम तौर पर भोजन में आठ कृत्रिम रंग जैसे लाल रंग

के लिए पोंस्यु 4 आर (Ponceau 4R), कार्मोइसीन (Carmoisine), एरिथ्रोसिन (Erythrosine), पीले रंग के लिए टार्ट्राजिन (Tartrazine), सनसेट येलो एफसीएफ (Sunset yellow FCF), नीले रंग के लिए इंडिगो कार्माइन (Indigo Carmine), ब्रिलिएंट ब्लू एफसीएफ (Brilliant Blue) FCF और हरे रंग के लिए फास्ट ग्रीन एफसीएफ (Fast green FCF) की अनुमति है। इनके उपयोग के लिए इनका अधिकतम अनुमत स्तर विभिन्न खाद्य पदार्थो के लिए अलग– अलग है। कड़े नियमों के बावजूद, कई खाद्य पदार्थों को रंगने के लिए कई गैर–अनुमति वाले रंगों जैसे औरामाइन (पीला), मेटानिल पीला, लेड क्रोमेट, रोडोमाइन (गुलाबी), सूडान III और IV (लाल) और नारंगी II का उपयोग भी किया जाता है।

2) प्राकृतिक रंग

प्राकृतिक रंग सब्जियों, फलों, खनिजों और अन्य खाद्य प्राकृतिक स्रोतों में पाये जाते हैं जैसे एनाटो, पेपरिका, केसर, एंथोसायनिन, केरामेल, क्लोरोफिल, हल्दी और कैरोटीनॉयड। केरामेल के बाद कैरोटीनॉयड का सबसे अधिक उपयोग खाद्य पदार्थों में किया जाता है। खाद्य सुरक्षा और मानक नियम, 2011 के अनुसार, भारत में आम तौर पर खाद्य पदार्थों में क्लोरोफिल, करक्यूमिन या हल्दी, बीटा केरोटीन, बीटा एपो –8 केरोटीनल, बीटा एपो–8 केरोटीनिक एसिड का मिथाइलएस्टर, बीटा पोलो–8 केरोटीनिक एसिड का इथाइलएस्टर, केंथाजेंथिन, राइबोफ्लेविन, एन्नाट्टो, केसर, केरामेल, आदि प्राकृतिक रंगो की अनुमति है और इनके उपयोग के लिए इनका अधिकतम अनुमत स्तर विभिन्न खाद्य पदार्थो के लिए अलग– अलग है। इसके अलावा कुछ खाद्य पदार्थो में इनका प्रयोग जीएमपी की श्रेणी मे रखा गया है, जिसका अर्थ हुआ कि आमतौर पर इन्हे उन पदार्थो के लिए सुरक्षित माना जाता है ।

3) प्रकृति समान रंग

इन्हें प्रयोगशालाओं में संश्लेषित किया जाता है और ये बहुत सीमित श्रृंखला में उपलब्ध हैं।

4) अकार्बनिक रंग

टाइटेनियम डाइऑक्साइड एक अकार्बनिक रंग है जिसे विभिन्न खाद्य पदार्थो में एक निश्चित मात्रा में डालने की अनुमति है ।

कृत्रिम रंगों के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

बाजार में मिल रहे लगभग सभी खाद्य पदार्थ कृत्रिम रंग वर्णकों का प्रयोग करते हैं। कृत्रिम रंग, खाद्य उद्योग में व्यापक रूप से लोकप्रिय है क्योंकि यह तीव्र गर्मी और वातावरण की अन्य विपरीत परिस्थितियों में स्थिर होने के साथ–साथ सस्ते होते हैं। कृत्रिम रंग खाद्य पदार्थ को अधिक आकर्षक बनाते हैं और वह उपभोक्ताओं को विशेषकर बच्चों का ध्यान आकर्षित करते हैं। कैंडी, पेय, फलों का रस, चॉकलेट, अनाज, रंगीन खाद्य पदार्थ, टमाटर की चटनी, डेसर्ट, स्नैक्स, आलू के चिप्स, कार्बोनेटेड सोडा, स्पोर्ट्स ड्रिंक, ऊर्जा प्रदान करने वाले पेय, आईस क्रीम, केक, मसालों, मीठा दही आदि खाद्य वस्तुओं में आमतोर पर कृत्रिम रंग डाले जाते हैं।

कृत्रिम खाद्य रंग या सिंथेटिक डाई कोयला अथवा पेट्रोलियम आधारित होती हैं और कई बार इन्हें विशुद्ध भी नहीं किया जाता। इन रसायनों का मानव स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है और इनमें से कुछ रसायन प्रकृति में कर्कटजनक (कैंसर पैदा करने वाले) भी होते हैं। द हिंदू अखबार में 31 अक्टूबर 2015 में प्रकाशित लेख में चीनी–आधारित मिठाइयो के सर्वेक्षण में उनमें प्रयोग किए जा रहे कृत्रिम खाद्य रंगो के बारे में जानकारी दी गई है। इस लेख में पुष्टी की गई कि सभी एकत्र नमूनों में से 97% में अनुमति प्राप्त वाले कृत्रिम खाद्य रंग प्रयोग किए गए, जबकि 3% में अनुमति प्राप्त और गैर– अनुमति प्राप्त वाले कृत्रिम खाद्य

रंग प्रयोग किए गए। परंतु, चिंतन का विषय यह है कि 82% एकत्रित नमूनों में 100 पीपीएम के निर्धारित स्तर से अधिक मात्रा में इन रंगो का प्रयोग किया गया था। इसी लेख में बताया गया है कि पशुओ पर किए गए अध्ययनों से संकेत मिलता है कि ब्रिलियंट ब्लू जिगर की क्षति, गुर्दे की विफलता और अस्थमा का कारण है, जबकि टार्ट्राजिन अटेंशन डेफिसिट हाइपरएक्टिविटी डिसऑर्डर (एडीएचडी) के लिए जिम्मेदार है और सनसेट येलो एड्रिनल ग्रंथि के ट्यूमर और अतिसंवेदनशीलता को जन्म देता है। इसके अलावा अन्य शोध और लोकप्रिय पत्रिकाओ में प्रकाशित लखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृत्रिम खाद्य रंगो में हानिकारक घटक होते हैं जिनके एक निश्चित स्तर से ऊपर सेवन से चिड़चिड़ापन, एलर्जी, सिरदर्द, माइग्रेन, नींद ना आने की समस्या, सीखने की क्षमता और स्मृति में क्षति एवम व्यवहार संबंधी समस्याएँ जैसे आक्रामकता आदि हो सकती हैं।

प्राकृतिक रंगों की आवश्यकता

प्राकृतिक उत्पादों की गुणवत्ता का एक प्रमुख कारक उनमें निहित रंग हैं। हालांकि, प्राकृतिक उत्पादों को आमतौर पर उनके उपभोग से पहले संसाधित या संग्रहीत किया जाता है जिससे उनकी गुणवत्ता और रंग प्रभावित होते हैं। परिणामस्वरूप, रंगीन योजक का उपयोग किया जाता है। कृत्रिम रंग वर्णक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं इसलिये इसकी तुलना में प्राकृतिक रंग वर्णक को अधिक सुरक्षित और स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है जैसे कि बीटा–कैरोटीन जो एक प्रकार का कैरोटेनॉइड (प्राकृतिक रंग) है और इसका स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पाया गया है। इसे त्वचा की सुरक्षा और कोशिका विकास में एक महत्वपूर्ण योजक माना जाता हैं। कैरोटेनॉइड में उपस्थित एंटीऑक्सीडेंट की गतिविधि (जो कि ऑक्सीडेटिव क्षति से बचाती है), रंग की संपत्ति, विटामिन ए के पूर्व पदार्थ आदि गुणवत्ताएँ होती है और इसी कारण कैरोटेनॉइड का स्वास्थ्य पर सकारात्मक रूप से मूल्यांकन किया जाता है।

टमाटर में पाया जाने वाला प्राकृतिक रंग वर्णक लाइकोपीन, सभी प्रकार के कैंसर को, विशेष रूप से स्तन, प्रोस्टेट और गर्भाशय के कैंसर का खतरा कम करने में प्रभावी है। करक्यूमिन की गिनती एक प्रबल एंटीऑक्सिडेंट के रूप में होती है जो जीवकोषीय घटकों में ऑक्सीडेटिव क्षति से बचाता है और घाव और जलने के उपचार में प्रभावी है। यह कैंसर के गठन और उसकी प्रगति को रोकने के लिए महत्वपूर्ण है। इसके अलावा ये पाचन के कुछ एंजाइमों की गतिविधि को भी बढ़ाता है। एक अध्ययन के अनुसार, करक्यूमिन जीवाणुरोधी घटक के रूप में कार्य करता है जिससे यकृत के विषहरण में मदद होती है। यहां तक कि इसमे एंटी–एचआईवी गुण भी पाया गया है।

प्राकृतिक रंगों के लाभ और प्राकृतिक रंग द्वारा उत्पादित खाद्य उत्पाद

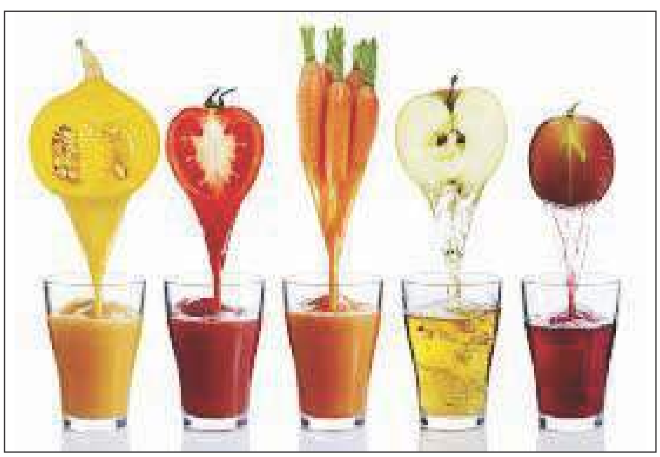

(स्त्रोत : https://wildearth.in/blogs/news/color-your-food-naturally)

प्राकृतिक रंगों के उपयोग से बहुत लाभ होते हैं जैसे कि यह पर्यावरण के अनुकूल होने के कारण कम प्रदूषण पैदा करते हैं। इसके अतिरिक्त यह गैर–विषाक्त, एलर्जी रहित, कारसीनोजेनेटिक रहित, तैयार करने में आसान, बायोडिग्रेड्बल, आदि होते हैं। कुछ कंपनियाँ प्राकृतिक खाद्य रंगो से होने वाले स्वास्थ्य लाभों को देखते हुए इनके उपयोग को बढ़ावा दे रही हैं। इनमें से कई का उल्लेख नीचे किया गया है:

1) दुग्ध उत्पाद

दुग्ध उत्पाद कंपनियां अब फ्लेवोनोइड और एंथोसायनिन से प्राकृतिक रस का उपयोग दूध, मट्ठा–आधारित और किण्वित उत्पादों में कर के पेय का उत्पादन कर रही हैं। आमतौर पर दही में हाइड्रोफिलिक कोचीनियल अर्क, कारमाइन, बीट के रस या एफडी और सी रेड नंबर 3 रंग डाले जा रहे हैं, जो सूक्ष्मजीवी हमले के प्रतिरोधी हैं। इसके अलावा, दही में लाल रंग के पदार्थ एसिड–प्रूफ कोचीन अर्क और कारमाइन इस्तेमाल होते हैं। GNT का एक्सबरी® उत्पाद, एक नया फल और सब्जी का अर्क है जिसका उपयोग एनाट्टो के बदले चेडर और गौडा चीज उत्पादन में किया जाता है। चीज और मक्खन दुग्ध उत्पादों में बीटा–कैरोटीन और एन्नाट्टो रंगों का उपयोग होता हैं।

2) पेय पदार्थ

लाइकोपीन रंग वर्णक का उपयोग पेय, डेयरी उत्पाद, कन्फेक्शनरी उत्पादों और पके हुए पदार्थों सहित विभिन्न खाद्य उत्पादों में किया जा सकता है। टोमाट–ओ–रेड एक रंग वर्णक है और इसमें उपस्थित एंटीऑक्सिडेंट क्षमता के कारण यह कैंसर को रोकने में मदद करते है।

3) डिब्बाबंद भोजन और सब्जियां

एंथोसायनिन, बीटा–कैरोटीन, कारमिनिक एसिड और क्लोरोफिल आदि प्राकृतिक रंगों का उपयोग डिब्बाबंद फल और सब्जियों में किया जाता है।

4) बेकरी उत्पाद

आटे में अच्छे फैलाव के लिए, पानी में घुलनशील रंग 1.5–3.0% से डाले जाते हैं। बेकरी उत्पादन में प्राकृतिक रंग एनाटो का अर्क या एनाटो और हल्दी का मिश्रण (0.02–0.06%) पीले–नारंगी रंगों को प्राप्त करने के लिए उपयोग किया जाता है। क्रैकर्स में एनाटो अर्क, हल्दी और पेपरिका ओलिओरेजिन या केरामेल रंग डाले जाते हैं। हल्दी का उपयोग एफडी और सी रंग वर्णक के संयोजन में भी किया जाता है।

निष्कर्षः

खाद्य पदार्थो में रंगीन घटक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रंग के बिना हम भोजन या उसकी वस्तु की कल्पना भी नहीं कर सकते। रंग भोजन और उसकी वस्तुओं को मनमोहक और चखने के लिये प्ररित करता है। प्राकृतिक खाद्य रंग स्वास्थ्य के लिए अच्छे होते हैं, जबकि रासायनिक रूप से संश्लेषित रंग स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं और उनका उपयोग सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों के तहत पूरी तरह से नियंत्रित किया जाना चाहिए। हालांकि, पिछले कुछ दशकों से प्राकृतिक खाद्य रंगों का विकास तीव्र गति से बढ़ रहा है। प्राकृतिक रंगों के गुणों और उनके चिकित्सीय उपयोगों के कारण खाद्य पदार्थों में इनके इस्तेमाल की जागरूकता निश्चित तौर पर बढ़ रही हैं।

संदर्भः

संदर्भों के लिए लेखक से संपर्क किया जा सकता है।

देश में बढ़ता दुग्ध उत्पादन व कूलिंग प्रोसेसिंग तकनीक में ऊर्जा दक्षता

31

चित्रनायक, शुभम ठाकरे, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, जितेन्द्र डबास एवं सुनील कुमार
डेरी अभियांत्रिकी प्रभाग,
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारतीय डेरी कृषक, पशुपालन व उत्तम दुग्ध उत्पादन : परिचय

पूरे विश्व में भारत दुग्ध उत्पादन में लगातार कई वर्षों से अग्रणी स्थान पर विराजमान है। भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में दुग्ध का उत्पादन होता है। देश के दस प्रमुख दुग्ध उत्पादक राज्यों में उत्तर प्रदेश भारत में सबसे अधिक दूध उत्पादित करने वाला राज्य है। देश के अन्य अग्रणी दुग्ध उत्पादन करने वाले राज्यों में राजस्थान दूसरे, गुजरात तीसरे, मध्य प्रदेश चौथे, आंध्र प्रदेश पांचवें, पंजाब छठे, महाराष्ट्र सातवें, हरियाणा आठवें, बिहार नौंवें व तमिल नाडू दसवें स्थान पर है।

देश के दस प्रमुख दुग्ध उत्पादक राज्य

उत्तर प्रदेश भारत में सबसे अधिक दूध उत्पादित करने वाला राज्य है और 26.38 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन के साथ भारत में कुल दूध उत्पादन का लगभग 17% से अधिक की हिस्सेदारी उत्तर प्रदेश की है। सबसे बड़े दूध उत्पादक होने के अलावा, उत्तर प्रदेश में गायों और भैंसों की सबसे बड़ी संख्या, लगभग 1.8 करोड़ से अधिक है।

उत्तर प्रदेश के बाद भारत में शीर्ष 10 सबसे अधिक दूध उत्पादक राज्यों की सूची में राजस्थान दूसरे स्थान पर है और हर साल राजस्थान 18.5 मिलियन टन से अधिक दूध का उत्पादन करता है। राजस्थान में 15 से अधिक डेयरी सहकारी समितियां हैं, जो राज्य के दूध की मांग को पूरा करती हैं। सभी डेयरी सहकारी समितियों में, बीकानेर जिला दुग्गड़ उत्तपक सहकारी संघ लिमिटेड में प्रतिदिन 90,000 लीटर दूध की औसत खरीद होती है। नागोरी, राठी, थारपारकर और कंकरेज राजस्थान में पाई जाने वाली गाय की कुछ नस्लें हैं। राजस्थान में सभी गाय नस्लों में, थारपारकर में प्रति स्तनपान 1800 से 2600 किलोग्राम दूध की सबसे अधिक उपज है। थारपारकर नस्ल की उत्पत्ति पाकिस्तान के थारपारकर जिले से हुई है और ये सफेद या भूरे रंग की होती है। यह नस्ल कॉम्पैक्ट, मजबूत, मध्यम आकार और विभिन्न स्थितियों के अनुकूल है।

देश में तीसरा सबसे अधिक दुग्ध का उत्पादन गुजरात में होता है, जो भारत के पश्चिमी भाग का गहना कहा जाता है व यहाँ का वार्षिक दुग्ध उत्पादन 12.26 मिलियन टन से अधिक है। गुजरात स्थित डेयरी सहकारी संस्था अमूल देश की सबसे बड़ी डेयरी सहकारी संस्था है, जो वर्ष 1946 में अस्तित्व में आई थी। अमूल वह संगठन है, जिसने भारत में श्वेत क्रांति की शुरुआत और सफलतापूर्वक पूरी की और देश को दुग्ध उत्पादन में दुनिया का अग्रणी बनाया। अमूल न केवल भारत में दूध और डेयरी उत्पादों की मांग को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, बल्कि तीस लाख से अधिक दुग्ध उत्पादकों के लिए रोजगार के स्रोत के रूप में भी काम करते हैं ।

मध्य प्रदेश में भारत में सबसे अधिक दूध उत्पादक राज्यों की इस सूची में 12.14 मिलियन टन उत्पादन के साथ चौथे स्थान पर है, जिसका देश के कुल दूध उत्पादन में 6% से अधिक हिस्सेदारी है। निमारी, देओनी, और दांडी राज्य में पाए जाने वाले कुछ मवेशी की नस्ले हैं। मध्य प्रदेश में 7 डेयरी सहकारी समितियाँ हैं, जो राज्य में दूध की अधिकतम खरीद का हिसाब रखती हैं। ये डेयरी सहकारी समितियां मध्य प्रदेश राज्य सहकारी डेयरी फेडरेशन लिमिटेड के तहत काम करती हैं, जो राज्य में गुणवत्ता वाले डेयरी उत्पादों की खरीद, प्रसंस्करण और बिक्री में शामिल है।

आंध्र प्रदेश भारत के शीर्ष 10 उच्चतम दूध उत्पादक राज्यों की सूची में 10.77 मिलियन टन के दुग्ध उत्पादन के साथ पाचवें स्थान पर है। आंध्र प्रदेश देश में कुल दूध उत्पादन में 9% से अधिक की हिस्सेदारी रखता है और देश में दूध की मांग को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पंजाब, सबसे उपजाऊ मिट्टी वाला राज्य, भारत के शीर्ष 10 सबसे अधिक दूध उत्पादक राज्यों की सूची में 10.15 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन के साथ छठे स्थान पर है। सबसे अधिक दूध देने की क्षमता वाली गाय की सबसे अच्छी देसी नस्ल साहीवाल पंजाब में ही पाई जाती है। साहिवाल गाय की एक ऐसी नस्ल है जिसे पूरे देश में सबसे ज्यादा दूध की पैदावार के लिए जाना जाता है और इसकी औसत दूध की पैदावार 2270 किलोग्राम दूध है। साहीवाल का रंग भूरा होता है, गर्मी के लिए प्रतिरोधी और विविध जलवायु परिस्थितियों में अनुकूल होता है। उच्च उपज और अन्य विशेषताओं के कारण, साहीवाल भारत में ही नहीं बल्कि दुनिया के अन्य देशों में भी उच्च मांग में है।

महाराष्ट्र इस सूची में 8.734 मिलियन टन के वार्षिक दुग्ध उत्पादन के साथ सातवें स्थान पर है। महाराष्ट्र राज्य सहकारी दूध महासंघ वर्ष 1967 में बना है और महानंद के ब्रांड नाम के तहत पूरे राज्य में डेयरी उत्पाद बेचता है। एमआरएसडीएमएम में 24,000 से अधिक दुग्ध समितियों के साथ 100 से अधिक सदस्य संघ शामिल हैं और इसकी रोजाना 8.5 लाख लीटर दूध हैंडलिंग क्षमता है।

हरियाणा भारत में एक और अग्रणी दुग्ध उत्पादक राज्य है और हर साल 8.28 मिलियन टन से अधिक दूध के उत्पादन के साथ आठवें स्थान पर है। हरियाणा डेयरी विकास सहकारी महासंघ लिमिटेड राज्य दुग्ध महासंघ है, जो हरियाणा के विभिन्न हिस्सों में 6 दुग्ध प्रसंस्करण संयंत्रों का मालिक है। ये दुग्ध प्रसंस्करण संयंत्र कुरुक्षेत्र, जींद, अंबाला, सिरसा, रोहतक और बल्बगढ़ में स्थित हैं और इसमें प्रतिदिन 6.45 लाख लीटर दूध हैंडलिंग क्षमता है।

सूची के 9वें स्थान पर बिहार का कब्जा है, जो हर साल लगभग 7.24 मिलियन टन से अधिक दूध का उत्पादन करता है। बिहार राज्य दुग्ध सहकारी महासंघ बिहार में डेयरी सहकारी है, जो वर्ष 1983 में अस्तित्व में आया था। यह ''सुधा डेयरी'' के ब्रांड नाम के तहत अपने विभिन्न गुणवत्ता वाले उत्पादों को बेचता है। डेयरी सहकारी समिति के अंतर्गत आने वाले जिले 25 से अधिक हैं और प्रतिदिन 10 लाख किलोग्राम से अधिक दूध की औसत खरीद होती है।

तमिलनाडु एक और दुग्ध उत्पादक राज्य है और भारत के शीर्ष 10 सर्वाधिक दुग्ध उत्पादक राज्यों की सूची में 10 वें स्थान पर है। तमिलनाडु में 6.344 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन हुआ व देश में कुल दूध उत्पादन में तमिलनाडु का योगदान 5% से अधिक है और राज्य में डेयरी सहकारी समितियों की दैनिक दूध खरीद 24 लाख लीटर से अधिक है।

देश के दुग्ध उत्पादन में वृद्धि

देश में दुग्ध उत्पादन वर्ष 2016–17 की अवधि के दौरान 165.4 मिलियन टन हुआ एवं ये उत्पादन लगभग 6.6 प्रतिशत तक बढ़कर वर्ष 2017–2018 की अवधि के दौरान 176.35 मिलियन टन व वर्ष 2018–2019 में 187.75 मिलियन टन तक पहुँच गया (पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार की रिपोर्ट)। देश में दुग्ध का उत्पादन वर्ष 1991–1992 के दौरान सिर्फ 55.6 मिलियन टन था, जिसमें उत्तम तकनीकों का विकास, पशुओं की उचित देख–भाल, सही रख–रखाव व डेरी कृषकों की मेहनत के कारण तीन दशकों से कम अवधि में ही दुग्ध उत्पादन में तिगुनी से अधिक की वृद्धि देखने को मिली व यह वृद्धि लगातार होती गयी जिससे भारत पूरे विश्व में दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर पहुँच गया। आजादी के पश्चात सन 1950–51 से 1960–61 के दौरान देश में दुग्ध उत्पादन की प्रतिशत विकास दर काफी कम 1.64% थी जिसमें लगातार सुधार होता गया और देश आज दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर

पहुँच गया। इसी प्रकार देश में प्रति व्यक्ति दुग्ध की उपलब्धता जो वर्ष 1991–1992 की अवधि के दौरान 178 ग्राम/ दिन थी वो लगभग दोगुनी बढ़कर वर्ष 2016–17 की अवधि के दौरान 355 ग्राम/ दिन, वर्ष 2017–18 की अवधि के दौरान 375 ग्राम/ दिन एवं वर्ष 2018–19 के दौरान 394 ग्राम/ दिन हो गयी। देश के बढ़ते दुग्ध उत्पादन व प्रति व्यक्ति दुग्ध की उपलब्धता में देश के सभी वर्गों, छोटे से छोटे किसान से लेकर वृहत वर्ग के कृषकों ने मिलकर योगदान दिया है। देश में अधिकतर किसान खेती के साथ साथ पशुपालन भी करते हैं व गायों, भैसों, बकरियों, ऊँटों आदि को पालकर दुग्ध उत्पादन भी करते हैं, जिससे उन्हें फसलों के अतिरिक्त दुग्ध व दुग्ध के विभिन्न उत्पाद प्राप्त होते हैं। किसानों को टिकाऊ कृषि प्रणाली सुनिश्चित करने व इसे और भी अधिक समावेशी बनाने हेतु पशुधन क्षेत्र काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस की रिपोर्ट से पता चला है कि देश में छोटे कृषक यानि कम जमीन (0. 01 हेक्टेयर से कम) वाले कृषि परिवारों व मझोले कृषकों की कुल आय का लगभग 23 फीसदी से अधिक आय का मुख्य स्रोत पशुधन है। कृषकों के पास उनके पशुधन ना सिर्फ उनके अतिरिक्त आय के श्रोत होते हैं, बल्कि ये कृषकों के खेती के भी कई कार्यों में मददगार साबित होते हैं और यह भी पाया गया है कि मवेशियों वाले कृषकों के घर विपरीत मौसम की स्थिति, जैसे कि बाढ़, सूखा, अकाल आदि के कारण आने वाले संकट का सामना करने में बेहतर होते हैं। देश की तेजी से बढ़ती आबादी, हर पल बदलती जीवनशैली, शहरीकरण का अनियमित विस्तार और त्वरित जलवायु परिवर्तन आदि मनुष्य के साथ साथ बोवाइन प्रजनन प्रणाली में भी नई चुनौतियां पैदा कर रहे हैं।

आजादी के सत्तर वर्षों के बाद भी देश की लगभग 50 से 60 प्रतिशत से अधिक खेती प्रायः वर्षा के पानी पर ही आश्रित है। रबी की फसल की कटाई के पश्चात, मई–जून माह से ही पूरे देश के कृषकों को प्रायः हर वर्ष बारिश का बेसब्री से इंतजार करना पड़ता है। मानसून की स्थिति व बारिश पर कृषि की निर्भरता के कारण देश की इतनी बड़ी आबादी का पेट भरने वाले कृषक सूखे की स्थिति में खुद भी दाने–दाने को मोहताज हो जाते हैं। सूखे की हालत में छोटे व माध्यम वर्गीय कृषकों के पूरे परिवार व पशुओं, यथा गाय–बैल, भैंस, बकरियों आदि की स्थिति बहुत ही दयनीय हो जाती है। भारत आज भी एक कृषि प्रधान देश है और यह पाया गया है कि अभी भी देश में जब–जब अच्छी बारिश होती है तो कृषकों की फसल अच्छी होती है और जिस वर्ष वर्षा ऋतु मेहरबान नहीं हुई तो पूरी की पूरी फसल चौपट हो जाती है। देश के कई हिस्सों में बारिश की कमी से कई बार कृषकों की आय काफी कम हो जाती है और इस परिस्थिति में छोटे व मध्यम वर्ग के किसानों की स्थिति काफी दयनीय हो जाती है। ऐसी हालत में जिन कृषकों के पास अतिरिक्त आय के श्रोत होते हैं, जैसे पशुपालन, डेरी आदि वे इन परिस्थितियों का सामना अच्छी तरह से कर लेते हैं, परन्तु सिर्फ कृषि पर आधारित कृषकों की स्थिति दयनीय हो जाती है। आजकल मौसम की अनियमितताओं को देखते हुए यह लगभग आवश्यक सा हो गया है कि हर कृषक छोटा, मध्यम या बड़ा, सभी कोई न कोई

तालिका 1: आजादी के पश्चात देश में दुग्ध उत्पादन की विकास दर (प्रतिशत)

अवधि–वर्ष	विकास दर (प्रतिशत)
1950–51 से 1960–61	1.64
1960–61 से 1973–74	1.15
1973–74 से 1980–81	4.51
1980–81 से 1990–91	5.48
1990–91 से 2000–01	4.11
2000–01 से 2010–11	4.22
2010–11 से 2014–15	3.65

अतिरिक्त आय का श्रोत भी खेती के साथ–साथ अवश्य रखे। डेरी का विकल्प भारत के पर्यावरण के हिसाब से सर्वोत्तम है। गाय के दूध के साथ साथ पनीर, खोया आदि भी से भी कृषकों की आय में अच्छी वृद्धि संभव है। गाय के दुग्ध से निर्मित विभिन्न उत्पाद भारत ही नहीं पूरे विश्व में बहुत ही लोकप्रिय होने के साथ–साथ हमारे दैनिक आहार में उच्च गुणवत्ता वाले वसा, प्रोटीन, विटामिन, मिनरल, यथा कैल्शियम व फॉस्फोरस आदि का उत्तम स्रोत भी हैं।

आरम्भ में उत्तम पशुपालन हेतु चुनौती देश में बड़े पशु समुदाय हेतु पर्याप्त फीड व उचित चारे की व्यवस्था के लिए ही थी, लेकिन अब पशु के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए उन्हें उचित, साफ व स्वच्छ चारे के साथ–साथ आवश्यक पोषक तत्व भी प्रदान करना एक बड़ी जिम्मेदारी है, विशेष रूप से उनके प्रजनन के

तालिका 2: आजादी के पश्चात देश में कुल दुग्ध उत्पादन (मिलियन टन) व प्रति व्यक्ति उपलब्धता

वर्ष	उत्पादन (मिलियन टन)	प्रति व्यक्ति दुग्ध की उपलब्धता	
		ग्राम/दिन	किग्रा/वर्ष
1950–51	17.0	130	47.5
1955–56	19.0	132	48.2
1960–61	20.0	126	46.0
1968–69	21.2	112	40.9
1973–74	23.2	110	40.2
1980–81	31.6	128	46.7
1985–86	44.0	160	58.4
1990–91	53.9	176	64.2
1995–96	66.2	195	71.2
2000–01	80.6	217	79.2
2005–06	97.1	241	88.0
2006–07	102.6	251	91.6
2007–08	107.9	260	94.9
2008–09	112.2	266	97.1
2009–10	116.4	273	99.6
2010–11	121.8	281	102.6
2011–12	127.9	290	105.9
2012–13	137.7	307	112.1
2014–15	146.3	322	113.2
2015–16	155.5	337	––
2016–17	165.4	355	––
2017–18	176.3	375	––
2011–12	127.9	290	105.9
2018–19	187.75	394	––

समय। देश में कृषि व पशु वैज्ञानिकों के समक्ष भविष्य में पशुओं के आनुवंशिक विकास व सुधार हेतु पशु की आनुवंशिक प्रोफाइल और उत्पादकता के आधार पर चारे के साथ–साथ इष्टतम पोषक तत्व प्रदान करने की बड़ी चुनौती है। देश की बड़ी आबादी हेतु हर पल उत्तम गुणवत्ता के दूध व दुग्ध उत्पादों की लगातार बढती मांग की पूर्ति हेतु यह अतिआवश्यक है कि हम अपने पशुधन का पूरा–पूरा ध्यान रखें। इसके अलावा बदलते जलवायु के कारण पशुधन की जैव विविधता भी मुश्किल में है, जो दुग्ध व अन्य उत्पादों की दीर्घकालिक उत्पादकता को बनाए रखने के लिए बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान समय में देश में बड़ी पशुओं की संख्या आनुवांशिक रूप से समान प्रणाली, चरम मौसम की स्थिति, उभरते रोगों और रोगजनकों के तहत बाह्य झटके की चपेट में हैं। पशुधन क्षेत्र में, विदेशी जर्मप्लाज्म आधारित क्रॉस ब्रीडिंग पर निरंतर ध्यान देने के कारण, बेहतर अनुकूलनशीलता, रोग–प्रतिरोध और फीड दक्षता अनुपात में निश्चित रूप से काफी सुधार व विकास हुआ, परन्तु इसके साथ–साथ देश में स्वदेशी नस्लों की संख्या में कमी आ रही है। स्वदेशी नस्लों में रोग प्रतिरोधक क्षमता क्रॉस ब्रीड पशुओं की तुलना में अच्छी होती है एवं वे भारतीय मौसम में बिना किसी अतिरिक्त रख–रखाव के खर्च के अच्छा उत्पादन भी करती हैं।

अंधाधुंध तरीके से दूध की पैदावार बढ़ाने की कोशिशों में क्रॉसबर्न में अनियंत्रित रक्त के स्तर से स्थिति और खराब हो जाती है, इसलिए भारतीय देशी नस्लों की उत्पादकता को संरक्षित और बेहतर बनाना समय की जरूरत है। इस कार्य को पूरा करने के लिए भारत सरकार अधीनस्थ पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग अब 100 प्रतिशत कृत्रिम गर्भाधान कवरेज पर ध्यान केंद्रित कर रहा है, साथ ही उन्नत अत्याधुनिक प्रजनन तकनीक के विकास पर भी ध्यान दिया जा रहा है। देश में पशुपालन के संदर्भ में भारतीय देशी नस्लों के रूप में देश को 43 स्वदेशी मवेशी नस्लों और 13 भैंस नस्लों की एक विशाल जैव विविधता के साथ प्राकृतिक आशीर्वाद प्राप्त है, जो संबंधित भारतीय वातावरण में विशिष्ट प्रयोजनों के लिए उनकी उपयुक्तता सहित पिछले सैकड़ों वर्षों से जीवित है। इस प्रकार देश के पशुपालन विभाग की रणनीति इस प्रकार है कि कुल उपलब्ध नस्ल के चुनिंदा नस्लों के दूध की औसत उत्पादकता (उदाहरण के लिए उच्च दूध उत्पादकता के लिए गिर नस्ल) वर्तमान में 4.85 किलोग्राम प्रतिदिन के स्तर से बढ़कर 6.77 किलोग्राम प्रति दिन प्रति स्वदेशी पशु हो जाए। पशुपालन में निरंतर विकास का परिणाम हमें देश में दुग्ध उत्पादन की लगातार बढती विकास दर (प्रतिशत) के रूप में मिला है जिसे तालिका1 में दर्शाया गया है। विकास की दर प्रथम दो दशकों के दौरान क्रमशः 1.64 व 1.15 ही रह पाई तत्पश्चात देश में दुग्ध की कमी महसूस हुई। देश में श्वेत क्रांति के तहत दुग्ध उत्पादन के दर में उत्तम वृद्धि हुई व उत्पादन विकास दर बढती गई और क्रमशः तीसरे व चौथे दशक में दुग्ध उत्पादन वृद्धि दर बढ़कर 4.51 व 5.48 प्रतिशत हुई जिसे तालिका 1 व 2 में देश में आजादी के पश्चात कुल दुग्ध उत्पादन (मिलियन टन), दुग्ध उत्पादन में विकास की दर व प्रति व्यक्ति उपलब्धता को दर्शाया गया है।

दुग्ध शीतलन प्रसंस्करण

अधिकांश विकसित देशों में दूध का उत्पादन प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में ही सीमित पाया जाता है, जबकि दूध की खपत व मांग ज्यादातर अधिक जनसंख्या वाले शहरी क्षेत्रों में होती है। इसलिए सर्वप्रथम दूध को ग्रामीण उत्पादन बिंदुओं से प्राप्त करके द्रुतशीतन केंद्रों में एकत्र किया जाता है और इसे डबल जैकेटेड टैंकर (जिसमें दुग्ध का तापमान 4 डिग्री के लगभग ही नियत रहता है) द्वारा मिल्क प्रसंस्करण प्लांट लाया जाता है, तत्पश्चात ऊष्मीय उपचार व पैकेजिंग के बाद बाजार में वितरण हेतु उपलब्ध कराया जाता है। पश्चिमी देशों में संगठित क्षेत्र के विपरीत ग्रामीण भारत में दुग्ध उत्पादन बड़े पैमाने पर कृषि के लिए सहायक गतिविधि के रूप में ही अपनाया जाता है। छोटे किसान और भूमिहीन मजदूर आमतौर पर 1–3 दुधारू पशुओं को पालते हैं जिसके परिणामस्वरूप थोड़ी मात्रा में दूध का उत्पादन होता है और यह स्थिति ग्रामीण स्तर पर दूध संग्रह के कार्य को जटिल बनाती है।

चित्र 1: ग्रामीण उत्पादन बिंदुओं से विभिन्न नस्लों की देशी दुधारू गायों से दुग्ध की प्राप्ति व संग्रह

भारत में संगठित डेयरी उद्योग के विकास हेतु उन्नत देशों में अपनाये गए तकनीकों को स्थापित करने की पहल हो रही है जिसमें 100–300 गाय–भैंस के झुंड के साथ दूध उत्पादन के लिए आधुनिक खेतों की स्थापना की जाती है और वहाँ इन खेतों में दूध दुहने वाले मशीन की सुविधा भी उपलब्ध हो। कच्चे दूध में आम तौर पर कम माइक्रोबियल भार होता है क्योंकि यह पशु के थन से बाहर आता है। हालाँकि, दूध देने के समय कच्चे दूध का तापमान आमतौर पर लगभग 30–35 डिग्री सेल्सियस होता है जो सूक्ष्मजीवों की वृद्धि के लिए सबसे अनुकूल होता है। इसके बाद परिवेश का तापमान कच्चे दूध को लंबी अवधि (4–6 घंटे) के दौरान, जब तक यह एक प्रसंस्करण संयंत्र तक नहीं पहुंच जाता है, सूक्ष्मजीवों को व्यापक रूप से फैलाने के लिए पर्याप्त समय और अनुकूल वातावरण प्रदान करता है।

दिन प्रतिदिन देश में नई तकनीक में लगातार सुधार होता जा रहा है व दुग्ध व दुग्ध उत्पादों के उत्पादन में वृद्धि होने के साथ साथ इनको लम्बे समय तक संरक्षित रखने की दिशा में भी शोधकार्य तेजी से हो रहे है जिसका परिणाम हमें बाजार में उपलब्ध उत्तम गुणवत्ता वाले कई प्रकार के विभिन्न उत्पादों के रूप में मिल रहा है।

तालिका 3: प्रति 100–किलोग्राम दूध से प्राप्त होने वाले दुग्ध के विभिन्न उत्पादों की मात्रा व प्रति –किलोग्राम उत्पाद बनाने हेतु दूध की आवश्यक मात्रा (किलोग्राम)

दुग्ध के विभिन्न उत्पाद	प्रति 100–किलोग्राम दूध से प्राप्त उत्पाद (किलोग्राम) की मात्रा		1–किलोग्राम उत्पाद हेतु आवश्यक दूध की मात्रा (किलोग्राम)	
	भैंस का दूध–6% फैट 9% एसएनएफ	**गाय का दूध–4% फैट 8.5% एसएनएफ**	**भैंस का दूध–6% फैट 9% एसएनएफ**	**गाय का दूध–4% फैट 8.5% एसएनएफ**
स्किम दूध	85.2	90.2	1.2	1.1
बटर मिल्क	7.6	5.1	13.2	19.6
क्रीम –40% फैट	14.8	9.8	6.8	10.2
मक्खन	7.2	4.7	13.9	21.0
घी	5.7	3.8	17.5	26.3
दही	91.0	77.0	1.1	1.3
छेना	24.3	20.0	4.1	5.0
खोआ	21.7	18.0	4.6	5.6
स्किम मिल्क पाउडर	9.5	9.0	10.5	11.0
चीज (छेडार)	13.6	10.4	7.4	9.6

डेरी कृषकों को प्रति किलोग्राम विभिन्न उत्पाद बनाने हेतु दूध की आवश्यक मात्रा (किलोग्राम) तालिका में दी गई है। तालिका 3 में देश के विभिन्न डेरी प्लांटों व डेरी कृषकों द्वारा उत्पादित दुग्ध के विभिन्न उत्पाद की मात्रा प्रति 100–किलोग्राम दूध से व 1–किलोग्राम उत्पाद हेतु आवश्यक दूध की मात्रा (किलोग्राम) विस्तार से दर्शाया गया है, जिससे आवश्यकतानुसार दुग्ध के विभिन्न उत्पाद बनाये व बाजार में उपलब्ध कराये जा सकते हैं। भैंस व गाय के प्रति 100–किलोग्राम दूध से प्राप्त होने वाले दुग्ध के विभिन्न उत्पादों की मात्रा दूध में उपस्थित फैट एवं एसएनएफ पर निर्भर करती है।

दूध को ठंडा करने के लिए इंजीनियरिंग हस्तक्षेप द्वारा प्रशीतन प्रणाली का अनुप्रयोग

सर्वप्रथम दूध दुहने के पश्चात दूध को ग्रामीण उत्पादन बिंदुओं से प्राप्त करके द्रुतशीतन केंद्रों में एकत्र किया जाता है और इसे डबल जैकेटेड टैंकर (जिसमें दुग्ध का तापमान 4 डिग्री के लगभग ही नियत रहता है) द्वारा मिल्क प्रसंस्करण प्लांट लाया जाता है, इस प्रकार, कच्चे दूध को समय पर प्राप्त किया जाता है। दूध के डेयरी संयंत्र में पहुँचते पहुँचते बैक्टीरिया की संख्या पहले से कई गुना बढ़ चुकी होती है, जिसके परिणामस्वरूप उसमें खट्टापन और अन्य गुणवत्ता में गिरावट होने की संभावनाएं बढ़ जाती है। इसलिए दूध को 2–3 घंटे के अन्दर लगभग 4 डिग्री सेल्सियस पर ठंडा करना आवश्यक है, जिस तापमान पर माइक्रोबियल विकास बहुत मंद रहता है। दुग्ध संरक्षण के अन्य साधनों यथा, रासायनिक परिरक्षकों (केमिकल प्रिजर्वेटिव्स) के मिश्रण की अनुमति हमारे खाद्य कानूनों में नहीं है, अतः दुग्ध के उत्तम गुणों को लम्बे समय तक सुरक्षित व संरक्षित रखने हेतु उष्मीय उपचार विधि एक उत्तम व सुरक्षित विधि साबित हुई है। गाय या भैंस के दूध देने के बाद कच्चे दूध को लगभग 4–5 °C तक ठंडा करके संरक्षित रखने से दूध में माइक्रोबियल विकास की दर बहुत मंद रहती है एवं माइक्रोबियल गिनती को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न स्थापित तकनीक व विधि है। दूध प्रसंस्करण संयंत्रों तक दूध पहुंचने की समय अवधि अधिक होने के कारण बल्क मिल्क कूलर (बी एम सी) में दूध ठंढा रखने की प्रक्रिया को पास के दूध उत्पादक समाजों से प्राप्त दूध के लिए अपनाया जाता है। दूध संग्रह और परिवहन की इस प्रणाली ने दूध की गुणवत्ता में सुधार करने और खट्टा दूध के प्रतिशत को कम करने में बहुत मदद की है। दूध की गुणवत्ता को और बेहतर बनाने के लिए व खट्टा दूध की समस्या से निपटने के लिए कोल्ड चेन की अवधारणा ग्रामीण स्तर पर भी स्वीकृति प्राप्त कर रही है। ग्राम कलेक्शन सेंटर में आजकल दूध की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए बल्क मिल्क कूलर (बी एम सी) एक उपयोगी उपकरण बन रहा है। दूध को ठंडा करने के लिए कई दुग्ध उत्पादकों के गाँव–समाज में विभिन्न क्षमता के बल्क मिल्क कूलर लगाए गए हैं। अलग–अलग दुग्ध उत्पादकों से प्राप्त दूध को गांवों के दुग्ध संग्रह केंद्र में बल्क कूलर की टंकी में दूध स्थानांतरित करके तुरंत थोक दूध कूलर में ठंडा किया जाता है।

बल्क मिल्क कूलर एक स्टेनलेस स्टील मिल्क टैंक और एक फर्म चेसिस पर स्थापित शीतलन प्रणाली से युक्त सरल उपकरण है। दूध को ठंडा करने के लिए वाष्प संपीड़न प्रशीतन प्रणाली का व्यापक रूप से थोक कूलर में उपयोग किया जाता है। थोक दूध कूलर के प्रशीतन प्रणाली के संचालन के लिए आवश्यक विद्युत

तालिका 4: विद्युत ऊर्जा खपत में जल शीतलन प्रणाली के प्रयोग द्वारा विद्युत ऊर्जा खपत में प्रतिशत बचत

क्रम सं	कंडेंसर चौम्बर का तापक्रम (°सेंटीग्रेड)	विद्युत ऊर्जा (किलोवाट आवर) बिना जल शीतलन के	विद्युत ऊर्जा (किलोवाट आवर) जल शीतलन के साथ	जल शीतलन के प्रयोग द्वारा विद्युत ऊर्जा खपत में प्रतिशत बचत
1.	30°C	3.1	2.1	32.25 प्रतिशत
2.	35°C	4.2	2.8	33.33 प्रतिशत
3.	40°C	4.4	2.9	34.09 प्रतिशत
4.	45°C	6.1	4.0	34.42 प्रतिशत्

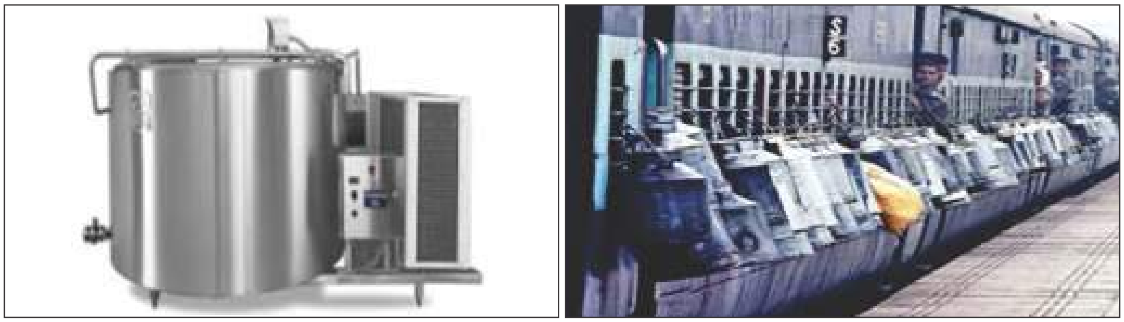

चित्र 2: बीएमसी व ग्रामीण उत्पादन बिंदुओं से दुग्ध को द्रुतशीतन केंद्रों व प्रसंस्करण प्लांट लाना

ऊर्जा की लागत मुख्य रूप से प्रशीतन प्रणाली के प्रदर्शन पर निर्भर करती है। प्रशीतन प्रणाली के प्रदर्शन का माप विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है। बीएमसी के प्रशीतन प्रणाली का प्रदर्शन मुख्य रूप से प्रशीतन प्रणाली के संघनक दबाव पर होता है जो सिस्टम के एयर कंडेनसर में प्रयुक्त हवा के तापमान द्वारा नियंत्रित होता है। बीएमसी के प्रशीतन प्रणाली की सीओपी को कंडेनसर के ऊपर से गुजरने वाली हवा के तापमान को कम करके सुधार किया जा सकता है। हवा के वायुमंडलीय स्थिति के आधार पर मध्यम स्तर पर शीतलन प्रभाव का उत्पादन करने के लिए सदियों से बाष्पीकरणीय शीतलन का उपयोग किया गया है। वाष्पशील शीतलन प्रणाली में प्रयुक्त पानी के एक हिस्से को वाष्पित करने के लिए हवा में उपस्थित गर्मी का उपयोग किया जाता है जो हवा के तापमान को कम करता है। बाष्पीकरणीय शीतलन के सिद्धांत, वाष्पीकरणीय शीतलन प्रणालियों के प्रदर्शन को प्रभावित करने वाले कारक आदि जैसे विभिन्न पहलुओं का वर्णन पहले के शोध कार्यों में किया गया है। हवा की बाष्पीकरणीय शीतलन का उपयुक्त उपयोग द्वारा सिस्टम की विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता को कम करने के लिए किया जाता है। कूलिंग सिस्टम और ऐसे दूध कूलर के प्रदर्शन का मूल्यांकन किया जाता है ताकि थोक दूध कूलर की परिचालन लागत को कम किया जा सके। ऊर्जा का संरक्षण न केवल दूध के द्रव्यमान की लागत को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि पर्यावरण में ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को कम करने में भी मदद करता है। प्रशीतन संयंत्र के संघनक दबाव, बहुत संघनक माध्यम के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली वायु के तापमान पर निर्भर करता

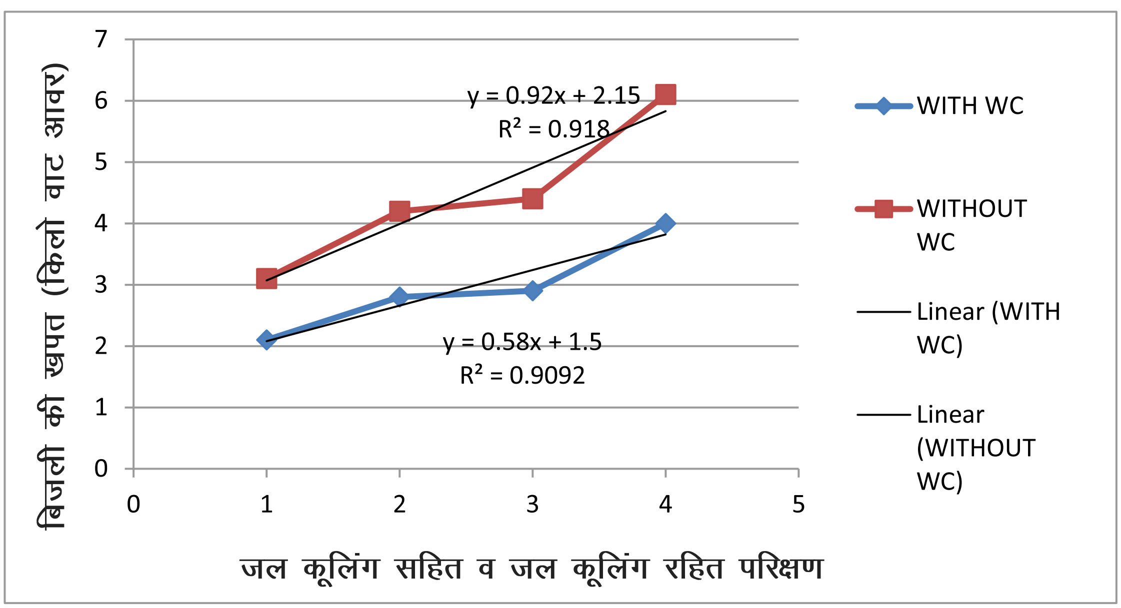

चित्र 3: जल कूलिंग सहित व जल कूलिंग रहित परीक्षणों में बिजली की खपत (किलो वाट आवर)

है। पानी का उपयोग कर हवा के बाष्पीकरणीय ठंडा परिवेश वायु के तापमान को कम किया जा सकता है और परिवेशी वायु के सूखे बल्ब और गीले बल्ब तापमान के आधार पर सिस्टम के इसी संघनक दबाव को कम कर सकता है, जैसा कि पहले बताया गया है। दूध कूलर की वाष्प संपीड़न प्रशीतन प्रणाली का प्रदर्शन थोक कूलर में दूध की द्रव्यमान की बिजली की लागत को तय करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह उम्मीद की जाती है कि हवा की आपूर्ति के लिए बाष्पीकरणीय वायु शीतलन व्यवस्था के उपयोग से प्रशीतन प्रणाली के संघनक दबाव में कमी आएगी जो दूध को ठंडा करने के लिए बिजली की लागत को कम करती है।

इसलिए छोटे पैमाने पर बल्क मिल्क कूलिंग सिस्टम को वाटर कूलिंग सिस्टम के साथ संशोधित संघनक इकाई के साथ विकसित किया गया और यह पाया गया कि पानी के ठंडा कंडेनसर का उपयोग करके शीतलन की दर में 0.2 से 0.3 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है व ठंडा होने का समय लगभग 30 से 35 मिनट तक कम हो गया। बिजली की खपत में लगभग 32 से 35 प्रतिशत की बचत हुई एवं कुल बिजली की आवश्यकता 1 से 1.5 किलोवाट प्रति घंटे तक कम हो गई। विद्युत ऊर्जा खपत में जल शीतलन प्रणाली के प्रयोग द्वारा विद्युत ऊर्जा खपत में प्रतिशत बचत को तालिका–4 व चित्र–3 के ग्राफ में दर्शाया गया है। तत्पश्चात सीओपी सुधार द्वारा मिल्क कूलिंग सिस्टम के संशोधित प्रणाली में भी सुधार होता है और बाष्पीकरण और कंडेनसर के समग्र गर्मी हस्तांतरण गुणांक में भी सुधार होता है व इसे ग्रामीण स्तर पर लागू करने की गुंजाइश हो सकती है। हवा के वायुमंडलीय स्थिति के आधार पर मध्यम स्तर पर शीतलन प्रभाव का उत्पादन करने के लिए सदियों से बाष्पीकरणीय शीतलन का उपयोग किया गया है। वाष्पशील शीतलन प्रणाली में प्रयुक्त पानी के एक हिस्से को वाष्पित करने के लिए हवा की उचित गर्मी का उपयोग किया जाता है जो हवा के तापमान को कम करता है। ऐसे दूध कूलर के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने व इवोपोरेटीव कूलिंग सिस्टम को विकसित करने की आवश्यकता है ताकि बल्क मिल्क कूलर की परिचालन लागत को कम किया जा सके। ऊर्जा का संरक्षण न केवल दूध की चिलिंग की लागत को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि पर्यावरण में ग्रीन हाउस गैसेस के उत्सर्जन को कम करने में भी मदद करता है। प्रशीतन संयंत्र के संघनक दबाव बहुत संघनक माध्यम के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली वायु के तापमान पर निर्भर करता है।

दुग्ध प्रसंस्करण हेतु पाश्चराइजेशन तकनीक

पाश्चरीकरण एक हल्का उष्मीय उपचार प्रक्रिया है जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के खाद्य उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला पर किया जाता है। पाश्चराइजेशन प्रक्रिया लुई पाश्चर द्वारा विकसित की गई थी। यह ऐसे तापमान के लिए और ऐसे समय के लिए दूध को गर्म करने की प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया गया है जिसके द्वारा उनमें उपस्थित किसी भी रोगजनकों को नष्ट करने की आवश्यकता होती है जो दुग्ध व दुग्ध उत्पादों में मौजूद हो सकते हैं और साथ ही उनके संरचना, स्वाद और पोषक मूल्यों में न्यूनतम बदलाव लाते हैं । गाय, भैंस, ऊंट व मिश्रित दुग्ध को विभिन्न श्रोतों से एकत्र कर सर्वप्रथम बी एम सी (बल्क मिल्क कूलर) में ठंढा होने के लिए रखा जाता है, जिसमे तापक्रम 4 डिग्री के लगभग नियत रखी जाती है ताकि माइक्रोबियल गुणन की गति न्यूनतम रहे। तत्पश्चात इस ठंढे दुग्ध को डबल जैकेटेड टैंकर (जिसमें दुग्ध का तापमान 4 डिग्री के लगभग ही नियत रहता है) द्वारा मिल्क प्रसंस्करण प्लांट लाया जाता है। मिल्क प्रसंस्करण प्लांट में उष्मीय विधि द्वारा दूध के प्रसंस्करण हेतु पाश्चराइजेशन पद्धति पहली प्रक्रिया है। पाश्चराइजेशन के दो प्राथमिक उद्देश्य रोगजनक बैक्टीरिया को दूर करना व खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ में विस्तार करना है। पाश्चराइजेशन का मतलब है कि दूध व दूध उत्पाद के प्रत्येक कण को एक विशिष्ट तापमान पर निर्दिष्ट अवधि, उदाहरणार्थः निम्न तापक्रम अधिक समय (एल टी एल टी)– पद्धति में 63 डिग्री सेल्सियस पर 30 मिनट तक, अल्ट्रा हाई तापक्रम (यू एच टी) –विधि में 135 से 140 डिग्री सेल्सियस पर 1 से 3 सेकेण्ड तक दुग्ध अथवा दुग्ध उत्पादों ऊष्मीय विधि द्वारा उपचारित करना होता है। इससे दुग्ध में उपस्थित मुख्यतः सभी प्रकार के हानिकारक बैक्टीरिया, रोगजन्य विषाणु और अन्य सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते

चित्र 4: प्रत्यक्ष–खुले में उबलना अच्छा नहीं

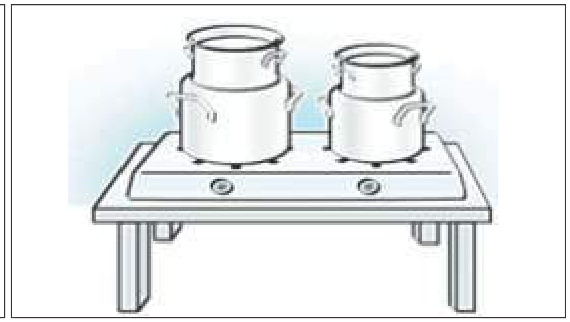

चित्र 5: डबल जैकेट बॉयलर स्वच्छ व उत्तम

हैं जो उत्पादों के साथ साथ उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य को भी प्रभावित कर सकते हैं। यह विकसित तकनीक दूध को सुरक्षित बनाता है और साथ ही साथ इसकी गुणवत्ता को भी बेहतर बनाता है एवं इस प्रकट उपचारित दूध और दुग्ध उत्पादों को खराब हुए बिना लंबे समय तक संरक्षित व सुरक्षित रखा जा सकता है। प्राचीन व सरल विधि में सामान्यतः किसान अपने दूध को खुले में सीधे उबाल कर उपयोग करते हैं। हालांकि प्रत्यक्ष व खुले में उबलना अस्वाभाविक है, क्योंकि यह बाहरी कणों या जीवाणुओं से संदूषण का कारण भी बन सकता है। अप्रत्यक्ष पद्धति में दूध को एक बड़े धातु के बर्तन कोन–टेनिंग पानी के अंदर रख सकते हैं ताकि पानी दूध के चारों ओर एक जैकेट बना सके। खुली आग या गैस स्टोव या बिजली के गर्म प्लेट का उपयोग करके बड़े बाहरी बर्तन को गर्म करें ।

दुग्ध के पाश्चराइजेशन की विधियाँ:

बैच पास्चराइजेशन विधि

(निम्न तापक्रम अधिक समय– एल टी एल टी): कम से कम 30 मिनट के लिए 63 डिग्री सेल्सियस पर दूध को ऊष्मीय उपचार देना। यह विधि छोटे पैमाने पर दुग्ध उत्पादकों और उत्पादक सहकारी समितियों के लिए उपयुक्त है। बैच या लो–टेम्प्रेचर–लॉन्ग–टाइम या होल्डर पास्चुरीकरण प्रक्रिया दूध को पाश्चुरीकृत करने की पारंपरिक विधि है। इस विधि में दुग्ध या दुग्ध उत्पाद को कम से कम 30 मिनट के लिए लगभग 63 डिग्री सेल्सियस तक गर्म कर उष्मीय उपचार करने की आवश्यकता होती है। बैच विधि में द्रव दूध को एक वैट पाश्चराइजर में रखा जाता है, जिसमें एक मिल्क वैट होता है जो पानी या भाप की उष्मीय उर्जा द्वारा उपचारित होता व तेजी से घूमता है। दूध को ठंडा करने के लिए या तो दूध को मिल्क वैट में ठंडा होने दिया जाता है या दूध को मिल्क वैट से निकाल दिया जाता है। आइसक्रीम उद्योग इस प्रक्रिया का प्राथमिक उपयोगकर्ता है।

उच्च तापमान कम समय विधि (एच टी एस टी) पास्चराइजेशन:

कम से कम 15 मिनट के लिए 72 °C) यह दूध की अधिक मात्रा के लिए काफी उपयुक्त विधि है । उदाहरण : एक बार में 250 लीटर से अधिक। फ्लैश पाश्चराइजेशन, जिसे ''उच्च–तापमान अल्पकालिक'' (एच टी एस टी) प्रसंस्करण भी कहा जाता है, फल और सब्जी के रस, बीयर, कोषेर वाइन और दूध जैसे कुछ डेयरी उत्पादों जैसे नाशपाती पेय का उष्मीय पाश्चुरीकरण की एक बहुत ही उत्तम व प्रचलित विधि है। अन्य पाश्चराइजेशन प्रक्रियाओं की तुलना में यह उत्पादों का रंग और स्वाद को बेहतर बनाए रखता है, लेकिन कुछ चीजों में पाया गया कि यह प्रक्रिया अलग–अलग है। दुग्ध के कंटेनरों को भरने से पहले खराब सूक्ष्मजीवों को मारने के लिए एवं उत्पादों को सुरक्षित बनाने के लिए और अनपेक्षित खाद्य पदार्थों की तुलना में उनके शेल्फ जीवन का विस्तार करने के लिए फ्लैश पास्चुरीकरण तकनीक का उपयोग किया जाता है। पोस्ट–पाश्चराइजेशन संदूषण को रोकने के लिए इसे एसेप्टिक प्रसंस्करण तकनीक के साथ ही संयोजन में

किया जाना चाहिए। कंटेनर भरने से पहले खराब व रोग फैलाने वाले सूक्ष्मजीवों को मारने के लिए फ्लैश पास्चराइजेशन तकनीक का उपयोग बहुतायत में किया जाता है।

अल्ट्रा उच्च तापमान विधि (यू एच टी): इस विधि में दुग्ध अथवा दुग्ध उत्पादों को 135°C से 140 डिग्री सेल्सियस पर 1 से 3 सेकेण्ड तक ऊष्मीय विधि द्वारा उपचारित करना होता है। इसका प्रक्रम का उपयोग बड़े प्लांटों व कारखानों में बहुतायत में किया जाता है । इसके लिए विशेष मशीनरी की आवश्यकता होती है और इस विधि द्वारा उपचारित दुग्ध व दुग्ध उत्पादों को बिना प्रशीतन के भी 6 महीने तक संग्रहीत किया जा सकता है। अल्ट्रा–हाई टेम्परेचर प्रोसेसिंग (यू एच टी) या अल्ट्रा–हीट ट्रीटमेंट या अल्ट्रा–पाश्चराइजेशन एक फूड प्रोसेसिंग टेक्नोलॉजी है, जो लिक्विड फूड, मुख्य रूप से दूध को 135 °C (275 °F) से ऊपर 2 से 5 सेकंड के लिए गर्म करके स्टरलाइज करता है। इतना उच्च तापमान दूध व दुग्ध व दुग्ध उत्पादों में उपस्थित हरेक प्रकार के विषाणुओं, रोगजन्य कीटाणुओं व बीजाणुओं को मारने के लिए काफी होता है एवं इस विधि द्वारा उपचारित उत्पाद पूर्ण रूप से सुरक्षित होते हैं। यूएचटी दूध पहली बार 1960 के दशक में विकसित किया गया था और धीरे धीरे इसकी तकनीक में काफी विकास व सुधार होते गए व यूएचटी उपचारित उत्पादों की उपलब्धता बढती गयी।

दुग्ध उत्पादों की शेल्फ लाइफ

देश में दुग्ध की प्रतिदिन उपलब्धता में निरंतर वृद्धि के साथ साथ दुग्ध के विभिन्न उत्पादों की उपलब्धता में भी समानुपाती वृद्धि हुई है। बाजार में आज–कल नाना प्रकार के दुग्ध उत्पाद उपलब्ध हैं, जिनका उत्पादन पिछले दशक में बिलकुल भी नहीं हुआ था। विभिन्न शोधों के आधार पर ऐसा पाया गया है कि भारतीय जलवायु में खाद्य–पदार्थों में से खासकर गाय, भैंस अथवा मिश्रित दूध व दूध से बने उत्पादों की शेल्फ लाइफ सामान्यतः कम होती है और सामान्य तापक्रम पर वे जल्दी खराब होने लगते हैं। दुग्ध व विभिन्न प्रकार के दुग्ध उत्पादों में माइक्रोबियल काउंट मान को नियंत्रित करने हेतु इन्हें फ्रिज या रेफ्रिजरेशन तापक्रम पर रखा जाता है, ताकि माइक्रोबियल गुणन की गति न्यूनतम स्तर पर या बहुत ही धीमी रहे। वैज्ञानिक शोधों के अनुसार यह पाया गया है कि चार डिग्री या चार डिग्री से कम तापक्रम पर दुग्ध, दुग्ध उत्पादों व विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों में माइक्रोबियल गुणन की गति काफी धीमी या लगभग नगण्य रहती है, तत्पश्चात शोधों से यह भी सिद्ध हुआ है कि माइक्रोबियल गुणन की गति तापक्रम बढ़ने के साथ साथ तेजी से बढती जाती है। अतः शोधकर्ताओं के समक्ष दुग्ध, दुग्ध उत्पादों व विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों की उत्तम गुणवत्ता को संरक्षित रखने हेतु उन्हें उचित तापक्रम उपलब्ध कराना है, जिससे ये चार डिग्री या उससे कम तापक्रम पर लम्बे समय तक संरक्षित व सुरक्षित रखे जा सके। शोध–पत्रों के अनुसार गाय के दूध में प्रति मिली लीटर माइक्रोबियल काउन्ट 10^5 से अधिक नहीं होना चाहिए, साथ ही साथ गाय, भैंस अथवा मिश्रित दूध में माइक्रोबियल काउन्ट का मान 10^5 प्रति मिली लीटर से कम होने पर ही इस दूध को उत्तम गुणवत्ता की श्रेणी में रखा जाता है व इसे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में स्वीकारा जाता है। दूध उत्पादों में दही, पनीर, खोया आदि का उपयोग भारत में व अन्य देशों में बहुतायत में होता है।

दुग्ध उत्पादों के साथ साथ हर खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ के दौरान मुख्यतः उनमें तीन प्रकार के परिवर्तन होते हैं। ये तीन मुख्य परिवर्तन हैं – भौतिक, रासायनिक व माइक्रोबियल काउन्ट मान में परिवर्तन। इन परिवर्तनों में से मुख्यतः रासायनिक व माइक्रोबियल काउन्ट मान में परिवर्तन द्वारा खाद्य पदार्थों व दूध व दूध के उत्पादों की शेल्फ लाइफ प्रभावित होती है। इनके रंगों में भी इनकी गुणवत्ता के कारण परिवर्तन होता है, साथ ही साथ खराब होने के पश्चात ये अपना प्राकृतिक सौन्दर्य खो देते हैं व इनकी गंध भी खराब होने पर आसानी से पहचानी जा सकती है।

दुग्ध उत्पादों में अगर हम पनीर की बात करें तो विभिन्न शोधों द्वारा यह पाया गया है कि सामान्य तापक्रम पर पनीर लगभग एक दिन (24 घंटे) तक ही सुरक्षित रह सकता है, जबकि रेफ्रिजेरेशन तापक्रम पर इसे

लगभग सात दिनों तक उत्तम गुणवत्ता की अवस्था में सुरक्षित रखा जा सकता है। भारतीय खान–पान व खासकर शाकाहारी लागों के लिए गाय या भैस के दुग्ध से बना पनीर ऐसा उपयोगी उत्पाद है, जो मुख्य आहार का अंग होने के साथ साथ आजकल हर होटलों, घरों, शादी–ब्याह या पार्टी में बहुतायत में उपयोग में लाया जाता है। पनीर में उपस्थित पौष्टिक तत्वों के कारण ये स्वास्थ्य की दृष्टिकोण से भी बहुत ही फायदेमंद आहार है। देश के हर कोने में पालक पनीर, मटर पनीर, पनीर–टिक्का, पनीर के पकौड़े आदि आजकल हर होटलों, पार्टियों, घरों आदि में काफी मात्रा में पकाए व स्वाद व चाव के साथ खाए व खिलाये भी जाते हैं।

प्रसंस्करण की बढती मांग व उत्तम गुणवत्ता हेतु ऑटोमेशन तकनीक

दुग्ध उत्पादों से सम्बंधित विभिन्न शोध पत्रों में यह यह पाया गया है कि विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ – खासकर दुग्ध व दुग्ध के विभिन्न उत्पादों की गुणवत्ता बरकरार रखने हेतु उनमें होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाएं, उनके माइक्रोबियल काउन्ट–मान तथा उनके रख–रखाव व सफाई आदि पर काफी ध्यान रखना पड़ता है। खाद्य पदार्थों को खुले में रखने व बार–बार छूने से उनमें रासायनिक प्रतिक्रिया की दर व माइक्रोबियल संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है। अतः बाह्य संक्रमण व बार बार छूने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए स्वचालन (ऑटोमेशन) तकनीक अपनाई जाती है। ऑटोमेशन तकनीक में मानवीय दखल कम हो जाती है व मशीन निर्धारित ढंग से सुरक्षित वातावरण में बिना किसी बाह्य वातावरण के हस्तक्षेप के अपना कार्य सम्पादित करता है। मानवीय भागीदारी व बाह्य वातावरण के हस्तक्षेप व दखल में कमी आने से मानवीय भूलों व गल्तियों में तो कमी आती ही है साथ ही साथ खाद्य पदार्थों में माइक्रोबियल संक्रमण की संभावनाओं में भी कमी आती है। इसके फलस्वरूप खाद्य पदार्थों की सेल्फ लाइफ में वृद्धि होती है व इन्हें अधिक समय तक उत्तम गुणवत्ता के साथ संरक्षित व सुरक्षित रखा जा सकता है। गाय या भैंस के दूध से पनीर बनाने हेतु उपयोग में लाये गए दूध के प्रकार, उनमें उपस्थित प्रतिशत नमी, जल, वसा, प्रोटीन, लैक्टोज आदि की मात्रा पर ही पनीर का रासायनिक संयोजन व उसकी गुणवत्ता निर्भर करती है। गाय व भैंस के दूध में उपस्थित वसा की मात्रा से पनीर में भी वसा की मात्रा काफी हद तक प्रभावित होती है।

फूड प्रोसेसिंग इंडस्ट्री के लिए खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता, उनका रख–रखाव आदि काफी महत्वपूर्ण है। हर उपभोक्ता पौष्टिक, स्वच्छ, उत्तम गुणवत्ता व स्वास्थ्य की दृष्टिकोण से पूरी तरह सुरक्षित खाद्य पदार्थ ही बाजार से खरीदना चाहता है। विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ व खासकर दुग्ध व दुग्ध के विभिन्न उत्पादों की गुणवत्ता बरकरार रखने हेतु उनमें होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाएं, उनके माइक्रोबियल काउन्ट मान तथा उनके रख–रखाव व सफाई आदि पर काफी ध्यान रखना पड़ता है। खाद्य पदार्थों को खुले में रखने व बार–बार छूने से उनमें रासायनिक प्रतिक्रिया की दर व माइक्रोबियल संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है। अतः बाह्य संक्रमण व बार बार छूने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए स्वचालन (ऑटोमेशन) तकनीक अपनाई जाती है। ऑटोमेशन तकनीक में मानवीय दखल कम हो जाती है व मशीन निर्धारित ढंग से सुरक्षित वातावरण में बिना किसी बाह्य वातावरण के हस्तक्षेप के अपना कार्य सम्पादित करता है। मानवीय भागीदारी व बाह्य वातावरण के हस्तक्षेप व दखल में कमी आने से मानवीय भूलों व गल्तियों में तो कमी आती ही है साथ ही साथ खाद्य पदार्थों में माइक्रोबियल संक्रमण की संभावनाओं में भी कमी आती है। इसके फलस्वरूप खाद्य पदार्थों की सेल्फ लाइफ में वृद्धि होती है व इन्हें अधिक समय तक उत्तम गुणवत्ता के साथ संरक्षित व सुरक्षित रखा जा सकता है।

सार

शोध कार्यों में नई तकनीकों के विकास द्वारा खाद्य पदार्थों की सेल्फ लाइफ में वृद्धि संभव होती है व इन्हें अधिक समय तक उत्तम गुणवत्ता के साथ संरक्षित व सुरक्षित रखा जा सकता है। इस शोध कार्य में उत्तम तकनीकों के विकास द्वारा छोटे पैमाने पर बल्क मिल्क कूलिंग सिस्टम को वाटर कूलिंग सिस्टम के साथ

संशोधित संघनक इकाई को विकसित किया गया और पाया गया कि पानी के ठंडा कंडेनसर का उपयोग करके शीतलन की दर में 0.2 से 0.3 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है व ठंडा होने का समय लगभग 30 से 35 मिनट तक कम हो गया। शीतलन समय में कमी से बिजली की खपत में लगभग 32 से 35 प्रतिशत की बचत हुई एवं कुल बिजली की आवश्यकता 1 से 1.5 किलोवाट प्रति घंटे तक कम हो गई। विद्युत ऊर्जा खपत में जल शीतलन प्रणाली के प्रयोग द्वारा विद्युत ऊर्जा खपत में प्रतिशत बचत को तालिका–3 में दर्शया गया है। इस विकसित तकनीक से ग्रामीण स्तर के डेरी कृषक दुग्ध को कम बिजली की खपत में ही ठंढा रख पायेंगे व दुग्ध की गुणवत्ता लम्बे समय तक संरक्षित रह पाएगी। उत्तम प्रसंस्करण, साफ सफाई का उचित प्रबंधन, स्वचालन तकनीक, उन्नत मशीन आदि की सहायता से फूड इंडस्ट्री व डेरी प्लांट स्वास्थवर्धक उत्पाद निर्मित कर पायेंगे व उपभोक्ताओं को विभिन्न प्रकार के अच्छे उत्पाद प्राप्त हो सकेंगे। डेरी कृषक इन उन्नत तकनीकों के द्वारा कम लागत में अच्छी व स्वाथ्यवर्धक उत्पाद खुद बनाकर बाजार में उपलब्ध करायेंगे, जिससे किसानों की आय में वृद्धि होगी।

सन्दर्भः

चित्रनायक, एम मंजुनाथ, मेनन रेखा आर, एफ मैग्दि्लन ईई, के जयराज राव, एस वरलक्ष्मी व एस देशपांडे – फिजिको केमिकल कैरेक्टराईजेशन ऑफ पनीर असेस्ड बाय वैरिंग प्रेशर टाइम कम्बीनेशन, इंडियन जर्नल ऑफ डेरी साइंस, मईदृजून 2017, अंक –70, नंबर–3, पेज :280–286

चित्रनायक, मंजुनाथ एम, महेश कुमार जी, एम रेखा आर, अमिता वी, मिंज पी एस व के जयराज राव टेक्सचरल एंड फिजिको केमिकल एनालिसिस ऑफ पनीर प्रिपेयर्ड बाय ऑटोमेटेड टेकनीक, इंडियन जर्नल ऑफ डेरी साइंस, नवंबर–दिसम्बर 2017, अंक–70, नंबर–6 , पेजः 633–641

चित्रनायक, एम. मंजुनाथ, महेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वी, खुशबू कुमारी, जितेन्द्र डबास व सुनील कुमार–गाय के दुग्ध से पनीर बनाने की स्वचालन तकनीक–खेती, भाकृअनुप–हिन्दी पत्रिका, वर्ष –71, अंक–11, मार्च– 2019, पृष्ठ– 6– 8

चित्रनायक, मंजुनाथ एम, महेश कुमार जी, आशीष कुमार सिंह, अमिता वैराट एवं खुशबु कुमारी – उच्च गुणवत्ता के पनीर हेतु स्वचलित प्रेस तकनीक का विकास, दुग्ध गंगा, अंक.6, 2016–2017, पृष्ठः68–69, भा.कृ.अनु.प. –रा.डे.अनु.सं. (मानद विश्वविद्यालय), करनाल

चित्रनायक, पी एस मिंज, पी बर्नवाल, अमिता वी, खुशबु कुमारी, अंकित दीप एवं जितेन्द्र डबास– पनीर उत्पादन हेतु स्वचालन तकनीक, डेरी समाचार, जुलाई–सितम्बर 2017, पृष्ठः 6–8, भा.कृ.अनु.प.–रा.डे.अनु.सं. (मानद विश्वविद्यालय), करनाल

चित्रनायक, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबु कुमारी, जितेन्द्र डबास, पी बर्नवाल व सुनील कुमार मध्यम वर्गीय कृषक हेतु डेरी स्वचालन तकनीक, दुग्ध गंगा, अंक.7, 2017–2018, पृष्ठः 79 –82, भा.कृ.अनु.प.–रा.डे.अनु.सं. (मानद विश्वविद्यालय), करनाल

चित्रनायक, राकेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबु कुमारी, जितेन्द्र डबास व सुनील कुमार छोटे किसानों पनीर बनाने की तकनीक, दुग्ध सरिता, वर्ष –2, वॉल्यूम–6, नवम्बर दृदिसम्बर, 2018, पृष्ठः 8 –11, इंडियन डेरी एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित

चित्रनायक, प्रशांत मिंज, जितेन्द्र डबास, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, व सुनील कुमार – स्वचालन तकनीक द्वारा दही उत्पादन, दुग्ध सरिता, इंडियन डेरी एसोसिएशन, वर्ष –3, अंक–3, मई जून, 2019, पृष्ठ– 25–28

चित्रनायक, मंजुनाथ एम, पी बर्नवाल, पी एस मिंज, अमिता वैराट व ए के सिंह माइक्रोवेव प्रसंस्करण द्वारा खाद्य संरक्षण व पनीर की शेल्फ लाइफ में वृद्धि, दुग्ध गंगा, अंक. 5, 2015 –2016, पृष्ठः 27 –28, भा.कृ.अनु.प.–रा.डे. अनु.सं. (मानद विश्वविद्यालय), करनाल

32 जैविक खेती अपनाएं, पर्यावरण को शुद्ध बनाएं

राकेश कुमार, मुनीष लहरवान, मोहर सिंह एवं अरुण कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

जैविक खेती सस्ती तो है ही जीवन और जमीन को बचाने के लिए भी जरुरी है। 1960 से 1990 तक कृषि उत्पादन को बढाने के लिए जिस तेजी और जिस तरह से रासायनिक खादों और कीटनाशकों का इस्तेमाल किया गया उसने हमारे खेतों और जीवन दोनों को सकंट मे डाल दिया है। त्वचा रोग, हृदयरोग व कैंसर जैसी बीमारियों का मुख्य कारण भी कृषि मे रसायनों के उपयोग को माना जा रहा है। कृषि रसायनों के निरतंर प्रयोग से कीटनाशक प्रतिरोध बढा तथा अनेकों रोगों का पुनरुत्थान हुआ। तब पर्यावरण की अनदेखी की गई थी, जिसकी कीमत हम आज चुका रहे हैं। जैविक खेती एक पूर्व उत्पादन प्रणाली है जो कीटों के प्रबंधन के साथ मिट्टी की उवर्रक शक्ति बढ़ाने एवं लाभकारी जीवों के सरंक्षण पर भी जोर देती है।

जैविक खेती क्या है

ऐसी खेती जिसमें रासायनिक खाद, कीटनाशक, फफूँदनाशक और खरपतवार नाशक आदि का प्रयोग न करते हुए केचुँआ खाद, कम्पोस्ट, देशी खाद, बायोगैस की खाद, जीवाणु खाद और जैविक कीटनाशक का प्रयोग करके फसल की पैदावार ली जाती है।

जैविक सामग्री क्या है

जैविक सामग्री है जो कि बैक्टीरिया और अन्य जीवाणुओं से लम्बे समय तक सडा कर बनाया गया है। सामग्री जैसे पत्ते, फलों का छिलका और जानवरो की खाद से खाद बनाया जाता है। खाद सस्ता, आसानी से बनाया जाता है।

जैविक खेती की मिट्टी जांच

जैविक खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी मे जीवांश की मात्रा 0.8 से 1.5 प्रतिशत तक हो। मिट्टी मे सूक्ष्म जीवों की मात्रा 1:10 जीव प्रति ग्राम मिट्टी मे होने चाहिए। एक फीट मिट्टी मे केचुँओं की संख्या 3 से लेकर 5 तक होनी चाहिए।

बीज का उपचार

जैविक खेती मे प्रयोग होने वाले बीजों को गौमूत्र मे मिलाकर या गौमूत्र मे हल्दी मिलाकर बीज उपचार करे। इसके अलावा बीजामृत, पंचगव्य, एजोटोबैक्टर, एजोसिप्रलियम, राईजोबियम या फास्फोरस विलेयक के

जैविक खादों मे पोषक तत्वो की मात्रा (प्रतिशत)

खाद की प्रकार	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटेशियम
गोबर खाद	0.52	0.25	0.45
नीम केक	5.20	1.00	1.40
केचुँआ खाद	1.75–2.5	1.55–2.25	1.25–2.00
सिवेज साइलेज	4.50	2.00	1.00
मुर्गी खाद	4.40	2.10	2.60
हरी खाद	2.50	0.20	2.10
कम्पोस्ट खाद	0.70	0.50	1.00

साथ मिलाकर बीज उपचार करना चाहिए। प्रतिरोधी फफूंद (ट्राइकोडर्मा विरिडे) को भी 5 ग्राम प्रति किलो की दर से बुवाई के समय बीच उपचार करें।

कम्पोस्ट बनाने की विधि

इस विधि से खाद बनाने के लिए पहले गढ्ढा बनाए। उसकी दीवार ईंट से तैयार करें। पहली दो पंक्तियों की जुडाई के बाद हर ईंट के बीच करीब सात इंच का छेद रखें। गढ्ढे की दीवार और फर्श को गोबर और मिट्टी के घोल से लिपें। अब इसमे 60 प्रतिशत वानस्पतिक पदार्थ और 40 प्रतिशत हरा चारा डाले। इससे कार्बन एंव नत्रजन का अनुपात बना रहता है। दीमक से बचाव के लिए नीम की पत्तियाँ डाले। खाद की गुणवत्ता को बढाने के लिए इसमें गोमत्र से भीगे पुआल और खरपतवार का इस्तेमाल करें ताकि जल्दी खाद तैयार हो इसके और इसके साथ हम गोबर की जगह गोबर गैस की सलरी धोल का इस्तेमाल कर सकते है।

कम्पोस्ट का उपयोग एवं लाभ

इन खादो का पूरा लाभ तभी मिलता हैं जब इन्हें नम मिट्टी मे बुवाई से लगभग दो सप्ताह पूर्व मिला दिया जाये। इनको खेत में फैलाकर जुताई करके शीघ्र मिला दिया जाये। इसके उपयोग से मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार होता है। मृदा की जल अवशोषण व जल धारण क्षमता में वृद्धि हो जाती है। कम्पोस्ट से फसलों की प्रमुख पोषण तत्व जैसे नत्रजन, फास्फोरस और पोटाश प्राप्त हो जाते है।

जैविक–फार्मूलेशन

बीजामृत तैयार करने की विधि

ताजा गोबर को 5 कि.ग्राम के जूट के थैले मे भरकर पानी मे लटकाए। इस 12 से 18 घंटे बाद निचोड दें। इसमें 5 लीटर गौमूत्र, 50ग्राम वटवृक्ष के नीचे की मिट्टी (विरजीन मिट्टी)व नीबू पानी मिलाएं। पानी मिलाकर इसकी मात्रा 20 लीटर कर ले। इस मिश्रण को 8 से 12 घंटे तक ढककर रखें। बीजामृत को छानकर प्रयोग करें।

जीवा मृत तैयार करने की विधि

10 कि॰ग्रा॰ गोबर ,10 कि॰ग्रा॰ गौमूत्र, 2 कि॰ग्रा॰ गुड, 2 कि॰ग्रा॰ चने का आटा व 1 कि॰ग्रा॰ वटवृक्ष के नीचे की मिट्टी को मिलाकर एक सप्ताह तक बंद रखें तथा मिश्रण को एक दिन मे तीन बार हिलाते रहे।

पंच गव्य

4 लीटर गाय के गोबर का घोल तैयार करके उसमें 2 किलो ग्राम ताजा गाय का गोबर, 3 लीटर गोमूत्र, 2 लीटर दूध, 2 लीटर दही और 1 कि॰ग्रा॰ देशी घी डालें। मिश्रण को 10–15 दिनों के लिए एक हवा बंद बर्तन मे किण्वन के लिए धूप मे रखें तथा रोज हिलाएं। नर्सरी और पॉली हाउस मे मिट्टी को भिगोने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।

नीम के बीजों एवं पत्तीयों का अर्क

4 कि॰ग्रा॰ पिसे हुए नीम के बीज एवं नीम के पत्तों को लगभग बराबर मात्रा मे पानी में डाले और इस सामग्री को आधा होने तक उबालें 2 लीटर पुराना गौमूत्र मिलाकर छानकर 15–20 गुना पतला करने के बाद इस घोल का उपयोग करें।

नीशीजीव प्रबधंन

- नीशीजीवों का भक्षण करने वाले जीव–जंतु तथा रीधी प्रजातियाँ नीशीजीव नियंत्रण मे सबसे अधिक प्रभावी सिद्ध हुई है। ट्राइग्रामा 40–50 हजार अंडे/हेक्टेयर, चौलो नस बलैक बर्नी 15–20 हजार अंडे प्रति हेक्टेयर, एपिनटेलिस 15–20 हजार अंडे बुआई के 15 दिन बाद तथा नीशीजीवों का भक्षण करने वाले जीव जंतु तथा अन्य परजीवी बुआई के 30 दिन बाद प्रयोग करने सै जैविक खेती मे नाशी जीव

समस्या का नियंत्रण प्रभावशाली ढंग से हो सकता है

- स्यूडोमोनास, ट्राइकोडर्मा विरिडे, स्ट्रेप्टोमाइसेस, पैसिलीमाइसेस एवं अन्य जैविक प्रतिनिधि है। जो जैविक खेती मे रोगजनकों को रोकने के लिए उपयोग की जा रही है।
- वानस्पतिक वृक्ष कीटनाशी गुणों के कारण जाने जाते है। ऐसे वृक्षों की पत्तियों या बीजों का अर्क कीटों एवं रोग जनकों के प्रबंधन मे प्रयोग किया जा सकता है।
- इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनो के प्रयोग से किसान जैविक खेती को अपनाकर संसार की गंभीर बीमारियों से निजात दिलाने मे अहम भूमिका निभा सकते है तथा अपनी आमदनी को भी कई गुणा तक बढा सकते है। मानव कल्याण के लिए यह एक साहसिक कदम होगा।

कार्यस्थल पर कोविड-19 के प्रसार की रोकथाम पर एडवाइजरी

सैनिटाइजेशन / कीटाणुशोधन

1. सैनिटाइजर डिस्पेंसर को दरवाजे पर रखा जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करें कि प्रयोगशाला या कार्यालय में प्रवेश करने वाले कर्मचारी सैनिटाइजर का उपयोग अवश्य करते हैं।
2. दरवाजे के हैंडल, डोर पैन, ग्लास पैन और सभी सतहों जैसे बिजली के स्विच, श्रमिकों के साथ सीधे संपर्क में आने वाले प्रयोगशाला उपकरणों को नियमित रूप से सैनिटाइजर से साफ किया जाना चाहिए। कृपया यह भी सुनिश्चित करें कि सफाई कर्मचारी हाथ के दस्ताने और मास्क जैसे सुरक्षा गियर पहनते हैं।
3. उन कार्यालयों में जहां फाइलों की आवाजाही(मूवमेंट) होती है, वहां एल्कोहल आधारित हैंड–रब का उपयोग बारम्बार सुनिश्चित करें।
4. हर सप्ताह कम से कम 2–3 बार गलियारों, कार्यालयों और प्रयोगशाला क्षेत्र के सैनिटाइजेशन(स्वच्छता) को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
5. लगातार फाइल मूवमेंट वाले लैब बेंचवर्क / टेबल, डेस्कटॉप, कीबोर्ड, टेलीफोन और ऑफिशियल टेबल को दिन में कम से कम एक बार या आवश्यकता के अनुसार सैनिटाइज़ किया जाना चाहिए।
6. सीढ़ी के साथ रेलिंग को हर रोज साफ किया जाना चाहिए।

सोशल डिस्टेन्सिंग एवं स्वास्थ्य की मॉनीटरिंग

7. ऐसे प्रयोगशाला / कार्यालय जहां कई लोग कार्य करते हैं, उन्हें कार्य के दौरान अपने दरवाजे खुले रखने चाहिए ताकि आपसी संपर्क को न्यूनतम किया जा सके।
8. एक स्पैन क्षेत्र में केवल एक व्यक्ति ही रहना चाहिए। बड़े कार्यालयों / प्रयोगशालाओं में, रहने वालों को हर समय सोशल डिस्टेन्सिंग रखनी चाहिए व मास्क पहनना चाहिए और सीधे संपर्क से बचना चाहिए।
9. कार्यालयों / प्रयोगशालाओं में उपस्थित होने वाले व्यक्तियों में तापमान या खांसी / जुकाम के कोई लक्षण नहीं होने चाहिए। यदि कोई भी व्यक्ति इस तरह के लक्षणों के साथ पाया जाता है, तो इसे मानव स्वास्थ्य परिसर के संज्ञान में लाया जाना चाहिए।

आरोग्य सेतु एप्लीकेशन

10. सरकारी एडवाइजरी के अनुसार, सभी कर्मचारियों को अपने मोबाइल पर आरोग्य सेतु एप्लीकेशन इंस्टाल करना चाहिए एवं वे अपने मोबाइल की लोकेशन शेयरिंग एवं ब्लुटूथ को सदैव ऑन रखेंगे। इस एप्लीकेशन के माध्यम से आप यह जान सकेंगे कि आप किसी कोविड–19 संक्रमित व्यक्ति के संपर्क में तो नहीं आ रहे हैं। अपने सभी स्टाफ को यह परामर्श भी दें कि वे कार्यालय से प्रस्थान से पहले आरोग्य सेतु एप्प को अवश्य चेक करें।

मक्का की फसल के रोग और उनकी रोकथाम

33

मुनीष लहरवान[1], राकेश कुमार[1], मोहर सिंह[1] एवं अंकुश[2]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2] पादप रोग विभाग, चौ.च.सि.ह.कृ.वि., हिसार

मेडिस पत्ता अंगमारी

मक्का को विश्व में खाद्यान्न फसलों की रानी कहा जाता है क्योंकि इसकी उत्पादन क्षमता खाद्यान्न फसलों में सबसे अधिक है। पहले मक्का को विशेष रूप से गरीबों का मुख्य भोजन माना जाता था जबकि अब ऐसा नहीं है। अब इसका उपयोग मानव आहार के साथ–साथ कुक्कुट आहार, पशु आहार तथा बीज के रुप में किया जाने लगा है। इसके अलावा मक्का तेल, साबुन इत्यादि बनाने के लिए भी प्रयोग की जाती है। मक्का से भारत वर्श में 1000 से ज्यादा उत्पाद तैयार किये जाते हैं। मक्का, चावल और गेहूं के बाद तीसरी सबसे महत्वपूर्ण अनाज की फसल है। वैश्विक स्तर पर मक्का में लगभग 9 प्रतिशत उपज के नुकसान का अनुमान विभिन्न रोगों के कारण लगाया गया है। भारत में मक्का की फसल को इन रोगों से 13.2 प्रतिशत तक नुकसान होता है इस लेख में मक्का की फसल को हानि पहुंचाने वाले महत्वपूर्ण रोगों के साथ–साथ उनके रोगजनक, लक्षण और उनके वितरण, रोगचक्र प्रबंधन तकनीकी आदि के बारे में बताया गया है ताकि अधिक उपज ली जा सके।

1. मेडिस पत्ता अंगमारी

कारकः—यह रोग *हेल्मिन्थोस्पोरियम मायाडिस* नामक फफूंद से होता हैं

लक्षणः—फफूंद मक्का पत्तियों पर छोटे और हीरे के असंगठित आकार के धब्बे पैदा करते हैं। ये धब्बे बाद मे लक्षण का बड़ा आकार ले लेते हैं। रोग के लक्षण धब्बे के आकार में काले, लाल भूरे रंग के हो जाते हैं। रोग के कारण पौधे के सभी हिस्सों जैसे की तनों, म्यानों और भुट्टों पर घाव बन जाते हैं। संक्रमित बीज अक्सर रोपने के 3 से 4 सप्ताह बाद गलकर मर जाते हैं।

रोगचक्रः—यह फफूंद मृदा में पड़े मक्का के फसल अवशेषो में मायसेलियम के रूप में अंकुरण हो जाते है। अनुकूल तापमान 20°–30° सेल्सियस और उच्च आर्द्रता के तहत फसल के अवशेष के भीतर मायसेलिया और कोनिडिया की वृदि होती है। इसके बाद हवा और वर्षा से जीवाणु फसल में एक जगह से दूसरी जगह पर फैल जाता है।

रोकथाम

- फसल की समय पर बुआई करें और स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का उपयोग करें और थीरम के साथ उपचारित करके बोएं।
- खेत की तैयारी करते समय 1 किलोग्राम ट्राइकोडरमा विरिडी / 25 किलोग्राम गोबर की खाद के साथ मिलाकर मिट्टी में डालना चाहिए।
- *हेल्मिन्थोस्पोरियम मायाडिस* ग्रसित पतियों को चुन कर हटा दे
- फसल पर रोग के लक्षण दिखते ही मैन्कोजेब 45 डब्ल्यूपी 3 ग्राम / लीटर पानी से छिड़काव करें।

2. टर्सिकम पत्ता अंगमारी

कारकः—यह रोग *एक्ससेरोहिलुम टर्सिकम* नामक फफूंद से होता हैं

लक्षणः—इस रोग के लक्षण पहले पत्तियों की निचली सतह पर दिखाई देते हैं पत्तियों पर छोटे अंडाकार

धब्बों के रूप में शुरू होते है। धब्बे हरे रंग के होते हैं, बाद में एक धुरी का आकार ले लेते हैं। नम मौसम में धब्बे के चारो तरफ भूरे रंग के धब्बे विकसित होते हैं। यह रोग ग्रस्त क्षेत्र बाद में झुलसा हुआ दिखता है। इस रोग को लंबे अंडाकार भूरे या भूरे धब्बों से पहचाना जा सकता है। जैसे ही मौसम बदलता है धब्बों की संख्या बढ़ जाती है। इस प्रकार सभी पत्तियां ढक जाती हैं। मक्का का पौधा मृत और धूसर दिखते हैं, जो सूखे पौधों के समान होते हैं।

रोगचक्र:

यह फफूंद मक्का की फसल के अवशेष में मायसेलियम और क्लैमाइडोस्पोर के रूप में लंबे समय तक पड़े रहते हैं। यह 18°–27° सेल्सियस तापमान और मध्यम आर्द्रता में वृद्धि करना शुरू कर देता है। फफूंद के जीवाणु (कोनिडिया) हवा और वर्षा के द्वारा मक्का की फसल एक खेत से दूसरे खेत मे फैल जाते हैं। रोग अगले साल भी इन कोनिडिया से फैलता हैं।

रोकथाम:

- फसल की समय पर बुआई करें और खेतो से फसल अवशेष को नष्ट कर दें।
- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का उपयोग करें। थीरम के साथ उपचारित करके बोएं।
- टर्सिकम पत्ता अंगमारी ग्रसित पतियों को चुन कर हटा दे।
- फसल पर रोग के लक्षण दिखते ही मैन्कोजेब 45 डब्ल्यूपी 3 ग्राम/लीटर पानी से छिड़काव करें

3. ब्राउन स्ट्रिप मृदुरोमिल आसिता

कारक:–यह रोग *स्क्लेरोफ्थोरा रायसिए* वर. *जीए* नामक फफूंद से होता हैं

लक्षण:–रोग के लक्षण पहले मक्का की निचली पत्तियों देखा जा सकता है। इस रोग में सर्वप्रथम धब्बे के आकार के लक्षण पत्तियों पर विकसित होते हैं। यह लक्षण पत्तों पर पीले आकार की 3 से 7 मि.मी चौड़ी धारियों वाले होते हैं। बाद में ये धारियां बैंगनी रंग की हो जाती हैं।

रोगचक्र:–इस फफूंद का इनोकुलम मृदा या पौधे के अवशेष में ऊस्पोर से आता है। फफूंद मायसेलियम बीज को संक्रमित करता है और नुकसान पहुंचाता है। सूखी पत्तियों में ऊस्पोर 3 से 5 साल तक जीवित रह सकते हैं। रोग संक्रमित बीज को 14 प्रतिशत नमी पर सुखाने पर 4 से अधिक सप्ताह तक संग्रहीत नहीं किया जा सकता। युवा पौधे रोग से सबसे अधिक संक्रमित होत हैं। बीज में रोग का विकास मृदा के 28° से 32° सेल्सियस के तापमान पर अधिक होता है।

रोकथाम

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज बोएं।
- पहली फसल के बचे हुए रोग ग्रस्त अवशेषों को नष्ट करें।
- बिजाई से पहले 2 ग्राम कारबेन्डाजिम 1 कि.ग्र. बीज के हिसाब से उपचारित करें या मेटालैक्सिल 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. की दर से बीज को उपचार करें।
- उरर्वकों को अनुशंसित मात्रा में ही प्रयोग करें।
- फसल पर रोग के लक्षण दिखते ही मैंकोजेब फूंफदीनाशक के 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव बुआई के 40 व 70 दिनों उपरांत करने से ब्राउन स्ट्रिप मृदुरोमिल आसिता से बचा जा सकता है अथवा मेटालैक्सिल 2.5 ग्राम/लीटर पानी की दर से फसल पर छिड़काव करें।

4. पट्टित पत्ती तथा आवरू अंगमारी

कारकः—यह रोग *रहिजोक्टोनिया सोलानी* प्रजाति *ससाकी* नामक फफूंद से होता हैं

लक्षणः—रोग के लक्षण पहले सांद्र बैंड और छल्लों के रूप मे मक्का के सबसे पुरानी पत्तियों और तने पर देखे जाते है। इस रोग के लक्षण 40–50 दिनों की मक्का की फसल पर सबसे निचली पत्तियों पर दिखाई देते है। रोग ग्रस्त पौधे भूरे रंग मे बदल जाते है फसल में यह लक्षण बाद में स्क्लेरोटिया का रूप ले लेते है। मक्का के भुट्टे पुरे तरह नष्ट हो जाते है और पत्तियां सुख जाती हैं।

रोगचक्रः—यह फफूंद मक्का के अवशेष, फसल के चारो तरफ खरपतवार और मृदा में स्क्लेरोटिया और मायसेलिया के रूप मे एक फसल से दूसरे फसल को सक्रंमित करता है यह जीवाणु मृदा मे एक साल तक जीवित रह सकते है अगर मृदा मे जैविक जीवाणु है, तो वह स्क्लेरोटिया और मायसेलिया को जैविक नियंत्रण विधि से खत्म कर देते है

पट्टित पत्ती तथा आवरू अंगमारी

रोकथाम

- फसल चक्र का प्रयोग करें।
- रोग ग्रसित फसल अवशेषों को जला दें।
- ट्राइकोडर्मा की 5 ग्राम प्रति 1 किलो ग्राम बीज के हिसाब से बीज उपचार करें।
- बिजाई से पहले 2 ग्राम कारबेन्डाजिम और 5–10 ग्राम *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* प्रति 1 कि.ग्र. बीज के हिसाब से उपचारित करें।
- फसल पर रोग के लक्षण दिखते ही मैन्कोजेब 75 डब्ल्यूपी/3 ग्राम/लीटर पानी से छिड़काव करें अथवा फसल पर रोग के लक्षण दिखते ही 10 से 15 दिनों के अंतराल पर दो बार प्रोपिकोनाजोल 250 मिली का छिड़काव करें।

5. रतुआ

कारकः—यह रोग *पोक्सिनिया सरगही* नामक फफूंद से होता हैं

लक्षणः—फफूंद मक्का के पत्तियों पर भूरे रंग के स्पोर बना देती हैं। इन स्पोर को हाथ से दूर करने पर पतियों पर भारी मात्रा मे धब्बे पत्तियों की दोनो तरफ दिखाई देते हैं। बाद मे यह स्पोर काले रंग के टेलिओस्पोर मे बदल जाते हैं।

रोगचक्रः—इस फफूंद के जीवनचक्र मे पांच बीजाणु चरण होते है। सबसे पहले यूरिडिनियोस्पोर्स इनोकुलम के पहले स्रोत के रूप मे फसल को संक्रमित करता है। यह बीजाणु कई किलोमीटर से हवा मे एक फसल से दूसरी फसल को रोग ग्रस्त करते है। इसके बाद पौधे मे टेलिओस्पोरस, बेसिडियोस्पोरेस, स्पर्मेटिया और एसीयोस्पोरस बनते हैं।

रोकथाम

- रोग ग्रसित फसल अवशेषों को जला दें।
- फसल पर इण्डो फील (मैन्कोजेब) एम–45 नामक दवा की 3 ग्राम प्रति लीटर पानी मे मिलाकर 10 दिन के अन्तर पर 2–3 बार या कैलेक्सिन 200 मिली प्रति एकड की दर से 200 लीटर पानी छिडकाव करे ।

6. चारकोल वृन्त सड़न रोग

कारकः—यह रोग *मैक्रोफोमिना फासेओलिना* नामक फफूंद से होता हैं

लक्षणः—इस रोग के लक्षण पौधे की ऊपरी पत्तियों का सूखना, तने का गिरना और पौधे पूरी तरह नष्ट होना है। इस रोग मे तने की इण्टरनोडेस पर कोयला/राख जैसी पाउडर बनती है तने को काट कर देखने पर पाउडर मे स्कोलरोटिया देखिए देते है।

रोगचक्रः—मृदा में स्केलेरोटिया के रूप में *मैक्रोफोमिना फासेओलिना* कई वर्षों तक निष्क्रिय अवस्था में रह सकते हैं। सूखी और गर्म जलवायु में ये क्वक मक्का के पौधों की जड़ों को सक्रंमित करते हैं।

रोकथाम

- फसल चक्र का प्रयोग करें।
- रोग ग्रसित फसल अवशेषों को जला दें।
- बिजाई से पहले 2 ग्राम कारबेन्डाजिम और 5–10 ग्राम *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* प्रति 1 कि.ग्र. बीज के हिसाब से उपचारित करें।

7. जीवाणु वृन्त सड़न

कारकः—यह रोग *पीथियम अपहिनेडेरमातुम* नामक फफूंद से होता हैं

लक्षणः—इस रोग मे फफूंद तने के निचले भाग को सडा देती है। सड़े हुए तने से एक विशेष प्रकार की गंध आती है। यह सड़न मक्का के पौधों पर बहुत दिनों तक आती है। रोग से पोधे की ऊपर वाली पत्तिया सूख जाती है। पत्तियां पीली पड जाती है और बाद मे काले रंग की हो जाती है।

रोगचक्रः—यह रोगजनक मृदा से उत्पन्न होता है और मृदा में फसल के अवशेषों में जीवित रह सकता है। सक्रमण का कारण मृदा मे लगभग 9 महीने तक जीवित रहता है मौसम मे 30°–35° सेल्सियस तथा 80–100 प्रतिशत आर्द्रता इस रोग के विकास के लिए प्रतिकूल है। वर्षा के साथ हवा इस रोग को फैलाने मे सहयता करते है।

रोकथाम

- फसल चक्र का प्रयोग करके लाएें।
- रोग ग्रसित फसल अवशेषों को जला दें।
- फसल पर रोग के लक्षण दिखते ही मैंकोजेब/रिडोमिल एमजेड 72 डब्ल्यू.पी. फूंफदीनाशक के 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव करे ।

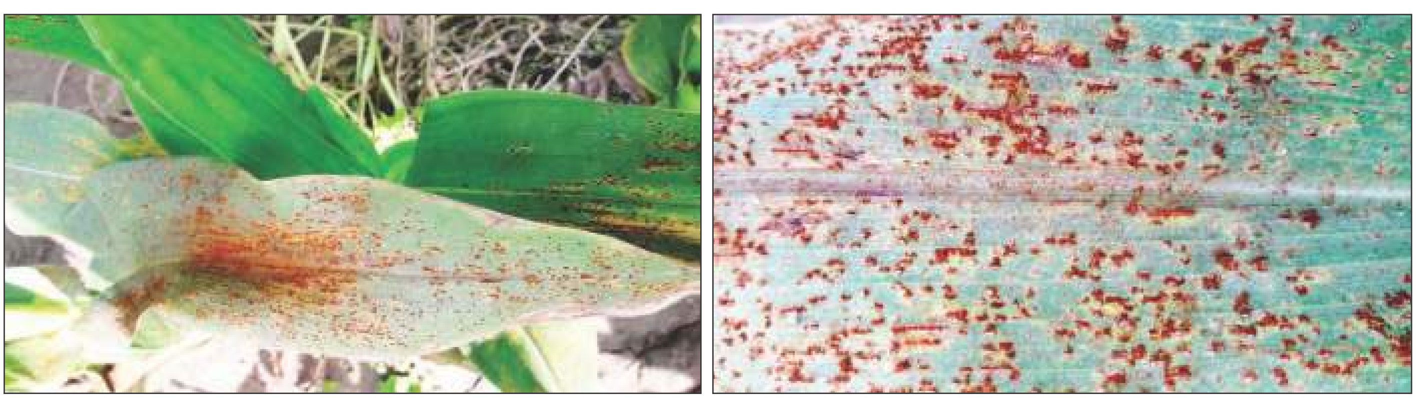

रतुआ

कृषि, खाद्य एवं डेयरी उद्योग के भविष्य में सौर ऊर्जा का महत्व

34

नीलम उपाध्याय[1] एवं निलेश कुमार पाठक[2]
[1]भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]महाराजा अग्रसैन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

पर्यावरण प्रदूषण,वैश्विक तापमान में वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) और ऊर्जा सुरक्षा से सम्बंधित बढ़ती चिंताओं ने जीवाश्म ईंधन के प्रतिस्थापन के रूप में नवीकरणीय और पर्यावरण के अनुकूल ऊर्जा स्रोतों जैसे वायु, जल, विद्युत, भूतापीय, सौर, हाइड्रोजन और बायोमास को विकसित करने में रुचि बढ़ाई है। ऊर्जा एक थर्मोडायनामिक राशि है, जिसे प्रायः काम करने के लिए एक भौतिक प्रणाली की क्षमता के रूप में समझा जाता है। इसके भौतिक अर्थ के अतिरिक्त, पर्यावरण के साथ हमारे संबंधों के लिए भी ऊर्जा बहुत महत्वपूर्ण है। ऊर्जा से संबंधित समस्याओं को हल करने के लिए अनुसंधान आवश्यक है क्योंकि जीवन सीधे ऊर्जा और इसके उपभोग से प्रभावित होता है। जीवाश्म ईंधन आधारित ऊर्जा संसाधन अभी भी वैश्विक ऊर्जा खपत में एक बड़ा योगदान दे रहें हैं। हालांकि, पर्यावरणीय मुद्दों के बढ़ते महत्व के कारण स्वच्छ ऊर्जा उत्पादन दिन–प्रतिदिन और अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है। नवीकरणीय और पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के बीच के अंतर को कम करने के लिए दुनिया भर में गहन शोध किए जा रहें हैं। 2017 में, अक्षय ऊर्जा संसाधन ने कुल विश्व ऊर्जा मांग की लगभग 33% की आपूर्ति की है (https://ourworldindata.org@renewable-energy#all-charts-preview)। अतः, इनके भविष्य की क्षमता उल्लेखनीय है। चित्र 1(क) के माध्यम से वैश्विक नवीकरणीय ऊर्जा की खपत को दर्शाया गया है, जबकी चित्र 1(ख) भारत में नवीकरणीय ऊर्जा की खपत को दर्शाता है।

स्वच्छ ऊर्जा प्रौद्योगिकियों में, सौर ऊर्जा को सबसे आशाजनक विकल्पों में से एक के रूप में मान्यता प्राप्त है क्योंकि यह निःशुल्क सम्भव है तथा पर्यावरण के अनुकूल ऊर्जा प्रदान करता है। पृथ्वी को हर वर्ष सौर ऊर्जा के 3.85 मिलियन एक्ज़ा ज्यूल (1Exajoule,10^{18} जूल के बराबर होता है) प्राप्त होते हैं। विश्व के अधिकतर विकासशील देशों में प्रचुर मात्रा में सौर विकिरण होता है जिसकी औसत दैनिक रोशनी 4–7 किलोवाट घण्टा/मीटर^2 होती है। इसके अतिरिक्त यह भी महत्वपूर्ण है कि इन देशो में लगभग एक वर्ष में 275 से अधिक धूप के दिन होते हैं। इसको सरल भाषा में निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता हैः

1 किलोवाट घंटा = 1 किलोवाट या 1000 वाट का एक घंटे में उपयोग किया जाना = 10 घंटे तक 100 वाट प्रकाश देने वाले बल्ब/लाइट/अन्य उपकरण को जलाया जा सकता है अथवा 25 घंटो तक 20 वाट के 2 बल्ब या टयुब लाइट जलाए जा सकते हैं।

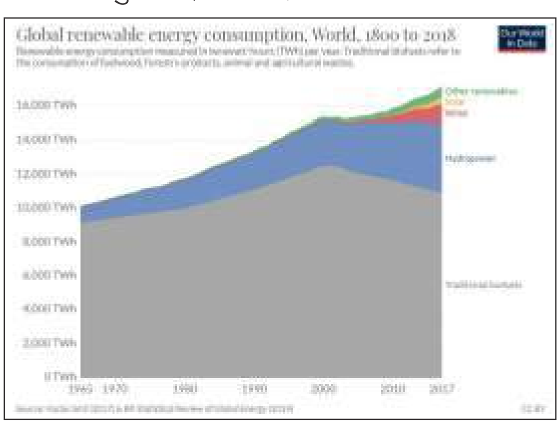

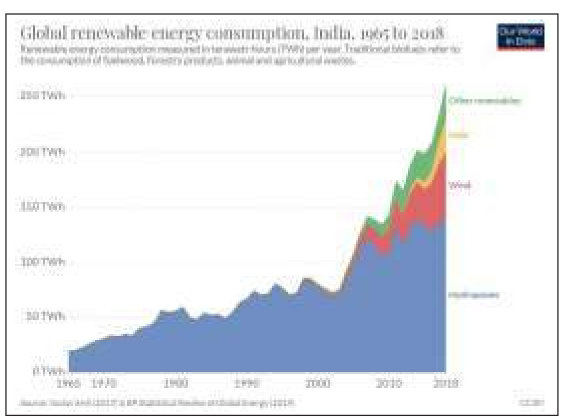

चित्र 1 (क) (ख)

इस उपलब्ध ऊर्जा संसाधन का उपयोग करने के लिए सौर ऊर्जा कई प्रकार के अनुप्रयोग प्रदान करती है। सौर ऊर्जा के तापीय अनुप्रयोगों में, सौर खाना पकाने को सौर ऊर्जा के उपयोग के संदर्भ में सबसे सरल और आकर्षक विकल्पों में से एक माना जाता है।

सोलर सेलः सूरज की रोशनी को बिजली में परिवर्तित करने वाला यंत्र

सौर ऊर्जा को अधिकत्तर फोटोवोल्टाइक प्रतिष्ठापन द्वारा विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करके प्रयोग में लाया जाता है। चूंकि, सौर फोटोवोल्टाइक सेल अर्धचालक उपकरण है, इनकी चालकता चालक और कुचालक के बीच की होती है। वर्त्मान में, फोटोवोल्टाइक सेल के अधिकांश बड़े उत्पादक, मुख्य रूप से क्रिस्टलीय सिलिकॉन अर्धचालक तत्त्व का प्रयोग करते हैं। सिलिकॉन अर्धचालक पदार्थ पर आधारित सोलर सेल मार्केट में प्रभावी रूप से उपयोग किया जा रहा है क्योंकि अब तक के ज्ञात अनुसंधानों में से इसकी दक्षता सबसे अधिक है। सिलिकॉन गैर विषाक्त है और पृथ्वी में बहुतायत में पाया जाता है। एक विशिष्ट फोटोवोल्टिक सेल की दक्षता लगभग 20–25% है, जिसका अर्थ है कि यह सौर ऊर्जा के 100 भाग में से केवल 20–25 भाग ही बिजली या प्रकाश में बदलता है। इसकी दक्षता बढाने की दशा में अंतराष्ट्रीय स्तर पर अनुसंधान चल रहे हैं और सफलताएँ भी मिल रही हैं।

सौर फोटोवोल्टाइक मॉड्यूल, जो फोटोवोल्टाइक सेल के संयोजन के परिणामस्वरूप बनकर उनकी शक्ति और जीवनकाल में वृद्धि करता है, एक अत्यधिक विश्वसनीय, टिकाऊ और कम शोर करके बिजली उत्पादन करने का एक उपकरण है। इसे संक्षिप्त में पी वी पैनल या पी वी सिस्टम भी कहते हैं। पी वी सिस्टम के संचालन के लिए सूर्य एकमात्र संसाधन है और इसकी ऊर्जा अक्षय है। अतः फोटोवोल्टाइक सेल का ईंधन मुफ्त उपलब्ध होता है। फोटोवोल्टाइक सिस्टम में कोई चलते हुए हिस्से नहीं होते हैं और यह पर्यावरण में प्रदूषकों का उत्सर्जन नहीं करता है। जीवाश्म ईंधन प्रौद्योगिकियों की तुलना में फोटोवोल्टिक सेल के उत्पादन में खपत ऊर्जा प्रति यूनिट कई गुना कम कार्बन डाइऑक्साइड का उत्पादन करती है। फोटोवोल्टिक सेल का जीवनकाल तीस से चालीस वर्षों का होता है और यह सबसे विश्वसनीय अर्धचालक उत्पादों में से एक है। यह अनुमान है कि निकट भविष्य सौर ऊर्जा पर ही आधारित होगा। भारत देश एवम वर्त्मान सरकार भी इस दिशा में बहुत सारे सकारात्मक प्रयास कर रही है।

सौर ऊर्जा के उपयोग

सोलर कुकर

सोलर कुकर या सोलर ओवन एक ऐसा उपकरण है जो भोजन पकाने के लिए सौर ऊर्जा का उपयोग करता है। सौर कुकर कुछ महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं जैसे कि पाश्चराइजेशन और कीटाणुशोधन को सक्षम करता है। यह स्पष्ट तथ्य है कि दुनिया में सोलर कुकर की अनगिनत शैलियाँ हैं और वे शोधकर्ताओं और निर्माताओं द्वारा लगातार सुधार की जाती हैं; इसलिए, सोलर कुकर का वर्गीकरण करना कठिन है। हालाँकि, यह माना जा सकता है कि अधिकांश सोलर कुकर आज सौर पैनल कुकर, सोलर बॉक्स कुकर और सोलर पैराबोलिक कुकर नामक तीन मुख्य श्रेणियों में आते हैं। सोलर कुकिंग तकनीक का इतिहास बॉक्स–टाइप सोलर कुकर के आविष्कार से शुरू हुआ। एक सोलर बॉक्स कुकर में मूल रूप से एक पारदर्शी ग्लास कवर और परावर्तन सतहों के साथ एक रोधित (इंसुलेटेड) बॉक्स होता है, जिससे बॉक्स के अंदर धूप जाती है। बॉक्स का भीतरी भाग सूर्य के प्रकाश के अवशोषण को अधिकतम करने के लिए काले रंग से रंगाया जाता है। खाना पकाने के बर्तन की एक विशेष संख्या को बॉक्स के अंदर रखा जाता है। हाल के वर्षों में, विभिन्न तकनीकों के माध्यम से सौर कुकर के मॉडल बनाने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं।

सौर आसवन

पीने योग्य पानी की उपलब्धता उन समुदायों के लिए एक महत्वपूर्ण समस्या है, जो रेगिस्तानी क्षेत्रों में या विशेष रूप से शुष्क क्षेत्र में रह रहे हैं। इन क्षेत्रों को सौर विकिरण की उच्च्य तीव्रता से पहचाना जाता है, जो

सौर ऊर्जा के प्रत्यक्ष उपयोग को इन समुदायों के लिए पीने के पानी को पम्प करने हेतु प्रमुख परिचालन लागत को कम करने के लिए एक आशाजनक विकल्प का प्रतिनिधित्व करता है। अधिकांश विकसित एवं विकासशील देश शुष्क क्षेत्रों में रहने वाले अपने समुदायों को शुद्ध पेयजल की आपूर्ति करने की अक्षमता से पीड़ित हैं। इन देशों में बीमारियों के प्रसार को कम करने के लिए स्वच्छ जल की उपलब्धता भी एक आवश्यकता है। स्वच्छ जल को उपलब्ध कराने के लिए बिजली की खपत होती है, अपशिष्ट–जल या समुद्र के पानी का आसवन स्वच्छ जल प्राप्त करने के चरणों में से एक है, जबकि पानी प्राप्त करने का पारंपरिक तरीका ईंधन का उपयोग करना है। अक्षय ऊर्जा तेल के उपयोग को कम करती है और अपशिष्ट जल के आसवन का लाभ उठाती है। अक्षय स्रोतों के उचित उपयोग से पीने, औद्योगिक प्रक्रियाओं और दवा के लिए आसुत जल प्राप्त करना सम्भव है।

सौर आसवन द्वारा रिवर्स ऑस्मोसिस एवं अन्य प्रकार के आसवन की तुलना में कम लागत आती है क्योंकि सौर ऊर्जा असीम और आसानी से उपलब्ध है तथा समुद्री जल आसानी से उपलब्ध होता है एवम इन स्रोतों की बहुतायत है। सौर आसवन सुरक्षित पेयजल प्रदान करने के लिए अत्यधिक प्रभावी साबित हुआ है। यदि ऊर्जा की आवश्यकता के रूप में देखा जाए तो, खारे पानी से 1 लीटर (यानी 1 किग्रा) शुद्ध पानी का उत्पादन करने के लिए 2260kJ की ऊष्मा की आवश्यकता होती है। अतः, आसवन उन्ही स्थानो पर किया जाता है, जहां ताजे पानी का कोई स्थानीय स्रोत नहीं होता है ।

सौर ऊर्जा के उपयोग की सफल कहानियाँ

सौर ऊर्जा को प्रोत्साहन देने हेतु भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाएँ नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय की वेब्साइट पर उपलब्ध हैं। यह योजनाएँ किसानों के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। इनमें से कुछ योजनाओं का उल्लेख विभिन्न सफलता गाथाओं के माध्यम से नीचे दिया जा रहा हैं।

श्री साईं संस्थान प्रसादालयः सौर ताप रसोई

सामुदायिक रूप से खाना बनाना शैक्षिक और धार्मिक संगठनों में एक लोकप्रिय अनुप्रयोग बन गया है। श्री साईं संस्थान प्रसादालय एक निःशुल्क सामुदायिक रसोई है जिसमें शेफ्फलर डिशों (Scheffler dishes) का प्रयोग किया जा रहा है और यह सिर्डी (महाराष्ट्र) में स्थित है। इसमें शेफ्फलर डिश सूर्य की किरणो को रिसीवर (जिनमें पानी होता है) पर केंद्रित करता है, जिससे पानी भाप में रूपांतरित होता है जो भोजन पकाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसने नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय (MNRE) द्वारा प्रतिष्ठित कोंसंट्रेटिड सोलर थर्मल (CST) और सोलर कुकर एक्सीलेंस अवार्ड –2016 जीता। द टाइम्स ऑफ इंडिआ अखबार में 21 नवम्बर, 2016 में प्रकाशित लेख के अनुसार, इसमें 73 सौर डिश (प्रत्येक 16 मीटर^2 क्षेत्रफल) हैं, जो इसे भारत में सबसे बड़ा सौर ऊर्जा संचालित रसोईघर बनाता है। इसकी कुल वाष्प उत्पादन क्षमता 4200 किग्रा/दिन है। सौर डिश ईंधन रसोई में प्रतिदिन 25000 से अधिक व्यक्तियों के लिए भोजन पकता है। रिपोर्ट के अनुसार, सौर संयंत्र ने ट्रस्ट के लिए लगभग 60 लाख रूपये की बचत की है। इसके अलावा, इस परियोजना के माध्यम से श्री साईं बाबा संस्थान 1 लाख किलोग्राम एल पी जी रसोई गैस (जोकि प्रतिवर्ष 20 लाख रूपए के बराबर है) की बचत कर रहा है। गैर–पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों, नई दिल्ली के मंत्रालय के अनुसार, यह दुनिया की सबसे बड़ी सौर ताप खाना पकाने की प्रणाली के रूप में पहचाना गया है।

ब्रह्मकुमारी संस्था की सौर ऊर्जा गाथा

ब्रह्माकुमारी संस्था सौर ऊर्जा का उपयोग पिछले कई वर्षों से कर रही है। वहाँ 1990 के दशक के मध्य से मॉड्यूलर सौर भाप द्वारा खाना पकाने की प्रणाली के लिय 24 शेफ्फलर डिश (Scheffler dishes) एवम सौर गर्म पानी प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है। द टाइम्स ऑफ इंडिया में 3 अप्रैल, 2017 को प्रकाशित

रिपोर्ट के अनुसार, माउंट में अबू रोड पर ब्रह्मकुमारी संस्था के शांतिवन परिसर में अभिनव 1 मेगावाट का सौर ताप बिजली संयंत्र स्थापित किया गया है। यह संयुक्त रूप से भारत सरकार के नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय की R-D (अनुसंधान और विकास) योजना और पर्यावरण, प्रकृति संरक्षण और परमाणु सुरक्षा के संघीय मंत्रालय (BMUB), जर्मनी की सरकार द्वारा द्विपक्षीय पहल 'ComSolar' के तहत जर्मन सोसाइटी फॉर इंटरनेशनल कोऑपरेशन (GIZ) GmbH और ब्रह्मा कुमारिस वर्ल्ड आध्यात्मिक विश्वविद्यालय के माध्यम से प्रारम्भ हुआ। यह 25 एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ है और संकेंद्रित सौर तापीय ऊर्जा प्रौद्योगिकी पर आधारित है। इसमें तीन तकनीकों यानी परवलयिक परावर्तकों, तापीय भंडारण और रैंकिन चक्र का सम्मेलन है। इसमें 770 नए विकसित परवलयिक परावर्तक डिशो का उपयोग किया गया है जिसमे प्रत्येक 60 वर्ग मीटर का है। इसमे सौर किरणे इन–हाउस कैविटी रिसीवर की ओर केंद्रित होती हैं जो लोहे से बना होता है और जिसमे उत्कृष्ट थर्मल भंडारण की क्षमता होती है। हीट एक्सचेंजर कॉयल थर्मल भंडारण से जुड़ा होता है और बेहतर हीट ट्रांसफर देता है। इनमे निरंतर संचालन के लिए थर्मल भंडारण की सुविधा होती है। अच्छा इन्सुलेशन और स्वचालित शटर रात में या बादल की स्थिति में ऊर्जा के नुकसान से बचाता हैं। कुल तापीय द्रव्यमान के कारण इस संयंत्र की क्षमता चौबीसो घंटे टरबाइन चलाने की है। इसके अलावा, इस परियोजना ने टरबाइन और विशेष परावर्तक ग्लास के अपवाद के साथ जो क्रमशः जर्मनी और यूएस से आयात किए गए थे, 90% स्वदेशी घटकों का उपयोग किया है।

डेयरी उद्योग के लिए सौर ऊर्जाः एक वरदान

महानंदा और चितले डेयरियों ने पास्चुरीकरण, धुलाई और CIP जैसे विभिन्न अनुप्रयोगों में तापीय ऊर्जा की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए सौर प्रौद्योगिकी के सफल अनुप्रयोग के माध्यम से देश का मार्ग दर्शन किया है। एमएनआरई के एक चैनल पार्टनर क्लिक सोलर ने स्वदेश में विकसित ARUN® डिश–एक फ्रेसेल परबोलॉइड सोलर कोंसंट्रेटिड सिस्टम का सफलतापूर्वक वाणिज्यीकरण किया है जोकि औद्योगिक प्रक्रियाओं जैसे ताप, सामुदायिक खाना पकाने, आदि में वाणिज्यिक और आवासीय परिसरों में प्रयोग किया जा सकता है। पहला ARUN सिस्टम 2006 में महाराष्ट्र के लातूर में महानंदा डेयरी में स्थापित किया गया था। ARUN डिश सूरज की दो अक्षरेखाओ पर ट्रैक रखता है। डिश के फोकस पर रिसीवर कॉइल में पानी/भाप को सूर्य की तापीय ऊर्जा से 152–180° सेल्सीयस एवम 5–18 बार तक दबाव वाली भाप या गर्म पानी में परिवर्तित किया जाता है। इस प्रणाली के द्वारा एक साफ धूप के दिन में लगभग 100 से 115 लीटर भट्टी के तेल की बचत की जा सकती है क्योंकि ऐसे में पारंपरिक बॉयलर की आवश्यकता नही पड़ती

चित्र 2: 2014 में ब्रह्माकुमारी संस्था में स्थित सोलर डिश के माध्यम से सौर ऊर्जा के प्रयोग का एक नमूना

है। ARUN की प्रत्येक डिश 169 वर्गमीटर के साथ 3 मीटर X 3 मीटर का प्रति डिश एक छोटा पदक्षेत्र घेरती है। इस डिश को 10 मीटर/सेकेन्ड तक हवा की गति में संचालित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, परंतु यह 45 मीटर/सेकेन्ड तक हवा की गति का सामना भी कर सकता है।

सोलर पम्प योजना

केंद्र व राज्य सरकारें विभिन्न योजनाओं के माध्यम से किसानों की आय बढ़ाने के प्रयास कर रही हैं। केंद्र सरकार ने देश में बिजली की समस्या का सामना कर रहे किसानो को ध्यान में रखते हुए किसान उर्जा सुरक्षा और उत्थान महाअभियान (कुसुम) योजना का एलान पूर्व वित्त मंत्री श्री अरुण जेटली के द्वारा केंद्र सरकार के आम बजट 2018–19 में किया था। इस योजना के अंतर्गत देशभर में सिंचाई के लिए इस्तेमाल होने वाले सभी डीजल/बिजली के पम्प को सोलर ऊर्जा से चलाने की योजना है। केंद्र सरकार की कुसुम योजना किसानों को दो तरह से लाभ पहुंचाएगीः प्रथम, किसानों को सिंचाई के लिए बिजली निःशुल्क मिलेगी; और द्वितीय, अगर वह अतिरिक्त बिजली बना कर ग्रिड को बेचते हैं तो उससे उनकी आमदनी भी होगी। एक रिपोर्ट के अनुसार, अगर देश के सभी सिंचाई पम्प में सौर ऊर्जा का इस्तेमाल होगा तो न सिर्फ बिजली की बचत होगी, बल्कि 28 हजार मेगावाट अतिरिक्त बिजली का उत्पादन भी संभव होगा।

कुसुम योजना के पहले चरण में किसानों के सिर्फ उन सिंचाई पम्प को शामिल किया जाएगा जो अभी डीजल से चल रहे हैं। सरकार के एक अनुमान के मुताबिक इस तरह के 17.5 लाख सिंचाई पम्प को सौर ऊर्जा से चलाने की व्यवस्था की जाएगी। सौर ऊर्जा उपकरण स्थापित करने के लिए किसानों को सिर्फ़ 10% राशि का भुगतान करना होगा। कुसुम योजना में बैंक किसानों को लोन के रूप में 30% रकम देंगे। सरकार किसानों को सब्सिडी के रूप में सोलर पम्प की कुल लागत का 60% रकम देगी। इससे डीजल की खपत और कच्चे तेल के आयात पर रोक लगाने में भी मदद मिलेगी ।

निष्कर्ष

भारत एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है, जिसे पारंपरिक ऊर्जा संसाधनों के बदले अक्षय ऊर्जा को प्रयोग करने के हर संभव तरीके पर विचार करना चाहिए। अक्षय ऊर्जा संसाधनों में सौर ऊर्जा खाद्य प्रसंस्करण अनुप्रयोगों में सबसे अधिक आशाजनक है। खाद्य और डेयरी प्रसंस्करण संयंत्र में सौर तापीय और सौर फोटोवोल्टाइक प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग (जैसे शीतलन और ताप प्रक्रियाएँ) संभव हैं क्योंकि इससे उत्पादकों को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकता है। भारत एक उष्णकटिबंधीय देश है और यहा 300 दिनों के लिए इष्टतम धूप होती है। यह विशाल सौर ऊर्जा क्षमता से संपन्न है और इसमें केंद्रित सौर ऊर्जा (सीएसपी) की तीसरी सबसे बड़ी स्थापित क्षमता है। भारतीय भूमि क्षेत्र पर लगभग 5000 ट्रिलियन किलोवाट–घंटा प्रति वर्ष ऊर्जा पडती है, जबकि इसका औसतन 4–7 किलोवाट–घंटा प्रति वर्गमीटर प्रति दिन है। अतः, दोनों तकनीकों अर्थात् सौर तापीय कलेक्टर और सौर फोटोवोल्टाइक का भारत में प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है। नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के अनुसार, वर्तमान में, गुजरात और राजस्थान सौर ऊर्जा उपयोग में 87% की हिस्सेदारी रखते हैं। सौर ऊर्जा का प्रयोग भारतीय कृषि, डेयरी और खाद्य क्षेत्र की समृद्धि में एक अभूतपूर्व योगदान देने की क्षमता रखता है।

संदर्भ

संदर्भों के लिए लेखक से संपर्क किया जा सकता है।

35 भारत में जैविक डेयरी फार्मिंग

निशांत कुमार
पशुधन उत्पादन प्रबंधन अनुभाग,
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्रस्तावना

भारत में हजारों वर्षों से जैविक खेती का प्रचलन है। जैविक खेती का बुनियादी सिद्धान्त है स्वस्थ भूमि द्वारा स्वस्थ वनस्पति, स्वस्थ पशुधन, स्वस्थ मानव एवं स्वस्थ समाज की स्थापना। स्वास्थ्य के बारे में जागरूकता व प्रतिस्पर्धी विश्व बाजार के कारण आज उपभोक्ताओं की खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता एवं सुरक्षा के बारे में धारणा बदल गयी है। इस परिवर्तन के कारण उपभोक्ता आज उत्पादकों से खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता एवं सुरक्षा की वैधानिक, सामाजिक व नैतिक जिम्मेदारी की मांग कर रहे हैं। इसकी वजह से दूध की गुणवत्ता के मानकों में परिवर्तन करने की जरुरत महसूस की जा रही है। इन मानकों के द्वारा दूध में विकृत व रोगजनक अवयवों, कीटनाशकों, दवा के अवशेषों व अन्य औद्योगिक रसायनों की अधिकतम सीमा निश्चित किये जाने पर बल दिया जा रहा है। इसीलिए जैविक दूध सहित सभी जैविक खाद्य उत्पाद गुणवत्ता व खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

1990 के दशक में जैविक डेयरी ने एक प्रमुख श्रेणी के रूप में स्थापित होकर जैविक बाजार में अपनी जगह बनाई । जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत पशुओं का पालन पशु पोषण, पशु स्वास्थ्य एवं पशु आवास के सन्दर्भ में जैविक निवेशों का उपयोग करके किया जाता है। चूँकि हमारे देश के अधिकतर हिस्सों में पारम्परिक डेयरी फार्मिंग की बहुलता है तथा बाजार में स्वस्थ खाद्य उत्पादों के लिए उपभोक्ताओं में भारी मांग रहती है, जैविक डेयरी फार्मिंग किसानो के लिए वरदान साबित हो सकता है। जैविक दुग्ध उत्पादकों को परम्परागत दुग्ध उत्पादकों की अपेक्षा 25–30 प्रतिशत अधिक कीमत मिल सकती है जबकि जैविक दूध व दूध उत्पादो की बाजार में 25–50 प्रतिशत अधिक कीमत पर बिकने की संभावना रहती है। भारत के कुछ कृषि–जलवायु क्षेत्र जैविक डेयरी फार्मिंग के लिए बेहद उपयुक्त है। इनमें राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं गुजरात के वर्षा आधारित क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड एवं जम्मू कश्मीर के पहाड़ी क्षेत्र एवं सम्पूर्ण पूर्वोत्तर क्षेत्र शामिल है। भारत में जैविक डेयरी फार्मिंग की बेहद अच्छी संभावनाएं हैं क्योंकि ये छोटे किसानो एवं कम निवेश पर आधारित बेहद लाभकारी एवं स्थाई उत्पादन प्रणाली है (कुमार एवं साथी, 2005)।

जैविक डेयरी फार्मिंग के उद्देश्य

जैविक डेयरी फार्मिंग के उद्देश्य निम्नलिखित है :

1) पशुओं को ऐसे वातावरण में पालना जहां पशु उत्पादों के सहारे मनुष्य स्वास्थ्य को बढ़ावा मिले तथा तनाव और प्रदूषण न्यूनतम हो।
2) विषैले रासायनिक अवशेषों से मुक्त पशु उत्पाद का उत्पादन करना।
3) पशु के प्राकृतिक व्यवहार को बढ़ावा देना जिससे उसे कम से कम तनाव रहे।
4) मानवीय तरीकों द्वारा पशु उत्पादन का सुधार करके पशु कल्याण को बढ़ावा देना।

जैविक फार्मिंग हेतु आवश्यक प्रबंधन पद्धतियां

भारत सरकार ने जैविक फार्मिंग के महत्व के मद्देनज़र देश में राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम (नेशनल

प्रोग्राम फॉर आर्गेनिक प्रोडक्शन) की शुरुआत की। यह कार्यक्रम एपीडा (कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ निर्यात प्राधिकरण), वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के माध्यम से सन 2000 से शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत जैविक डेयरी फार्मिंग के प्रोत्साहन के कई कार्यों के साथ साथ राष्ट्रीय कार्बनिक उत्पादन मानक (नेशनल स्टैण्डर्ड फॉर आर्गेनिक प्रोडक्शन) तैयार किये गए। यह मानव जैव कृषि आंदोलन के अंतर्राष्ट्रीय फेडरेशन (इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ़ ऑर्गनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट्स) कोडेक्स व अन्य अंतर्राष्ट्रीय मानकों को ध्यान में रखकर व भारतीय जरूरतों के अनुसार तैयार किये गए। वो सामान्य सिद्धांत जिन पर ये मानक आधारित हैं वो है की पशुपालन की प्रबंधन तकनीकें पशुओं की शारीरिक और व्यवहार सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुसार गठित की जाए।

इस मानक के अनुसार जैविक डेयरी फार्मिंग की निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए :

1) सभी जैविक पशुओं का जन्म एवं पालन पोषण जैविक फार्मों पर ही होना चाहिए।

2) अगर जैविक पशुधन उपलब्ध नहीं है तो मानक उन पशुओं को लाने की इजाजत देता है जो 4 सप्ताह की उम्र के हो, खीस का सेवन कर चुके हो तथा पूर्ण दूध से पोषण पा रहे हो। उन्हीं नस्ल के पशुओं का चयन किया जाना चाहिए जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल हो।

3) पशुधन समेत पुरे फ़ार्म का रूपांतरण इस दस्तावेज़ में दिए गए मानकों के अनुरूप होना चाहिए। एक निश्चित समय की अवधि में रूपांतरण पूरा किया जाना चाहिए। रूपांतरण शुरू होने के कम से कम 12 महीने पश्चात ही पशु उत्पादों को जैविक कृषि के उत्पाद के नाम से बेचा जा सकता है।

4) जैविक डेयरी फार्मिंग में कृत्रिम गर्भाधान का प्रयोग किया जा सकता है लेकिन प्रतिरोपण तकनीकों की मनाही है, हॉर्मोन से मद का उपचार नहीं किया जाना है तथा आनुवंशिक रूप से संशोधित जीव का उपयोग प्रतिबंधित है।

5) जैविक डेयरी फार्मिंग में गायों और बछड़ों को 100 प्रतिशत जैविक चारा दिया जाना चाहिए ।

6) जैविक फसलें, घास और चारागाह कृत्रिम उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग के बिना उगाए जाने चाहिए।

7) जैविक फसलों को उगाने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली भूमि पहले जैविक फसल के लिए कम से कम तीन साल के लिए सभी निषिद्ध सामग्रियों से मुक्त होनी चाहिए।

8) गैर–प्राकृतिक फ़ीड योजक और पूरक जैसे कि विटामिन और खनिज भी उपयोग के लिए अनुमोदित होने चाहिए।

9) भूमिहीन पशुपालन की आज्ञा नहीं है।

10) बछड़ों को जैविक दूध ही पिलाना चाहिए।

11) जैविक डेयरी फार्म में छह माह से अधिक उम्र के पशुओं को चरागाह भेजा जाना चाहिए।

12) जैविक डेयरी फार्म में एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग प्रतिबंधित होता है। केवल अनुमोदित स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्पाद ही इस्तेमाल किये जाने चाहिए।

13) पशुओं के उत्पादन स्तर व पशु के शरीर भार वृद्धि सम्बन्धी सभी पशु प्रबंधन तकनीकें पशु के अच्छे स्वास्थ्य एवं कल्याण को बढ़ावा देने वाली होनी चाहिए। पशुओं के चलने फिरने के लिए पर्याप्त खुला स्थान होना चाहिए। पशुओं की आवश्यकताओं के अनुसार पर्याप्त खुली हवा एवं प्राकृतिक सूर्य की रौशनी होनी चाहिए, अत्याधिक सूर्य के प्रकाश, तापमान, वर्षा व तेज़ हवा से बचाव होना चाहिए, बैठने व आराम के लिए उचित स्थान होना चाहिए एवं पर्याप्त ताजा पानी तक पहुँच होनी चाहिए। जो पशु झुण्ड में रहते हैं, उन्हें अकेले नहीं रखा जाना चाहिए।

14) अगर पशु रोग ग्रस्त होता है तो उसका शीघ्र उपचार किया जाना चाहिए। इलाज के लिए प्राकृतिक दवाएं और विधियां जैसे आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, यूनानी चिकित्सा तथा एक्युपंचर पर जोर दिया जाना चाहिए। रोग के उपचार में पशु के निरोगी होने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जब कोई विकल्प उपलब्ध न हो तो परम्परागत पशु चिकित्सा दवाओं के प्रयोग की अनुमति है। वैधानिक रूप से आवश्यक टीकाकरण की अनुमति है मगर आनुवंशिक रूप से तैयार किये गए टीकों के प्रयोग की मनाही है।

15) जैविक डेयरी फार्मिंग करने वाले किसानो को मानकों के अनुपालन को सत्यापित करने के लिए पर्याप्त रिकॉर्ड रखना चाहिए।

जैविक और पारंपरिक डेयरी फ़ार्म का तुलनात्मक अध्ययन

जैविक डेयरी फार्मिंग एवं पांरपरिक डेयरी फार्मिंग के तुलनात्मक शोध बेहद कम हुए है। हालांकी अधिकतर शोध में ये पाया गया की जैविक डेयरी फार्मिंग में पशुधन एवं पशु उत्पादों के कई मापदंड बेहतर पाए गए है। जैविक दुग्ध उत्पादन प्रणाली के विकास पर एक अध्ययन राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा में किया गया जिसमें कम्बोज एवं साथी (2010) ने भैसों के एक समूह को राष्ट्रीय कार्बनिक उत्पादन मानक के अनुसार पाला और एक समूह को पारंपरिक प्रबंधन में रखा। शोध के परिणाम के अनुसार जिन भैसों को जैविक डेयरी के मानकों के अनुसार पाला गया उनके दुग्ध उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता में बढ़ोत्तरी पायी गयी। पारंपरिक प्रबंधन में दाने,

चारे एवं दूध में कीटनाशकों की संख्या जैविक प्रबंधन के मुकाबले ज्यादा पायी गयी। दुग्ध उत्पादन का खर्च भी जैविक डेयरी में कम पाया गया।

कुछ विदेशी अध्ययनों से भी यह ज्ञात हुआ है कि जैविक दूध में कीटनाशकों के अवशेष परम्परागत दूध की अपेक्षा कम होते है। हालांकि जैविक दूध में भी कीटनाशकों के अवशेष मिल सकते है (मारुजोल एवं गोलार्ड, 1999)। कम्बोज एवं साथी, (2013) ने पाया की जैविक दूध में एफलाटोक्सिन एम–1 का स्तर परम्परागत दूध की अपेक्षा कम होता है। कन्जुगेटिव लीनोलिक अम्ल जोकि एक लाभकारी फैटी एसिड है, का स्तर जैविक दूध में परम्परागत दूध की तुलना में 60 प्रतिशत अधिक होता है।

जैविक डेयरी फार्मिंग के विकास की बाधाएं

हालांकि भारत में जैविक डेयरी फार्मिंग के विकास की अपार संभावनाएं एवं लाभ हैं, फिर भी कुछ बाधाएं हैं जो इसके प्रगति को रोकती हैं।

1) किसानों में जागरूकता एवं ज्ञान की कमी

भारतीय किसान, विशेषकर जो कृषि में पिछड़े हुए क्षेत्रों में निवास करते हैं, जैविक डेयरी के महत्व व अवसरों के बारे में बेहद कम जागरूकता रखते हैं। जो नवयुवक किसान इसे एक व्यवसाय के रूप में अपनाना चाहते है, उनमें जैविक डेयरी की पद्धतियों, प्रमाणीकरण एवं विपणन का ज्ञान बेहद कम है।

2) भूमिहीन जैविक फार्मिंग की अनुमति नहीं है

राष्ट्रीय कार्बनिक उत्पादन मानक के अनुसार भूमिहीन जैविक डेयरी फार्मिंग की अनुमति नहीं हैं। किसानों का एक बड़ा वर्ग जो पट्टे पर भूमि लेकर खेती करते हैं या जिनके पास अपनी जमीन नहीं है वो अपने पारम्परिक खेती को जैविक खेती में बदल नहीं सकते हैं।

3) यौगिक जैविक चारा तैयार करने के लिए जैविक चारा सामग्री की सीमित उपलब्धता।

किसान यौगिक जैविक चारा तैयार करने के लिए जैविक चारे की फसल तो उगा लेता है लेकिन बहुत बार पर्याप्त भूमि की अनुपलब्धता की वजह से अनाज की फसल या तेल बीज की फसल नहीं उगा पाता। ये एक बहुत बड़ी बाधा के रूप में सामने आती है।

4) समुचित रिकॉर्ड को न रख पाना

बहुत बार जागरूकता की कमी, अशिक्षा अथवा रिकॉर्ड के महत्व का ज्ञान न होने की वजह से भारतीय किसान रिकॉर्ड को संभाल कर नहीं रख पाते हैं। जैविक डेयरी फ़ार्म के प्रमाणीकरण के लिए उसके उत्पादन रिकॉर्ड को संभाल कर रखना बेहद आवश्यक है।

5) प्रमाणीकरण सेवाओं की सीमित पहुँच

हालांकि हाल के वर्षो में जैविक प्रमाणीकरण एजेंसियों की संख्या लगातार बढ़ी है मगर उसके बावजूद इनकी पहुँच बेहद सीमित है। अधिकतर एजेंसी बड़े शहरों में स्थापित हैं। दूर के इलाकों में रहने वाले छोटे और सीमांत किसान अपने खेतों को प्रमाणित करवाने के लिए उनसे संपर्क करने की स्थिति में नहीं होते हैं।

6) उचित खरीद, प्रसंस्करण और विपणन के बुनियादी ढांचे की कमी

हमारे देश के बहुत सारे क्षेत्र विशेषकर पहाड़ी क्षेत्र जैविक डेयरी फार्मिंग के लिए बेहद उपयुक्त है मगर इन क्षेत्रों के किसान अपने जैविक दूध अथवा कृषि उत्पाद को बेचने में सक्षम नहीं है क्योंकि वहाँ कोई ऐसी एजेंसी नहीं है जो उनकी उचित तरीके से खरीद, प्रसंस्करण और विपणन कर सके।

निष्कर्ष

जैविक डेयरी फार्मिंग के तहत पशुओं का पालन जैविक निवेशों का उपयोग करके किया जाता है। इस पद्धति में उर्वरकों या कीटनाशकों के उपयोग के बिना खेती की जाती है तथा पशुओं में एंटीबायोटिक दवाओं एवं हॉर्मोन का उपयोग न के बराबर किया जाता है। भारत में जैविक डेयरी फार्मिंग की बेहद अच्छी संभावनाएं हैं क्योंकि ये छोटे किसानो एवं कम निवेश पर आधारित बेहद लाभकारी एवं स्थाई उत्पादन प्रणाली है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय कार्बनिक उत्पादन मानक तैयार किये जिनके आधार पर किसान जैविक डेयरी पालन कर सकता है। कुछ सीमित शोध द्वारा ये संकेत मिले है कि पारंपरिक डेयरी पद्धति के मुकाबले जैविक डेयरी पद्धति द्वारा पशुओं के उत्पादन, स्वास्थ्य एवं प्रजनन क्षमता को बेहतर बनाया जा सकता है। हालांकि भारत में जैविक डेयरी फार्मिंग के विकास की अपार संभावनाएं एवं लाभ हैं, फिर भी कुछ बाधाएं हैं जो इसके प्रगति को रोकती हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में जैविक डेयरी पद्धती द्वारा जैविक चारा उत्पादन, पशु प्रदर्शन और अर्थशास्त्र पर अनुसंधान कार्य शुरू करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

कम्बोज, एम. एल., हरिका, ए. एस., प्रसाद, एस., दत्त, सी. एवं कुमार, एन. (2010). Development of organic milk production system. Annual Report (2010-11), National Dairy Research Institute, Karnal, Haryana. pp 14-15

कम्बोज, एम. एल., राय, एस., प्रसाद, एस., दत्त, सी., हरिका, ए. एस., कुमार, एन. एवं कुमार, एन. (2013). A Technical Bulletin on Organic Dairy Farming, NDRI Publication No. 101/2013 pp 17-19.

कुमार, एन., सावंत, एस., मलिक, आर. के. एवं पाटिल, जी. आर. (2005). Development of analytical process for detection of antibiotic residues in milk using bacterial spores as biosensors (Patent Reg # IPR/4.9.1.4./05074/1479/ del/2006).

मारुजोल, बी. एवं गोलार्ड, एफ. (1999). In: Kouba, M. 2003. Quality of Organic Animal Products. Livestock production Science; 80: 33-40.

राष्ट्रभाषा के बिना
राष्ट्र गूंगा है

-महात्मा गांधी

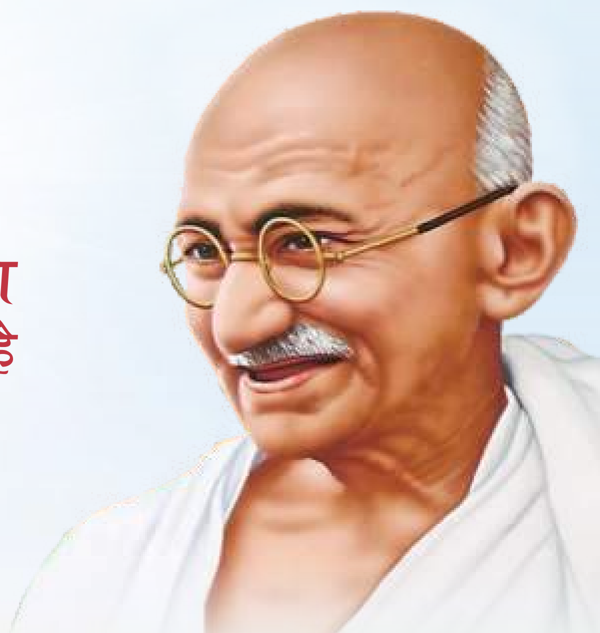

भारत सरकार राजभाषा विभाग, नई दिल्ली द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम 2020–21 में निर्धारित न्यूनतम लक्ष्य

क्र.	विवरण	''क'' क्षेत्र में स्थित कार्यालयों हेतु न्यूनतम लक्ष्य
1	हिंदी में मूल पत्राचार	1. क से क क्षेत्र को : 100 प्रतिशत, 2. क से ख क्षेत्र को : 100 प्रतिशत, 3. क से ग क्षेत्र को : 65 प्रतिशत 4. क व ख क्षेत्र में स्थित राज्यों व केंद्र शासित प्रदशों के कार्यालयों/व्यक्तियों को– क से क व ख क्षेत्र को : 100 प्रतिशत

क्र.	कार्य विवरण	''क'' क्षेत्र	''ख'' क्षेत्र	''ग'' क्षेत्र
2.	हिंदी में प्राप्त पत्रों का हिंदी में उत्तर दिया जाना	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत
3.	हिंदी में कार्यालय टिप्पणियां लिखना	75 प्रतिशत	50 प्रतिशत	30 प्रतिशत
4.	हिंदी माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन	70 प्रतिशत	60 प्रतिशत	30 प्रतिशत
5.	हिंदी टंकण करने वाले कर्मचारी एवं आशुलिपिक की भर्ती	80 प्रतिशत	70 प्रतिशत	40 प्रतिशत
6.	हिंदी में डिक्टशन/की–बोर्ड पर सीधे टंकण (स्वयं तथा सहायक द्वारा)	65 प्रतिशत	55 प्रतिशत	30 प्रतिशत
7.	हिंदी प्रक्षिण (भाषा, टंकण एवं आशुलिपि)	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत
8.	द्विभाषी प्रशिक्षण सामग्री तैयार करना	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत
9.	जर्नल और मानक संदर्भ पुस्तकों को छोड़कर पुस्तकालय के कुल अनुदान में से डिजिटल वस्तुओं अर्थात् हिंदी ई–पुस्तक, सीडी/डीवीडी, पैनड्राइव तथा अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओं से हिंदी में अनुवाद पर व्यय की गई राशि सहित हिंदी पुस्तकों आदि की खरीद पर व्यय	50 प्रतिशत	50 प्रतिशत	50 प्रतिशत
10	कंप्यूटर सहित सभी प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की द्विभाषी रूप में खरीद	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत
11	वेबसाइट (द्विभाषी)	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत
12	नागरिक चार्टर तथा जन सूचना बोर्डों आदि का प्रदर्शन	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत	100 प्रतिशत
13	मुख्यालय में स्थित अनुभागों का का निरीक्षण (न्यूनतम)	25 प्रतिशत	25 प्रतिशत	25 प्रतिशत
14	राजभाषा संबंधी नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें	वर्ष में 2 बैठकें, प्रति छमाही एक बैठक		
15	राजभाषा संबंधी राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें	वर्ष में 4 बैठकें, प्रति तिमाही एक बैठक		
16	कोड, मैनुअल, फॉर्म, प्रक्रिया और साहित्य का हिंदी अनुवाद	100 प्रतिशत		

राजभाषा खंड

राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में राजभाषा उल्लास माह–2019 का आयोजन

संस्थान में हिन्दी दिवस से प्रारंभ करके दि. 14.09.2019 से 14.10.2019 तक की अवधि में हिन्दी दिवस का भव्य आयोजन किया गया। इस माह के उद्घाटन कार्यक्रम व पुरस्कार वितरण समारोह की अध्यक्षता कार्यवाहक निदेशक डा. आर.आर.बी. सिंह ने की। इस मास में वार्षिक संस्थान राजभाषा गौरव प्रमाणपत्र प्रतियोगिता, वार्षिक नगरस्तरीय व संस्थान राजभाषा गौरव प्रमाणपत्र प्रतियोगिता, नगर स्तरीय हिन्दी गीतगायन प्रतियोगिता (16.9.2019), हिन्दी शब्द ज्ञान प्रतियोगिता (18.9.2019), हिन्दी टाइपिंग प्रतियोगिता (20.9.2019), हिन्दी निबंध प्रतियोगिता (23.9.2019), कुशल सहायक कर्मचारी वर्ग की हिन्दी सुलेख प्रतियोगिता (28.9.2019), वैज्ञानिकों की हिन्दी शोध–पत्र पोस्टर प्रदर्शन प्रतियोगिता (30.9.19), हिन्दी टिप्पणी लेखन प्रतियोगिता (3.10.2019), अनुभव लेखन प्रतियोगिता(5.10.2019), हिन्दी अनुभव लेखन प्रतियोगिता (5.10.2019), संस्थान तकनीकी हिन्दी लेखन अवॉर्ड प्रतियोगिता 2018–19 व वार्षिक मूल हिन्दी टिप्पणी व आलेखन प्रोत्साहन योजना प्रतियोगिता वर्ष 2018–19 के 160 विजेताओं को प्रमाणपत्रों द्वारा सम्मानित किया गया। निदेशक डा. आर.आर.बी. सिंह ने दि. 18.10.2019 को आयोजित वार्षिक राजभाषा पुरस्कार वितरण समारोह में राजभाषा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले प्रभागों के प्रथम, द्वितीय व तृतीय पुरस्कर क्रमशः डेरी सूक्ष्मजीवाणु प्रभाग, कृषि विज्ञान केन्द्र व स्थापना–5 अनुभाग को राजभाषा शील्ड व प्रशस्ति प्रमाण पत्रों से सम्मानित भी किया। संस्थान प्रमुख के द्वारा राजभाषा कार्यान्वयन की दिशा में 1.10.2018 से 30.9.2019 तक की अवधि में अनुकरणीय कार्य करने वाले प्रथम तीन प्रभाग डेरी प्रौद्योगिकी प्रभाग, डेरी अभियांत्रिकी प्रभाग व ऑडिट अनुभाग एवं वर्ष 2018–19 के संस्थान राजभाषा गौरव प्रमाणपत्र के वैज्ञानिक श्रेणी के विजेता डा. चित्रनायक, वरिष्ठ वैज्ञानिक, अधिकारी श्रेणी के विजेता श्री कुणाल कालड़ा, वित्त एवं लेखा अधिकारी, तकनीशियन श्रेणी के विजेता डा. उत्तम कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी व कुशल सहायक कर्मचारी श्रेणी के विजेता श्री रमीन्द्र कुमार को भी प्रशस्ति प्रमाणपत्रों से सम्मानित किया गया।

1. संस्थान के उत्कृष्ट प्रभाग/अनुभाग को राजभाषा शील्ड हेतु प्रतियोगिता (अवधि : 1.10.2018 से 30.9.2019)

क्र.	पुरस्कार श्रेणी	चयनित प्रभाग/अनुभाग	पुरस्कार
1.	उत्कृष्ट प्रभाग(वैज्ञानिक) राजभाषा शील्ड प्रतियोगिता	डेरी सूक्ष्मजीवाणु प्रभाग	राजभाषा शील्ड व प्रमाणपत्र
2.	उत्कृष्ट अनुभाग(वैज्ञानिक) राजभाषा शील्ड प्रतियोगिता	कृषि विज्ञान केन्द्र	राजभाषा शील्ड व प्रमाणपत्र
3.	उत्कृष्ट अनुभाग(प्रशासनिक) राजभाषा शील्ड प्रतियोगिता	स्थापना–5 अनुभाग	राजभाषा शील्ड व प्रमाणपत्र

2. राजभाषा कार्यान्वयन(अवधि : 1.10.2018 से 30.9.2019) की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास हेतु प्रमाणपत्र

प्रथम स्थान–	डेरी प्रौद्योगिकी प्रभाग, भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल
द्वितीय स्थान–	डेरी अभियांत्रिकी प्रभाग, भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल
तृतीय स्थान–	ऑडिट अनुभाग, भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल

3. संस्थान राजभाषा गौरव प्रमाणपत्र (राजभाषा के क्षेत्र में 2018–19 में सक्रिय एवं उत्कृष्ट योगदान हेतु)

वैज्ञानिक	: डा. चित्रनायक, वरिष्ठ वैज्ञानिक, डेरी अभियांत्रिकी प्रभाग, भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल
अधिकारी	: श्री कुणाल कालड़ा, वित्त एवं लेखा अधिकारी, भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल
कर्मचारी	: श्री सोनिका यादव, सहायक, ऑडिट अनुभाग, भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल
तकनीशियन	: डा. उत्तम कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी, शस्य अनुभाग, भाकृअनुप–राडेअनुसं, करना
कुशल सहायक कर्मचारी	: श्री रमीन्द्र कुमार, कुशल सहायक कर्मचारी, भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल

4. राडेअनुसं का नगरस्तरीय राजभाषा गौरव प्रमाणपत्र

क. डा. अनुज कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
ख. डा. अर्चना वर्मा, प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

5. नगर स्तरीय हिन्दी गीतगायन प्रतियोगिता (16.9.2019)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय का नाम	पुरस्कार
1.	श्री अनिल वधावन, सहायक निदेशक	दूरदर्शन केन्द्र, करनाल	प्रथम स्थान
2.	श्री गुरमीत सिंह, वरिष्ठ प्रबंधक	पंजाब नैशनल बैंक, करनाल	द्वितीय स्थान
3.	श्रीमती संगीता सामरा, सहायक	न्यू इंडिया एश्योरंस कं.लि., करनाल	तृतीय स्थान
4.	श्रीमती सुनीता चौधरी, निजी सचिव	राडेअनुसं, करनाल, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
5.	सुश्री शिल्पा रानी, एस.डब्ल्यू.ओ.	केनरा बैंक, करनाल, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
6.	श्री निखिल, एस.डब्ल्यू.ओ.	पंजाब नैशनल बैंक, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
7.	श्री निशान्त शर्मा, दफ्तरी	पंजाब नैशनल बैंक, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
8.	श्री लखविन्द्र सिंह, यू.डी.सी	राडेअनुसं, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
9.	सुश्री नीति मिंज, वरिष्ठ प्रबंधक	केनरा बैंक, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
10.	डा. चित्रनायक, वरिष्ठ वैज्ञानिक	राडेअनुसं, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
11.	श्री मंजीत जाखड़, वरिष्ठ प्रबंधक	यूनियन बैंक, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
12.	श्रीमती प्रीति गांधी, अधिकारी, स्केल–1	पंजाब नैशनल बैंक, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
13.	श्रीमती कृष्णा आजाद, स0प्रशा0अधि0	राडेअनुसं, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
14.	श्री संदीप, प्रबंधक	यूको बैंक, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न
15.	श्रीमती कुसुम खोसला, प्रबंधक	यूको बैंक, करनाल	प्रोत्साहन स्मृति चिह्न

6. हिन्दी भाब्द ज्ञान प्रतियोगिता (18.9.2019)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय का नाम	पुरस्कार
1.	श्री कुनाल कालड़ा, वित्त एवं लेखाधिकारी	ऑडिट अनुभाग	प्रथम स्थान
2.	डा. उत्तम कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी	सस्य विज्ञान अनुभाग	द्वितीय स्थान
3.	सुश्री सोनिका यादव, सहायक	ऑडिट अनुभाग	द्वितीय स्थान
4.	श्रीमती सन्तोष, निजी सहायक	कृषि विज्ञान केन्द्र	तृतीय स्थान
5.	सुश्री निष्ठा, एलडीसी	स्थापना–4 अनुभाग	तृतीय स्थान
6.	श्रीमती प्रेम मैहता, निजी सचिव	डेरी प्रौद्योगिकी प्रभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
7.	श्री रामधारी, सहायक	संयुक्त निदेशक(अनु.) का.	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
8.	श्री रविन्द्र कुमार, एलडीसी	नकदी एवं देयक 3 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
9.	श्री मुकेश कुमार दुआ, सहा.प्रशा.अधिकारी	स्थापना–5 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
10.	श्री विनोद कुमार, उच्च श्रेणी लिपिक	स्थापना–2 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
11.	श्री कुलजीत सिंह, उच्च श्रेणी लिपिक	स्थापना–3 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
12.	श्री सागर, अवर श्रेणी लिपिक	नकदी एवं देयक–3 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
13.	श्री राम बहादुर वर्मा, तकनीकी सहायक	डेरी अर्थशास्त्र सांख्यिकी एवं प्रबंधन	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
14.	सुश्री पिंकी देवी, तकनीकी सहायक	नकदी एवं देयक अनुभाग–3	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र

7. हिन्दी टाइपिंग प्रतियोगिता (20.9.2019)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय का नाम	पुरस्कार
1.	श्री कुलजीत सिंह, उच्च श्रेणी लिपिक	स्थापना–3 अनुभाग	प्रथम स्थान
2.	सुश्री सोनिका यादव, सहायक	ऑडिट अनुभाग	द्वितीय स्थान
3.	श्री रजनीश, आशुलिपिक	ऑडिट अनुभाग	द्वितीय स्थान
4.	श्रीमती मीरा रानी, सहायक	नकदी व देयक–1 अनुभाग	तृतीय स्थान
5.	श्रीमती संतोष, निजी सहायक	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
6.	सुश्री निष्ठा, अवर श्रेणी लिपिक	स्थापना–4 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
7.	श्री नरेश, कुशल सहायक कर्मचारी	स्थापना–1 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
8.	श्री प्रदीप कुमार, वरिष्ठ लिपिक	निदेशक कार्यालय	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
9.	श्रीमती सीमा रानी, निजी सहायक	डेरी सूक्ष्म जीवाणु प्रभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
10.	डा. उत्तम कुमार, मु.तक.अधिकारी	सस्य विज्ञान अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र

8. हिन्दी निबंध प्रतियोगिता (23.9.2019)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय का नाम	पुरस्कार
1.	सुश्री सोनिका यादव, सहायक	ऑडिट अनुभाग	प्रथम स्थान
2.	अमित कुमार सिंह, पीएच.डी(छात्र)	पशुधन उत्पादन व प्रबंधन अनुभाग	द्वितीय स्थान
3.	श्री सूरज सिंह मीणा, कुशल सहायक कर्मचारी	पशुधन अनुसंधान केन्द्र	तृतीय स्थान
4.	श्री नरेश कुमार, कुशल सहायक कर्मचारी	स्थापना–1 अनुभाग	तृतीय स्थान
5.	डा. उत्तम कुमार, मु.तक.अधिकारी	सस्य विज्ञान अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
6.	मनमोहन सिंह राजपूत पीएच.डी (छात्र)	एलपीएम	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
7.	श्री नमो नारायण मीना	अनुरक्षण अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
8.	श्रीमती अभिलाषा, सहायक	स्थापना–1 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
9.	श्री राकेश कुमार बंसल, मुख्य तकनीकी अधिकारी	अनुरक्षण अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
10.	श्री रविन्द्र सिंह, वरिष्ठ तकनीकी सहायक	अनुरक्षण अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
11.	श्री चतरपाल, वरिष्ठ लिपिक	क्रय अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
12.	श्री रमीन्द्र कुमार, कुशल सहायक कर्मचारी	सूक्ष्म जीवाणु प्रभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
13.	श्रेया पंवार, एम.एस.सी (छात्रा)	डेरी प्रौद्योगिकी प्रभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
14.	दृष्टि कादियान, पीएच.डी (छात्रा)	डेरी प्रौद्योगिकी प्रभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र

9. हिन्दी सुलेख, अनुलेख व श्रुतलेखन प्रतियोगिता–कुशल सहायक कर्मचारी श्रेणी (28.9.2019)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय का नाम	पुरस्कार
1.	श्री सूरज सिंह मीणा, कुशल सहायक कर्मचारी	पशुधन अनुसंधान केन्द्र	प्रथम स्थान
2.	श्री नरेश कुमार, कुशल सहायक कर्मचारी	स्थापना–1 अनुभाग	द्वितीय स्थान
3.	श्री रमीन्द्र कुमार, कुशल सहायक कर्मचारी	डेरी सूक्ष्मजीवाणु प्रभाग	तृतीय स्थान
4.	श्रीमती शीला बर्मन, कुशल सहायक कर्मचारी	डेरी सूक्ष्मजीवाणु प्रभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
5.	श्री बचन दास, कुशल सहायक कर्मचारी	डी.ई.एस.एम. प्रभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
6.	श्री दयानन्द, कुशल सहायक कर्मचारी	स्थापना–1 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
7.	श्री रामकिशन, कुशल सहायक कर्मचारी	डेरी सूक्ष्मजीवाणु प्रभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
8.	श्री रामकरण, कुशल सहायक कर्मचारी	राजभाषा एकक	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
9.	श्री विजयभान, कुशल सहायक कर्मचारी	नकदी देयक अनुभाग 3	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
10.	श्री अमित कुमार, कुशल सहायक कर्मचारी	स्थापना–4 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
11.	श्री नरेश चौहान, कुशल सहायक कर्मचारी	पुस्तकालय	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
12.	श्री रमेश पाल, कुशल सहायक कर्मचारी	संयुक्त निदेशक(प्रशासन)	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
13.	श्री राजीव सिंह, कुशल सहायक कर्मचारी	परीक्षा नियंत्रक कार्यालय	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
14.	श्री राजबीर सिंह, कुशल सहायक कर्मचारी	ऑडिट अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र

15.	श्री नीरज कुमार, कुशल सहायक कर्मचारी	स्थापना–4 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
16.	श्री सुमेर चन्द, कुशल सहायक कर्मचारी	परीक्षा नियंत्रक कार्यालय	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
17.	श्री राजेश, कुशल सहायक कर्मचारी	ऑडिट अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
18.	श्री चन्द्र किशोर, कुशल सहायक कर्मचारी	फार्म अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र

10. हिन्दी शोध–पत्र पोस्टर प्रदर्शन प्रतियोगिता (30.9.19)

क्र.	हिन्दी शोध पत्र प्रस्तुतकर्ता	शोधपत्र का शीर्षक	स्थान
1	डा. आशुतोष, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अन्य	शुद्धिकृत अपशिष्ट जल का पशुधन पेयजल में उपयोग	प्रथम स्थान
2	अंजलि कुमारी, एमवीएससी (छात्रा) व अन्य	संकर गायों में परिवर्तित अवधि के दौरान पोलीहर्बल मिश्रण की उपयोगिता	द्वितीय
3	श्रीजा सिन्हा पीएच.डी(छात्रा) एवं अन्य	विकसित मोबाइल ऐप 'ईको डेरी' की प्रभावशीलता	द्वितीय
4	डा.नीलम उपाध्याय, वैज्ञानिक एवं अन्य	गाजर जैव–अपशिष्ट से निकाले गए कैरोटीनाइडस का टेबल स्प्रेड बनाने के लिए उपयोग और इसका निरूपण	तृतीय
5	डा. के.पोन्नुसामी, प्रधान वैज्ञानिक एवं अन्य	डेरी में मूल्य वृद्धि के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाना : सफलता की कहानियाँ	चतुर्थ
6	सुश्री नीति लखानी (छात्रा) एवं अन्य	गर्मी के तनाव के दौरान मुर्राह भैंस के उत्पादन प्रदर्शन पर फाइबर और प्रोटीन के विभिन्न स्तरों को खिलाने का प्रभाव	चतुर्थ
7	प्रसन्न पाल, शोध छात्र एवं अन्य	ग्रामीण स्तर पर संकर गायों में अमदकाल की समस्या को सुधारने के लिए किस्सपेप्टिन की प्रभावकारिता का गूढ़वाचन	चतुर्थ
8	सुशील कुमार, रिसर्च एसोशिएट एवं अन्य	गाय, भैंस, भेड़, बकरी व ऊंटनी के दूध का पता लगाना	चतुर्थ
9	बृजेश पटेल, पूर्व छात्र एवं अन्य	गर्मी जनित तनाव के दौरान जिंक अनुपूरण का करण फ्रीज गायों को प्रदर्शन पर प्रभाव	चतुर्थ
10	मनमोहन सिंह राजपूत पीएच.डी(छात्र) एवं अन्य	साहीवाल गायों के मद व्यवहार एवं प्रजनन प्रदर्शन पर जैव उत्तेजना का प्रभाव	चतुर्थ
11	अवनेश शर्मा, पूर्व छात्र एवं अन्य	लाल समुद्री शैवाल की पूरमता का दुधारू संकर गायों में आहार उपयोग और दूध उत्पादन पर प्रभाव	चतुर्थ
12	दिनेश कुमार, पीएच.डी(छात्र) एवं अन्य	तिल आधारित अंतर फसल प्रणाली का उत्पादन क्षमता एवं आर्थिक आकलन	चतुर्थ
13	श्रुति नैयर, एम.टैक (छात्रा) एवं अन्य	खाद्य श्रृंखला में जीवाणुओं के रोगाणुरोधी प्रतिरोध	चतुर्थ

11. हिन्दी टिप्पणी एवं आलेखन प्रतियोगिता (3.10.2019)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	प्रभाग/अनुभाग	पुरस्कार
1.	श्री रामधारी, सहायक	संयुक्त निदेशक(अनुसंधान) कार्यालय	प्रथम स्थान
2.	श्री राकेश कुमार बंसल, मुख्य तकनीकी अधिकारी	अनुरक्षण अनुभाग	द्वितीय स्थान
3.	श्रीमती प्रेम मैहता, निजी सचिव	डेरी प्रौद्योगिकी प्रभाग	तृतीय स्थान
4.	डा. उत्तम कुमार, मुख्य तकनकी अधिकारी	सस्य विज्ञान अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
5.	श्रीमती सुषमा रानी, उच्च श्रेणी लिपिक	स्थापना–4 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
6.	सुश्री निष्ठा, अवर श्रेणी लिपिक	स्थापना–4 अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
7.	सुश्री सोनिका यादव, सहायक	ऑडिट अनुभाग	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र
8.	श्री सूरज सिंह मीना, कुशल सहायक कर्मचारी	पशुधन अनुसंधान केन्द्र	प्रोत्साहन प्रमाणपत्र

12. हिन्दी में अनुभव लेखन प्रतियोगिता, विद्यार्थी श्रेणी (5.10.2019)

क्र.	विजेता का नाम	पुरस्कार
1.	नूतन चौहान, छात्रा, एमवीएससी, पशु पोषण प्रभाग	प्रथम स्थान
2.	प्रभाषिनी दास, छात्रा, एमवीएससी,पशु शरीर क्रिया अनुभाग	प्रथम स्थान
3.	पूजा कुमारी, छात्रा, एमएससी, तृतीय वर्ष,पशु जीवरसायन प्रभाग	द्वितीय स्थान
4.	डा.दिपांकर पाल, छात्र, एमवीएससी, प्रथम वर्ष, पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग	द्वितीय स्थान
5.	डा.जितेन्द्र कुमार, छात्र, पीएचडी, द्वितीय वर्ष, पशु जीवरसायन प्रभाग	तृतीय स्थान
6.	शिवांजली, छात्रा, बी.टेक, डेरी प्रौद्योगिकी प्रभाग	तृतीय स्थान
7.	किरण प्रभा महन्त, छात्रा,एलपीएम अनुभाग	चतुर्थ स्थान
8.	प्रजापति महिर्ष रमेशभाई, छात्र, डेरी सूक्ष्मजीवाणु प्रभाग	चतुर्थ स्थान

13. हिन्दी में अनुभव लेखन प्रतियोगिता, कर्मचारी श्रेणी (5.10.2019)

क्र.	विजेता	प्रभाग/अनुभाग	पुरस्कार
1.	डा. चित्रनायक	वरिष्ठ वैज्ञानिक, डेरी अभियांत्रिकी प्रभाग	प्रथम स्थान
2.	रमीन्द्र कुमार	कुशल सहायक कर्मचारी,डेरी सूक्ष्मजीवाणु प्रभाग	द्वितीय स्थान

14. संस्थान तकनीकी लेखन अवॉर्ड 2018–19 के विजेता

क. राडेअनुसं की पत्रिका ''दुग्ध गंगा'' के उत्कृष्ट आलेख

क्र.	आलेख का नाम	लेखक	पुरस्कार
1	भारत में कुपोषणः स्थिति और इससे निपटने के लिए रणनितियाँ	नीलम उपाध्याय, वैज्ञानिक, डेरी प्रौद्योगिकी प्रभाग, राडेअनुसं, करनाल	प्रथम
2	बछड़–बछड़ियों की देखभाल कैसे करें ?	अश्विनी कुमार रॉय एवं महेंद्र सिंह, पशु शरीर क्रिया प्रभाग, राडेअनुसं, करनाल	द्वितीय
3	स्वच्छ भारत की डेयरी में प्रासांगिकताः प्रदूषण एवं स्वास्थ्य	जितेंद्र कुमार, मुरली धर मित्र, हनुमान प्रसाद यादव, हरिब्रहम सिंह एवं चंद्र दत्त	तृतीय
4	लघु व मध्यम वर्गीय कृषकों हेतु पनीर बनाने की स्वचालन तकनीक	चित्रनायक, राकेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, जितेन्द्र डबास व सुनील कुमार	प्रोत्साहन
5	खाद्य और डेयरी क्षेत्र में महिला उद्यमिताः कारण, समस्याएं एवं उपलब्ध मंच	नीलम उपाध्याय, आशीष कुमार सिंह, संगीता गांगुली, लता सबीखी	प्रोत्साहन

ख. संस्थान बाह्य उत्कृष्ट आलेख

क्र.	आलेख का शीर्षक एवं पत्रिका जिसमें प्रकाशित हुई	लेखक	पुरस्कार
1	दुधारू पशु मद में ना आएं तो क्या करें पत्रिका का नाम दुग्ध सरिता वर्ष : 2, अंक–3 मई–जून, 2018	नितिन रहेजा, भूतपूर्व शोध छात्र पशु प्रजनन, स्त्री रोग एवं प्रस्तुति अनुभाग, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल	प्रथम
2	कृषि किरण ''उन्नत कृषि तकनीकों द्वारा लवणीय क्षारीय जल का सिंचाई प्रबंधन'' वार्षिकांक–11 वर्ष 2018–19	गोविन्द मकराना, शोध छात्र, सस्य विज्ञान अनुभाग	द्वितीय
3	''अनाज का सुरक्षित भण्डारण'' गेंहू एवं जौ स्वर्णिमा, दसवा अंक–2018, भारतीय गेहू एवं जौ अनुसंधान संस्थान–करनाल	उत्तम कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी	तृतीय
4	गाय/भैंसे समय पर गर्भवती हो सकें, पशुपालक उनसे ज्यादा प्रसव ले सकें, इस संबंधी क्या उपाय किए जाने चाहिए। पत्रिका : उत्तम डेयरी संसार वर्ष–1 अंक :1, पृष्ठ : 61–66	निशान्त कुमार, वैज्ञानिक, पशुधन उत्पादन प्रबंधन अनुभाग, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल	प्रोत्साहन

ग. तकनीकी पुस्तिका(बुकलेट/बुलेटिन) श्रेणी

क्र.	प्रकाशित आलेख	लेखक	पुरस्कार
1	विभिन्न मौसमों में डेयरी पशुओं को होने वाले मुख्य रोग एवं उनका प्रबंधन, प्रकाशन संख्या 169/2018	1.अंजलि अग्रवाल, प्रधान वैज्ञानिक, पशु शरीर क्रिया प्रभाग, राडेअनुसं, करनाल 2. प्रवीन कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, पशु शरीर क्रिया विभाग, 3. लक्ष्मी प्रियदर्शिनी रिसर्च एसोसिएट	विशिष्ट सम्मान

घ. उत्कृष्ट हिन्दी फोल्डर

क्र.	पुरस्कृत फोल्डर	लेखक	पुरस्कार
1	गेहूँ की अधिक पैदावार के लिए नवीनतम कृषि	श्री मोहर सिंह, स0मु0तक0अधि0 एवं डा. सुरिन्द्र कुमार, प्रभारी कृषि विज्ञान केन्द्र, डा. सुरिन्द्र कुमार, प्रभारी कृषि विज्ञान केन्द्र	विशिष्ट सम्मान

च. उत्कृष्ट समसामयिक हिन्दी आलेख

क्र.	चयनित प्रविशिट	लेखक	प्राप्त स्थान
1	आलेख : हमारी राजभाषा हिन्दी	सोनिका यादव, सहायक, ऑडिट अनुभाग, राडेअनुसं	वशिष्ट सम्मान
2	आलेख : स्वच्छता की राह, उन्नति की राह	झलक कुशवाहा, सुपुत्री श्री राकेश कुमार कुशवाहा, कक्षा–10वीं केन्द्रीय विद्यालय, करनाल	विशिष्ट सम्मान

15. मूल हिन्दी टिप्पणी व आलेखन प्रोत्साहन योजना वर्ष 2018–19 के विजेता

क्र.	कर्मचारी का नाम	अनुभाग	पुरस्कार
1	श्री प्रभजीत सिंह बहल, सहायक	ऑडिट	प्रथम
2	श्री रमीन्द्र कुमार, कुशल सहायक कर्मचारी	डेरी सूक्ष्मजीवाणु	प्रथम
3	श्रीमती मीरा रानी, सहायक	नकदी एवं देयक1	द्वितीय
4	श्रीमती सुषमा रानी, अपर श्रेणी लिपिक	स्थापना–4	द्वितीय
5	श्रीमती स्वाति यादव, सहायक	डीडीओ–3	द्वितीय
6	श्री नीरज कुमार, कुशल सहायक कर्मचारी	स्थापना–4	तृतीय
7	श्रीमती शीला बर्मन, कुशल सहायक कर्मचारी	श्रम कल्याण	तृतीय
8	श्री कुलजीत सिंह, अपर श्रेणी लिपिक	स्थापना 1	तृतीय
9	श्री मनजीत सिंह, अवर श्रेणी लिपिक	नकदी एवं देयक1	तृतीय
10	श्री विजयपाल, तकनीकी सहायक	वाहन पूल	तृतीय

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, करनाल के अध्यक्षीय कार्यालय के रूप में राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा 2019–20 में संपन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं की सूची

नगर स्तरीय हिन्दी निबंध प्रतियोगिता (12.09.2019 को संपन्न)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय	पुरस्कार
1	सुश्री सोनिका यादव, सहायक	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	प्रथम स्थान
2	श्री आनन्द प्रकाश	एमएसएमई विकास संस्थान, करनाल	द्वितीय स्थान
3	श्री चन्द्रभानु सिंह	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान	तृतीय स्थान
4	मीनाक्षी गोयल, डिप्टी मैनेजर	पंजाब नैशनल बैंक, करनाल	तृतीय स्थान

नगर स्तरीय हिन्दी गीतगायन प्रतियोगिता (16.9.2019 को संपन्न)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय का नाम	पुरस्कार
1.	श्री अनिल वधावन, सहायक निदेशक	दूरदर्शन केन्द्र, करनाल	प्रथम स्थान
2.	श्री गुरमीत सिंह, वरिष्ठ प्रबंधक	पंजाब नैशनल बैंक, करनाल	द्वितीय स्थान
3.	श्रीमती संगीता सामरा, सहायक	न्यू इंडिया एश्योरेंस कं.लि., करनाल	तृतीय स्थान

नगर स्तरीय हिन्दी निबंध लेखन प्रतियोगिता (23.09.2019 को संपन्न)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय	पुरस्कार
1	श्रीमती पूनम सलूजा, आशुलिपिक	एमएसएमई विकास संस्थान, करनाल	प्रथम स्थान
2	सुश्री सोनिका यादव, सहायक	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	द्वितीय
3	श्री सुनील कुमार	भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान	तृतीय
4	सुश्री सोनम वर्मा	भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान	प्रोत्साहन

नगर स्तरीय हिन्दी व्याकरण प्रतियोगिता (18.10.2019 को संपन्न)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय	पुरस्कार
1	श्रीमती प्रेम मैहता, निजी सचिव	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	प्रथम स्थान
2	श्री कुणाल कालड़ा, वित्त एवं लेखाधिकारी	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	द्वितीय स्थान
3	श्रीमती रूचि ढ़ल्ल, डाक सहायिका	भारतीय डाक विभाग, करनाल	तृतीय स्थान

नगर स्तरीय हिन्दी निबंध प्रतियोगिता(23.10.2019 को संपन्न)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय	पुरस्कार
1	मुकेश कुमार तोमर, वरिष्ठ तकनीशियन	दूरदर्शन केन्द्र, करनाल	प्रथम स्थान
2	सोनिका यादव, सहायक	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	द्वितीय स्थान
3	त्रिभुवन पाल सिंह, विधि अधिकारी	न्यू इंडिया एशोरेंस, करनाल	तृतीय स्थान
4	मीनाक्षी गोयल, डिप्टी मैनेजर	पंजाब नैशनल बैंक, करनाल	तृतीय स्थान

चित्र आधारित हिन्दी कहानी लेखन प्रतियोगिता (24.10.2019 को संपन्न)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय	पुरस्कार
1	विवेक सैनी, सहायक	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	प्रथम स्थान
2	अनिल कुमार भोला, मंडल प्रबंधक	न्यू इंडिया एशोरेंस, करनाल	द्वितीय स्थान
3	डा. चित्रनायक, वरिष्ठ वैज्ञानिक	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	तृतीय स्थान

नगरस्तरीय हिन्दी स्वरचित कविता वाचन प्रतियोगिता (25.10.2019 को संपन्न)

क्र.	प्रतिभागी का नाम व पदनाम	कार्यालय	पुरस्कार
1	सुश्री निष्ठा, अवर श्रेणी लिपिक	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	प्रथम स्थान
2	श्री प्रवीण भास्कर, उच्च श्रेणी लिपिक	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	द्वितीय स्थान
3	श्री मनमोहन सिंह, पीएचडी, छात्र	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	तृतीय स्थान
4	श्रीमती शीला बर्मन, कु0सहा0कर्मचारी	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	प्रोत्साहन पुरस्कार
5	श्री विवेक सैनी, सहायक	भाकृअनुप–राडेअनुसं, करनाल	प्रोत्साहन पुरस्कार

न.रा.का.स.करनाल द्वारा राजभाषा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हेतु वार्षिक न.रा.का.स. पुरस्कार एवं राजभाषा शील्ड (2018-19) से सम्मानित शोध संस्थान सदस्य कार्यालय

नगरस्तरीय हिन्दी स्वरचित कविता वाचन प्रतियोगिता (25.10.2019 को संपन्न)

क्र.सं.	कार्यालय का नाम	पुरस्कार
1	भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल	प्रथम
2	भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल	प्रथम
3	भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	द्वितीय
4	भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल	द्वितीय
5	भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल	तृतीय
6	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, करनाल	प्रोत्साहन

भाकृअनुप के कार्यालयों व पदनाम के हिंदी अर्थ

(Hindi version of offices/designations of ICAR)

क्रमांक	पदनाम अंग्रेजी में (in English)	पदनाम हिन्दी में (Expression in Hindi)
1	Government of India(GOI)	भारत सरकार
2	Ministry of Agriculture & Farmers Welfare	कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय
3	Minister of Agriculture & Farmers Welfare, Rural Development and Panchayati Raj	कृषि एवं किसान कल्याण, ग्रामीण विकास तथा पंचायती राज मंत्री
4	Minister of State	राज्य मंत्री
5	Department of Agricultural Research & Education (DARE)	कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग(डेयर)
6	Secretary(DARE)	सचिव(डेयर)
7	Director General (ICAR)	महानिदेशक (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
8	Addl. Secretary	अपर सचिव
9	Financial Advisor(FA)	वित्तीय सलाहकार
10	Chairman	अध्यक्ष
11	ASRB(Agricultural Scientists Recruitment Board)	कृषि वैज्ञानिक चयन मंडल
12	Deputy Director General (DDG)	उप महानिदेशक
13	Director	निदेशक
14	Joint Director(Academics)	संयुक्त निदेशक(शैक्षणिक)
15	Joint Director(Research)	संयुक्त निदेशक(अनुसंधान)
16	Joint Director(Administration) & Registrar	संयुक्त निदेशक(प्रशासन) एवं कुलसचिव
17	Registrar	कुलसचिव
18	Chief Administrative Officer(CAO)	मुख्य प्रशासनिक अधिकारी
19	Senior Administrative Officer (SAO)	वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी
20	Administrative Officer (AO)	प्रशासनिक अधिकारी
21	Assistant Administrative Officer (AO)	सहायक प्रशासनिक अधिकारी
22	Deputy Director(Official Language)	उप निदेशक(राजभाषा)
23	Assistant Director(Official Language)	सहायक निदेशक(राजभाषा)
24	Head of the Division	प्रभागाध्यक्ष
25	Incharge of the Section	अनुभाग के प्रभारी

26	Assistant	सहायक
27	Upper Division Clerk	उच्च श्रेणी लिपिक
28	Lower Division Clerk	अवर श्रेणी लिपिक
29	Skilled Support Staff(SSS)	कुशल सहायक कर्मचारी
30	Chief Technical Officer(CTO)	मुख्य तकनीकी अधिकारी
31	Assistant Chief Technical Officer	सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
32	Senior Technical Officer (STO)	वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
33	Technical Officer(TO)	तकनीकी अधिकारी
34	Senior Technical Assistant(STA)	वरिष्ठ तकनीकी सहायक
35	Senior Technician	वरिष्ठ तकनीकी सहायक
36	Technician	तकनीशियन
37	Security Incharge	सुरक्षा प्रभारी
38	Security Officer	सुरक्षा अधिकारी
39	Security Supervisor	सुरक्षा पर्यवेक्षक
40	Incharge	प्रभारी
41	Division	प्रभाग
42	Section	अनुभाग
43	Unit	एकक या इकाई
44	Cell	प्रकोष्ठ, कक्ष, कमरा

''दुग्ध गंगा'' पत्रिका के छमाही ग्यारहवें अंक हेतु लेख आमंत्रण

राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल के द्वारा ''दुग्ध गंगा'' पत्रिका के अगले अर्द्धवार्षिक छमाही ग्यारहवें अंक का सितंबर, 2020 माह में प्रकाशन किया जाएगा। अतः डेरी विज्ञान, पशुपालन व कृषि से संबंधित लेखकों, वैज्ञानिकों व छात्रों से उक्त अंक के के लिए मौलिक लोकप्रिय लेख/शोध पत्र/हिन्दी रचनाएं आदि ईमेल tolic.karnal.ndri@gmail पर दिनांक 31 अगस्त, 2020 तक भिजवा दें। अपनी रचनाओं के साथ रचना की मौलिकता के संबंध में निर्धारित प्रफोर्मे में एक आवेदन फॉर्म भी उपरोक्त ईमेल पर मांग भेजकर प्राप्त कर लें तथा उस फॉर्म के साथ प्रविष्टि की हार्ड कॉपी भी भिजवाएं।

संपादक मंडल

विश्व पटल पर फैली महामारीः कोरोना (कविता)

चित्रनायक सिन्हा
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

फैली है पूरे विश्व में कोरोना नामक भीषण बीमारी, देखते—देखते बन गई ये दुनिया की महामारी;
चीन से आरंभ हो फैली पूरी दूनिया में ये बीमारी, चमगादड़ बना स्त्रोत संक्रमित होती गयी दुनिया सारी;
अनगिनत मौतों का तांडव हुआ शुरू फैलते ही ये महामारी, चीन के वुहान से शुरू हुई ये बीमारी,
संपूर्ण विश्व हुआ लौकडाउन आते ही कोरोना की बीमारी, हर देश घरों में कैद रोकने को ये बीमारी;
लाइलाज ये कोरोना, लील गई पांच लाख जिंदगियां, डॉक्टर, एक्सपर्ट सब बेबस, नहीं बचा पाए ये जिंदगियां;
वर्ष—2020 में फैला ये संक्रमण, चीन से अमेरिका, यूरोप, एशिया, अफ्रीका— हर ओर फैली ये महामारी;
पांच लाख को निगल पूरे विश्व को संक्रमित कर दहला देने वाली कोविड-19 कहलायी ये महामारी;
भारत समेत सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था—व्यवसाय सब चौपट, फैलते ही ये महामारी;
सम्पूर्ण विश्व लौकडाउन, बंद हुई सब ट्रेनें, प्लेन, मेट्रो, ऑटो, टैक्सी, ट्रक व बसें सारी;
बंद कार्यालय, स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी सब बंद, विद्यर्थियों व बच्चों की चौपट पढ़ाई सारी;
डॉक्टर—नर्स, ड्यूटी पर पुलिस वाले भी हो रहे संक्रमित, ऐसी है ये बीमारी;
ना सटीक वैक्सीन, ना सटीक इलाज, जाने कहाँ जाकर थमेगी ये महामारी;
पांच लाख से अधिक को निगल गयी ये महामारी, लाखों संक्रमित, जाने कब थमेगी ये महामारी;
शुद्ध—स्वच्छ हुई हवा, पानी व नदियाँ सारी, लौकडाउन से फैक्ट्री, मोटर सब बंद, शुद्ध हो गयी दुनिया सारी;
प्रार्थना बस यही, ऊपर वाला ही थामे ये महामारी, उनका ही बस आसरा, रोको ये महामारी;
हो नहीं सकता निष्ठुर, जिसने रची ये दुनिया सारी, बचाओ हे प्रभु— तुम्हारी ही बसाई है, ये ब्रह्माण्ड सारी;
निःशब्द हुए न्यूयार्क, लन्दन, पेरिस, स्पेन, अमेरिका, इटली, चीन, भारत सहित दुनिया सारी;
कांप उठा पूरा विश्व, कोरोना है वो बीमारी, काल बन निगल गई लाखों जानें, ये भीषण महामारी.......

असफलता सफलता से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है

उत्तम कुमार

भाकृअप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

सभी के जीवन में एक समय ऐसा आता है जब सभी चीजें आपके विरोध में हो रहीं हों और हर तरफ से निराशा मिल रही हो। चाहें आप एक प्रोग्रामर हैं या कुछ और, आप जीवन के उस मोड़ पर खड़े होते हैं जहाँ सब कुछ गलत हो रहा होता है। अब चाहे ये कोई सॉफ्टवेर हो सकता है जिसे सभी ने रिजेक्ट कर दिया हो, या आपका कोई फैसला हो सकता है जो बहुत ही भयानक साबित हुआ हो। लेकिन सही मायने में, विफलता सफलता से ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। हमारे इतिहास में जितने भी व्यवसाय, वैज्ञानिक और महापुरुष हुए हैं वो जीवन में सफल बनने से पहले लगातार कई बार असफल हुए हैं। जब हम बहुत सारे कम कर रहे हों तो ये जरूरी नहीं कि सब कुछ सही ही होगा। लेकिन अगर आप इस वजह से प्रयास करना छोड़ देंगे तो कभी सफल नहीं हो सकते।

हेनरी फोर्ड, जो बिलियनेर और विश्वप्रसिद्ध फोर्ड मोटर कंपनी के मलिक हैं। सफल बनने से पहले फोर्ड पाँच अन्य व्यवसायों मे असफल हुए थे। कोई और होता तो पाँच बार अलग अलग व्यवसाय में असफल होने और कर्ज मे डूबने के कारण टूट जाता। लेकिन फोर्ड ने ऐसा नहीं किया और आज एक बिलिनेअर कंपनी के मलिक हैं।

अगर विफलता की बात करें तो थॉमस अल्वा एडिसन का नाम सबसे पहले आता है। लाइट बल्ब बनाने से पहले उसने लगभग 1000 विफल प्रयोग किए थे। अल्बेर्ट आइनस्टाइन जो 4 साल की उम्र तक कुछ बोल नहीं पाते थे और 7 साल की उम्र तक निरक्षर थे, लोग उनको दिमागी रूप से कमजोर मानते थे लेकिन अपने सिद्धांतों के बल पर वे दुनिया के सबसे बड़े वैज्ञानिक बने।

अब जरा सोचो कि अगर हेनरी फोर्ड पाँच व्यवसायों में विफल होने के बाद निराश होकर बैठ जाते, या एडिसन 999 असफल प्रयोग के बाद उम्मीद छोड़ देते और आईन्टाइन भी खुद को दिमागी कमजोर मान के बैठ जाते तो क्या होता?

हम बहुत सारी महान प्रतिभाओं और आविष्कारों से अंजान रह जाते ।

तो मित्रों, असफलता सफलता से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है....

असफलता ही इंसान को सफलता का मार्ग दिखाती है।

किसी महापुरूष ने कहा हैः–

'जीतने वाले कभी हार नहीं मानते और हार मानने वाले कभी जीत नहीं सकते'

आज सभी लोग अपने भाग्य और परिस्थियों को कोसते हैं। अब जरा सोचिये अगर एडिसन भी खुद को अभागा समझ कर प्रयास करना छोड़ देते तो दुनिया एक बहुत बड़े आविष्कार से वंचित रह जाती। आइंस्टीन भी अपने भाग्य और परिस्थियों को कोस सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। तो आप एसा क्यों करते हैं।

अगर किसी काम में आप असफल हो भी गए हो तो क्या हुआ ये अंत तो नहीं है ना, फिर से कोशिश करो, क्योंकि कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

मित्रों असफलता तो सफलता की एक शुरुआत है, इससे घबराना नहीं चाहिए बल्कि पूरे जोश के साथ फिर से प्रयास करना चाहिए।

मेरी दो कविताएं

मृदुला उपाध्याय

माँ का आंचल

आज जब मेरे चेहरे पर घिर आई है
आड़ी तिरछी रेखाऐं
अतीत और वर्तमान ने मिलकर
मानचित्र सा बना दिया है मेरे चेहरे पर
केश राशि के बीच झांकने लगी है सफेद घटायें
जिंदगी की आपाधापी
मुखोटे की नाटकीयता
रिश्तों की खट्टी मिठ्ठी स्मृतियाँ
सुख दुख के उतराव चढ़ाव से
आकुल व्याकुल हो उठी है, जीवेष्णा
किन्तु तभी स्मृति के दर्पण में
फहरा उठता है माँ का आँचल
इसमें सिमटत ही जन्म ले लेता है बचपन
मचलने, थिरकने लगता है मन
यादों के दीप जगमगाने लगते हैं
स्नेह भरी माँ की यादों की फुहारें
भिगो डालती है
अन्तर मन के सूखे आंगन को।

निशब्द

आज मेघ से घिर आई बदली
और रसभरी फुहारें
मेरी संवेदनशीलता को नहीं जगा पा रही है
फूलो की हंसी, बसंत की बहार
पवन की सुगंध से क्यों नहीं भीग रहा मन।
शायद कोरोना के कहर से
सन्नाटा सा बुन गया है।
चुप है पद चाप
आहटें भी थमी सी हैं
काल के कराल चाबुक से
पिघल गये हैं आस्था के सैलाब
घंटे घटियां सब मौन हैं
कोरोना के कोहरे में
मनवता कराह रही है
चारों और दर्द पसर गया है
निशब्द हो गए हैं शब्दकोश
झूठी हो गई हैं परिभाषाएँ
नयी आशा का वृक्ष उगने की प्रतीक्षा है
आएगा फिर एक नया सवेरा
जलेगा विश्वास का दीप
गूँजेगा शँखनाद !

(कवयित्री भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल से सेवा निवृत्त हो चुकी हैं)

मेरी डायरी से

राकेश कुमार कुशवाहा, राजभाषा विभाग, भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

वर्चस्व की ओर राजभाषा हिन्दी

(मेरे विचार)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि स्वतंत्रता संग्राम से लेकर अब तक के सफर में हिन्दी भाषा ने जन–जन को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया है। संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी ने पूरे राष्ट्र में जनचेतना पैदा की है। संचार माध्यमों जिनमें दृश्य, श्रव्य, प्रिन्ट, सोशल व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिन्दी की बढ़ती हुई पहचान इसके वर्चस्व को स्वयंसिद्ध करती है। सरकारी कामकाज में हिन्दी प्रचार एवं प्रचार ने ने अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज की है। आजादी के उपरांत के कुछ वर्षों में कार्यालय प्रधानों को यह ज्ञान तक नहीं होता था कि हिन्दी में कार्य करना भी संवैधानिक दायित्वों की श्रेणी में आता है। किन्तु आज के कार्यालय प्रधान राजभाषा नीति, नियमों के अनुपालन के प्रति प्रतिबद्ध व जागरूक हैं, यह सराहनीय प्रगति देखी गई है। हिन्दी को वर्चस्व की ओर ले जाने में चलचित्र एवं सिनेमा जगत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मोबाइल पर फिल्मों व वेब सीरीज की सुलभता ने इसे नया आयाम दिया है। फिल्मों व वेब सीरीज ने शहर से लेकर गांवों व छोटे–छोटे कस्बों तक दर्शकों के दिलोदिमाग पर हिन्दी संवादों, विचारों व शब्दों की अमिट छाप डाली है। फिल्मों के देश–विदेशों में सफलता का राज भी यह है कि इनमें हिन्दी संवादों को सरल व आम बोलचाल की भाषा में प्रयोग किया जा रहा है। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देश के प्रधानमंत्री व अन्य नामचीन हस्तियों द्वारा हिन्दी में अपनी बात रखने से हिन्दी के वर्चस्व को नई पहचान मिली है। 21वीं सदी में तीव्र गति से परिवर्तन की ओर अग्रसर दुनिया एक वैश्विक गांव बनती जा रही है तथा हमारी हिन्दी भाषा भी तकनीकी प्रगति की ओर सतत् अग्रसर है। इस प्रगति की यात्रा में हमें हिन्दी के प्रयोग को व्यापक स्तर पर प्रचारित व प्रसारित करके तथा मन से अपनाते हुए अपना योगदान जारी रखना है। यदि हम सच्चे अर्थों में अपनी हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वर्चस्व दिलाना चाहते हैं तो विकसित देशों की तरह ही हमें अपने देश को भी भारतीय एकता के सूत्र में पिरोना होगा और संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी के माध्यम से इस कार्य को बखूबी किया जा सकता है।

कविता

शीर्षक : हमारा प्यारा संस्थान

सन् 1923 में बंग्लौर में जन्मा,
1955 में करनाल में आया,
कल्याणी व बंग्लौर में इसके,
दोनों क्षेत्रीय केन्द्रों के स्थान हैं।
डेरी अनुसंधान उद्‌देश्य है इसका,
श्वेत क्रान्ति का अग्रदूत यह संस्थान है।

डेरी शिक्षण और प्रशिक्षण में संपूर्णता,
इसकी विरासत व शान हैं।
नव प्रौद्योगिकी और शोध में अनुपम,
उपलब्धियां इसकी प्रमाण हैं।

अनूठा–अनुपम संस्थान हमारा,
डेरी सेक्टर की प्रमुख पहचान है।
राष्ट्र के डेरी स्वप्नों को समर्पित,
हमारा राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी पत्रिका पुरस्कार योजना''

पात्रताः परिषद के विभिन्न संस्थानों/निदेशालयों/ब्यूरो/केन्द्रों आदि में हिन्दी में प्रकाशित पत्रिकाओं/गृह पत्रिकाओं को पुरस्कृत करने के लिए प्रत्येक वर्ष प्रविष्टियां आमंत्रित की जाती हैं।

पुरस्कार का स्वरूप

हिन्दी में प्रकाशित पत्रिकाओं/गृह पत्रिकाओं के लिए यह पुरस्कार दिया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 'क' और 'ख' क्षेत्र के संस्थानों से प्रकाशित पत्रिकाओं के लिए तीन पुरस्कार क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार के रूप में शील्ड और ट्रॉफियां दी जाती हैं तथा 'ग' क्षेत्र के संस्थानों से प्रकाशित पत्रिकाओं के लिए भी तीन पुरस्का क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार के रूप में शील्ड और ट्रॉफियां दी जाती हैं।

पुरस्कार का उद्देश्य

इस पुरस्कार का उद्देश्य परिषद के विभिन्न संस्थानों द्वारा हिन्दी में प्रकाशित/गृह पत्रिकाओं में परस्पर स्वच्छ प्रतिस्पर्धा और एकरूपता लाकर उनमें उत्कृष्टता लाना है।

पुरस्कार के लिए पात्रता

यह पुरस्कार व्यक्तिगत न होकर संस्थान स्तर पर दिया जाता है। परिषद के अधीनस्थ वे सभी संस्थान/निदेशालय/ब्यूरो केन्द्र आदि इस योजना में भाग ले सकते हैं जो अपने स्तर पर वित्तीय वर्ष के दौरान हिन्दी में कोई पत्रिका/गृह पत्रिका का एक या इसमें अधिक अंक प्रकाशित करते हैं। पुरस्कार के लिए चयन प्रत्येक वित्तीय वर्ष के दौरान हिन्दी में प्रकाशित पत्रिका/गृह पत्रिकाओं में से किया जाता है। पुरस्कार हेतु चयन की प्रक्रिया प्रत्येक वित्तीय वर्ष की समाप्ति के बाद शुरू की जाती है।

पुरस्कार के लिए चयन की क्रियाविधि

पुरस्कार योजना में भाग लेने के लिए परिषद की ओर से संस्थानों आदि को सूचना भेजी जाती है। सभी संस्थानों आदि को प्रविष्टि सूचना पत्र में इंगित तारीख तक निदेशक (राजभाषा) के नाम से परिषद के पते पर भेजनी होती है। मूल्यांकन समिति द्वारा निर्णय किए जाने के पश्चात् पुरस्कार की सूचना संबंधित कार्यालय को दी जाती है। मूल्यांकन समिति की संस्तुति के बाद महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा पुरस्कार स्वीकृत किया जाता है और इसकी घोषणा सचिव, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के नामित अधिकारी द्वारा की जाती है।

मूल्यांकन के लिए मानदंड

100 अंकों में से किए जाने वाले मूल्यांकन में मुद्रण, विषय सूची की प्रकृति, विषयों की गुणवत्ता व संपादन प्रत्येक के लिए 25 अंक निर्धारित हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की ''राजर्षि टंडन राजभाषा पुरस्कार योजना''

पुरस्कार किसकी ओर से दिया जाता है

यह पुरस्कार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली द्वारा प्रदान किया जाता है और परिषद के बड़े संस्थानों व परिषद के ''क'' और ''ख'' क्षेत्रों के अन्य संस्थानों के लिए अलग–अलग है तथा इसी तरह ''ग'' क्षेत्र में स्थित संस्थानों आदि के लिए भी अलग से है।

पुरस्कार का स्वरूप

यह पुरस्कार प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए (एक) परिषद के बड़े संस्थानों (दो) परिषद के ''क'' और ''ख'' क्षेत्रों के अन्य संस्थान और (तीन) ''ग'' क्षेत्र में स्थित संस्थानों आदि में से हिन्दी में सर्वाधिक कार्य करने वाले कार्यालय को अलग–अलग दिया जाता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के बड़े संस्थानों के लिए 2 पुरस्कार ''क'' और ''ख'' क्षेत्रों के छोटे संस्थानों आदि के लिए 2 पुरस्कार तथा ''ग'' क्षेत्र में स्थित संस्थानों/केन्द्रों के लिए भी 2 पुरस्कार अर्थात् प्रथम को शील्ड ओर द्वितीय को ट्रॉफियां प्रदान की जाती है। हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ाने की मूल भावना अक्षुण्ण रखने हेतु यह आवश्यक है कि पुरस्कार किसी अत्याधिक समर्थ संस्था को ही अनवरत न मिलता रहे। इस मूल भावना के संरक्षण हेतु 26 जून, 2009 को पुरस्कारों के संबंध में सम्पन्न हुई बैठक में निर्णय लिया गया था कि जिस संस्थान को लगातार 2 वर्ष पुरस्कार मिल चुके हैं उसकी पात्रता पर एक वर्ष के लिए विचार न किया जाए तथापि एक प्रतियोगिता वर्ष छोड़कर वह संस्थान उसके बाद वाले वर्ष में प्रतियोगिता में पुनः भाग लेने का पात्र होगा।

पुरस्कार का उद्‌देश्य

इस पुरस्कार का उद्‌देश्य परिषद के विभिन्न संस्थानों आदि के कार्य में हिन्दी को प्रोत्साहित करना है।

पुरस्कार के लिए पात्रता

यह पुरस्कार व्यक्तिगत न होकर संस्थान स्तर पर दिया जाता है। परिषद के अधीनस्थ वे सभी संस्थान/केन्द्र/निदेशालय/ब्यूरो आदि इस योजना में भाग ले सकते हैं जो पूर्णतः या कुछ हद तक अपना सरकारी कामकाज हिन्दी में करते है। पुरस्कार के लिए चयन की प्रक्रिया प्रत्येक वित्तीय वर्ष की समाप्ति के बाद शुरू की जाती है।

पुरस्कार के लिए चयन की क्रियाविधि

पुरस्कार योजना में भाग लेने के लिए परिषद की ओस से संस्थानों आदि को सूचना भेजी जाती है। सभी संस्थानों आदि को प्रविष्टि सूचना से इंगित तारीख तक निर्धारित प्रपत्र में निदेशक (राजभाषा) के नाम परिषद के पते पर भेजनी होती है। मूल्यांकन समिति द्वारा निर्णय किए जाने के पश्चात् पुरस्कार की सूचना संबंधित कार्यालय को दी जाती है।

राष्ट्रीय डेरी मेला–२०२०

भाकृअनुप
ICAR

ndri

संस्थान का ध्येय (विजन)

सस्ती लागत पर उत्तम कोटि के दूध एवं दुग्ध उत्पादों की उपलब्धता सुनिश्चित करना, उत्पादक को जीविकोपार्जन सुरक्षा तथा डेरी सेक्टर को उपयुक्त प्रौद्योगिकियाँ अपनाकर तथा मानव संसाधन विकास द्वारा डेरी सेक्टर को लाभ प्रदान करना।

मिशन

मानव शक्ति विकास कार्य की ओर योगदान प्रदान करने के लिए राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय लाभांशों की ओर डेरी व्यवसाय के प्रबन्धन पहलुओं तथा डेरी उद्योग की महान उत्पादकता, दुग्ध उत्पादन वृद्धि के लिए संशोधित राष्ट्रीय दुधारू समूह के लिए ज्ञान अर्जन एवं प्रसारण के लिए अनुसंधान एवं विकास में सहयोग प्रदान करना।

अधिदेश (मैण्डेट)

- डेरी उत्पादन, प्रसंस्करण एवं विपणन के क्षेत्र में अनुसंधान करना।
- डेरी उद्योग तथा अनुसंधान एवं विकास संस्थानों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव संसाधन विकास।
- सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों के लिए डेरी उत्पादन तथा प्रसंस्करण की नवीन प्रौद्योगिकियों का प्रसारण।

फोटो : प्रशासनिक खंड

भाकृअनुप ICAR

ndri

भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान

(मानद् विश्वविद्यालय)

करनाल-132 001 (हरियाणा)

दुग्ध गंगा, दशम् अंक (संयुक्तांक, छमाही 1 व 2, अप्रैल, 2019 से मार्च, 2020)